इकाई 1- हैरोड-डोमर का प्रारूप
(Harrod-Domar Models)

1.1 प्रस्तावना

1.2 उद्देश्य

1.3 हैरोड का विकास प्रारूप

1.3.1 हैरोड का विकास प्रारूप की मान्यताए

1.3.2 वास्तविक वृद्धि दर

1.3.3 अभीष्ट या आवश्यक वृद्धि दर

1.3.4 हैरोड वृद्धि मार्ग

1.3.5 दीर्घकालीन असन्तुलनों का मूलरूप

1.3.6 सहज या प्राकृतिक वृद्धि दर

1.3.7 G, Gw एवं Gn का विचलन

1.4 डोमर का विकास प्रारूप

1.4.1 डोमर के विकास प्रारूप की मान्यताएं

1.4.2 पूर्ति पक्ष

1.4.3 माँग पक्ष

1.4.4 संतुलन

1.4.5 आलोचना

1.5 हैरोड तथा डोमर प्रारुपो का तुलनात्मक अध्ययन

1.5.1 हैरोड तथा डोमर प्रारूप की समानताएँ

1.5.2 हैरोड तथा डोमर प्रारूप की असमानताएँ

1.6 अभ्यास प्रश्न

1.7 सारांश

1.8 शब्दावली

1.9 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1.10 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1.11 उपयोगी/सहायक पाठ्य सामग्री

1.12 निबन्धात्मक प्रश्न

1.1 प्रस्तावना (Introduction)

आर्थिक विकास के प्रारूप से सम्बन्धित यह पहली इकाई है इससे पहले की इकाइयों के अध्ययन के बाद आप बता सकते है कि आर्थिक विकास क्या है, आर्थिक विकास का मापन की विधियॉ कौन-कौन सी है। आर्थिक विकास के प्रतिष्ठित विकास प्रारूप एवं मार्क्स का विकास प्रारूप क्या है।

इस इकाई में हैरोड-डोमर के विकास प्रारूप के सम्बन्ध में बड़े ही स्पष्ट रूप से और विस्तार से इसके विषय में चर्चा की है कि हैरोड-डोमर के विकास प्रारूप कौन- कौन से है, इसके अर्न्तगत विकास का निर्धारण किस प्रकार होता है।इसके अतिरिक्त प्रस्तुत इकाई में हैरोड-डोमर के विकास प्रारूप के द्वारा विकासशील अर्थव्यवस्था में सन्तुलन के सम्बन्ध में विस्तार से विश्लेषण प्रस्तुत किया गया है।

इस इकाई के अध्ययन के बाद आप हैरोड-डोमर के विकास प्रारूप के महत्व को समझा सकेगें, तथा एक अर्थव्यवस्था के विकास में इसके विभिन्न प्रारुपों का स्पष्ट विश्लेषण कर सकेगें।

1.2 उद्देश्य (Objective)

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप-

- ✓ हैरोड के विकास प्रारूप की प्रमुख मान्यताओं को जान सकेगें।
- ✓ हैरोड का विकास प्रारूप को समझ सकेंगे।
- ✓ डोमर के विकास प्रारूप की प्रमुख मान्यताओं को जान सकेगें।
- ✓ डोमर के विकास प्रारूप को समझ सकेंगे।

1.3 हैरोड का विकास प्रारूप (Development Model of Harrod's)

प्रतिष्ठित अर्थशास्त्रियों ने पूँजी संचय के क्षमता वृद्धि पक्ष पर अधिक जोर दिया था और उसके माँग पक्ष की अवहेलना की थी। इसके विपरीत कीन्सवादियों ने पूँजी संचय के ***"आय- वृद्धि पक्ष पर अधिक जोर दिया और उसके क्षमता वृद्धि पक्ष को भुला दिया।"*** हैरोड डोमर ने इन दोनों घरानों की भूल को सुधारते हुये निवेश प्रक्रिया के दोनों पक्षों को मिला दिया है और इस प्रकार यह उनके माँडल की सबसे बड़ी विशेषता कही जा सकती है।

हैरोड तथा डोमर ने भी आर्थिक वृद्धि की प्रक्रिया में निवेश को प्रमुख स्थान दिया है विशेष रूप से उसकी द्धैत प्रकृति को एक तरफ निवेश आय में वृद्धि करता है तो दूसरी तरफ अर्थव्यवस्था के पूँजीगत स्टॉक को बढ़ाकर उसकी उत्पादन क्षमता में वृद्धि कर देता है। पहले को निवेश का माँग प्रभाव और दूसरे को पूर्ति प्रभाव कहा जा सकता है। इसलिए एक अर्थव्यवस्था में जब तक निवेश बढ़ता रहेगा, तब तक वास्तविक आय तथा उत्पादन का विस्तार होता रहेगा।

सर राँय एफ हैरोड ने गतिशील अर्थशास्त्र को सन् 1939 में एक नया मोड दिया जबकि उनका लेख **"An Essay on Dynamic Theory"** का प्रकाशन ब्रिटेन में **'Economic Journal'** में हुआ। हैरोड ने इसी विषय लन्दन विश्वविद्यालय में सन् 1947 में एक भाषण माला भी दी जो सन् 1948 में **'Towards A**

Dynamic Journal' के शीषर्क से प्रकाशित हुई इन भाषणों में तीसरे भाषण का शीर्षक **'Fundamental Dynamic Thermos'** था। इसी भाषण में हैरोड के विकास प्रारूप का प्रारूप दिया है।

1.3.1 हैराड का विकास प्रारूप की मान्यताएं

हैराड का विकास प्रारूप की प्रमुख मान्यताएं निम्नवत है-

1. समाज में अपेक्षित बचत (Intended extant Savings) तथा वास्तविक बचत बराबर होती है। अर्थात औसत बचत प्रवृत्ति (APS) सीमान्त बचत प्रवृत्ति (MPS) के बराबर होता है।

$$\text{APS} = \text{MPS}$$

2. अर्थव्यवस्था में अपेक्षित निवेश तथा वास्तविक निवेश भी बराबर होते है।

   अर्थात

$$S = I$$

3. उत्पादन का उद्देश्य साम्य की स्थिति को प्राप्त करना।
4. विनियोग की दर उत्पादन व आय वृद्धि की दर पर निर्भर करती है।
5. अर्थव्यवस्था में पूर्ण रोजगार विद्यमान है।
6. मूल्य-स्तर तथा ब्याज की दर में कोई परिवर्तन नहीं होता और पूँजी-श्रम अनुपात (Capital Labor Ratio) तथा पूँजी-उत्पादन अनुपात (Capital-Output Ratio) भी यथा स्थिर है।
7. राज्य हस्तक्षेप का अभाव है।
8. पूँजी गुणांक (Capital Coefficient) अर्थात पूँजीगत स्टॉक का आय से अनुपात स्थिर मान लिया गया है।
9. पूँजीगत वस्तुओं का मूल्यह्रास (depreciation) नहीं होता है।

हैरोड ने अपना विकास प्रारूप तीन प्रकार की वृद्धि दरों पर आधारित किया है।

1.3.2 वास्तविक वृद्धि दर (Natural Growth Rate / Actual rate of Growth)

वास्तविक वृद्धि दर (G) वह दर है जिस दर पर देश विकास कर रहा है। इस दर को बचत अनुपात तथा पूँजी उत्पाद अनुपात (Capital-Output Ratio - COR) निर्धारित करते है और यह दर अल्पकालिक चक्रीय परिवर्तनों को प्रकट करती है।

समीकरण रूप में

$$\boldsymbol{GC = S}$$

G = आय की वृद्धि दर अर्थात $\frac{\boldsymbol{\Delta Y}}{\boldsymbol{Y}}$

C = पूँजी में किया गया शुद्ध योग है अर्थात पूँजी उत्पाद अनुपात अर्थात $\boldsymbol{C} = \frac{\boldsymbol{I}}{\boldsymbol{\Delta Y}}$

S = $\boldsymbol{\Delta}$ औसत बचत प्रवृति अर्थात $S = \frac{S}{Y}$

$$\frac{S}{Y} = \frac{\Delta Y}{Y} \times \frac{I}{\Delta Y}$$

या

$$\frac{I}{Y} = \frac{S}{Y}$$

$$I = S$$

वास्तविक निवेश = वास्तविक बचतें

उपरोक्त सम्बन्ध को आय का व्यवहार स्पष्ट करता है। बचत (S) आय पर निर्भर करती है, निवेश (I) आय में वृद्धि ΔY पर निर्भर होता है। अर्थात एक प्रकार से यह त्वरक सिद्धान्त है।

1.3.3 अभीष्ट या आवश्यक वृद्धि दर (Warranted Rate of Growth)

हैरोड के शब्दो में, ***"आवश्यक वृद्धि दर (G_W) विकास की वह दर होती है जिसे यदि प्राप्त कर लिया जाये तो उद्यमी ऐसी मानसिक स्थिति में होते है कि वे इसी प्रकार से विकास करते रहने के लिए प्रेरित होंगें।"***

समीकरण रूप में,

$$\mathbf{G_W Cr = s} \text{ या } \mathbf{G_W = \frac{s}{Cr}}$$

G_W = आवश्यक वृद्धि दर

s = सीमान्त बचत प्रवृति (MPS)

Cr = पूँजीगत आवश्यकताएं (Capital Requirement) अर्थात G_W को बनाये रखने लिए आवश्यक पूँजी उत्पाद – अनुपात (COR) यह $I / \Delta Y$ का मूल्य है।

पूर्ण रोजगार संतुलन वृद्धि के लिए G वास्तविक वृद्धि दर, अभीष्ट वृद्धि दर अथवा पूर्ण क्षमता वृद्धि दर G_W के बराबर होनी चाहिए। जो अर्थव्यवस्था को सतत् उन्नति दे सकेगी और C वास्तविक पूँजी वस्तुएँ Cr सतत् वृद्धि के आवश्यक पूँजी वस्तुए बराबर होनी चाहिए।

1.3.4 हैरोड वृद्धि मार्ग

हैरोड वृद्धि पथ को रेखाचित्र 1.1 से दिखाया गया है। जिसमें क्षैतिज आय को लम्ब आय बचत एवं निवेश को प्रकट करता है। निवेश मात्रा के मूल्य पर निर्भर करती है।

इसे रेखाचित्र में Cr द्वारा प्रकट किया गया है। समान्तर रेखाएं Y_1Cr_1, Y_2Cr_2 व Y_3Cr_3 स्थिर पूँजी अनुपात को बता रही है। आय में Y_1 से Y_2 परिवर्तन होने से प्रेरित निवेश I_2Y_2 जोकि S_1Y_1 बचत के समान है। इस स्तर पर उत्पादन में वृद्धि दर $\frac{Y_2-Y_1}{Y_1}$ के समान है। I_2 निवेश आय को बढ़ाकर Y_3 पर ले जाता है और उत्पादन में वृद्धि दर $\frac{Y_3-Y_2}{Y_2}$ के समान है इसी प्रकार I_3 निवेश आय को बढ़ाकर Y_4 के स्तर पर लाती है।

अतः अर्थव्यवस्था एक समान वृद्धि दर से बढ़ती है।

$$\frac{Y_2 - Y_1}{Y_1} = \frac{Y_3 - Y_2}{Y_2} = \frac{Y_4 - Y_3}{Y_3}$$

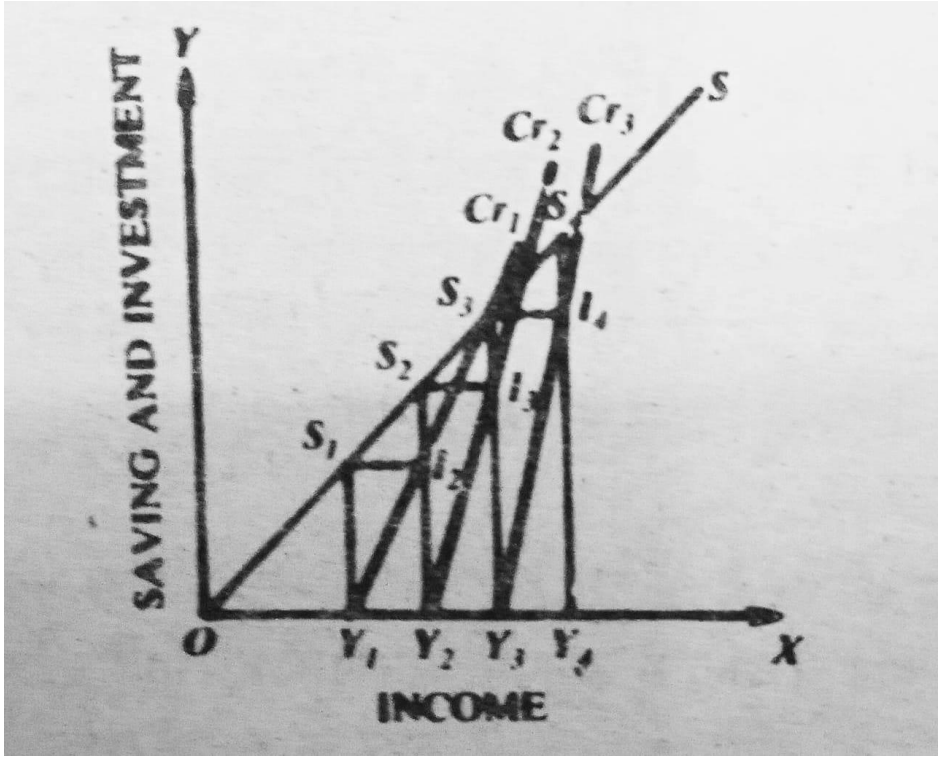

रेखाचित्र 1.1

1.3.5 दीर्घकालीन असन्तुलनों का मूलरूप

यदि G और Gw बराबर नहीं है तो अर्थव्यवस्था असन्तुलन में रहेगी। यदि Gw से G बढ़ जाएगा $G > Gw$ तो Cr से C कम होगा ($C < Cr$) तो दीर्घकालीन स्फीति होगी।

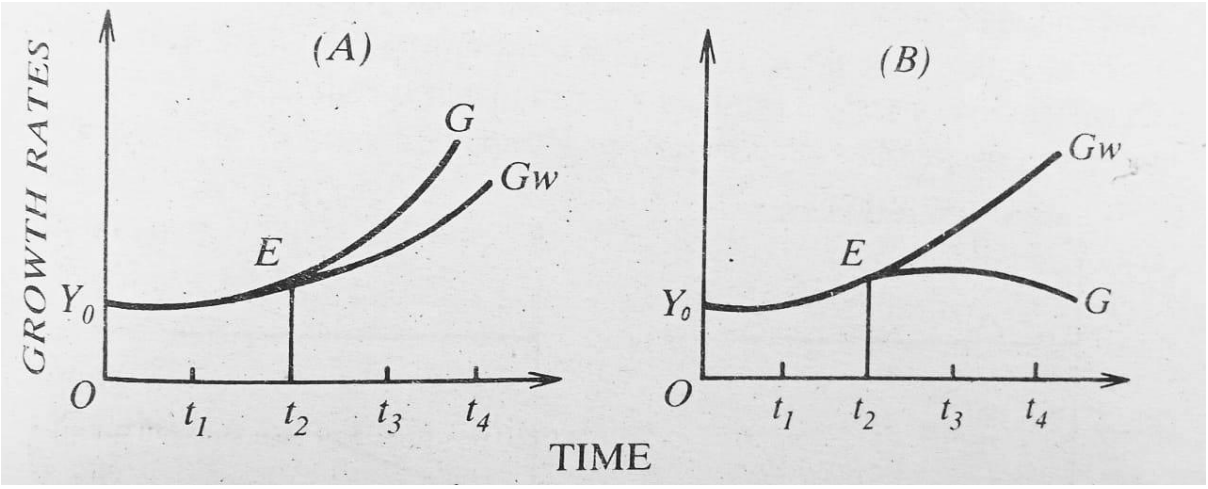

रेखाचित्र 1.2 (A) और (B)

इसे रेखाचित्र 1.2 (A) में दर्शाया गया है। आय की दर अनुलम्ब अक्ष पर तथा समय क्षैतिज अक्ष पर दिया गया है। आय के प्राप्त पूर्ण रोजगार स्तर Y_0 से शुरू करते है। वास्तविक वृद्धि दर G बिन्दु E तक अभिष्ट वृद्धि पर Gw के साथ t_1 समय पर्यन्त चलती है। t_2 समय पश्चात दीर्घकालीन स्फीति में ले जाता है। दूसरी ओर यदि Gw से कम G

है तो Cr से C अधिक होगा। ऐसी स्थिति दीर्घकालीन मंदी लाती है क्योंकि उत्पादन, रोजगार और आय में कमी होगी। रेखाचित्र 1.2 (B) में इसे दर्शाया गया है। जब t_2 समय के पश्चात Gw से G नीचे गिरती है और दोनों एक दूसरे से दूर होते जाते है।

अतः G और Gw में संतुलन **छुरी धार संतुलन (Knife Edge Equilibrium)** है। क्योंकि सन्तुलन एक बार भंग होने पर स्वयं सन्तुलन की स्थिति में नहीं आता। अतः दीर्घकालीन स्थिरता के लिए G तथा Gw को इक्टठे् रखा जाए। इस उद्देश्य के लिए हैरोड ने तीसरा समीकरण प्रस्तुत किया है।

1.3.6 सहज या प्राकृतिक वृद्धि दर (Natural Rate of Growth)

इसे वृद्धि की पूर्ण रोजगार दर (Full Employment Rate of Growth) या वृद्धि की सामान्य दर (General Rate of Growth)) भी कहा जाता है। यह दर देश के प्राकृतिक साधनों, श्रम की उपलब्ध मात्रा तथा तकनीकी उन्नति आदि घटकों पर निर्भर करती है। चूँकि ये घटक परिवर्तनशील है। अतः Gn, S के बराबर हो भी सकती है और नहीं भी अर्थात्

$$GnCr = S \quad or \quad GnCr \neq S$$

1.3.7 G, Gw एवं Gn का विचलन (Divergence of G, Gw and Gn)

पूर्ण रोजगार सन्तुलन **Gn = Gw = G** जो कि एक **छुरी धार संतुलन** है। यदि तीनों में कोई विचलन होगा तो अर्थव्यवस्था तो दीर्घकालीन स्थिरता अथवा स्फीति की परिस्थितियाँ उत्पन्न हो जायेगी। यदि $G > Gw$ हो तो निवेश बचत की अपेक्षा तीव्रता से वृद्धि होती है और आय में Gw की अपेक्षा तीव्र वृद्धि होगी। यदि $G < Gw$ तो विलोमश स्थिति होगी।

हैरोड के अनुसार यदि $Gw > Gn$ हो तो दीर्घकालीन मंदी पैदा हो जायेगी। ऐसी स्थिति में G से Gw द्वारा लगाई जाती है। जैसा कि रेखाचित्र 1.3 (A) में दिखाया गया है। Gn से Gw अधिक होती है। यदि $Gw < Gn$ हो तो G से Gw नीचे होगा जैसा रेखाचित्र 3 (B) में दिखाया गया है। अब अर्थव्यवस्था में दीर्घकालीन स्फीति होगी। तथा $C < Cr$ श्रम की अधिकता पूँजी की कमी लाभ अधिक होता है।

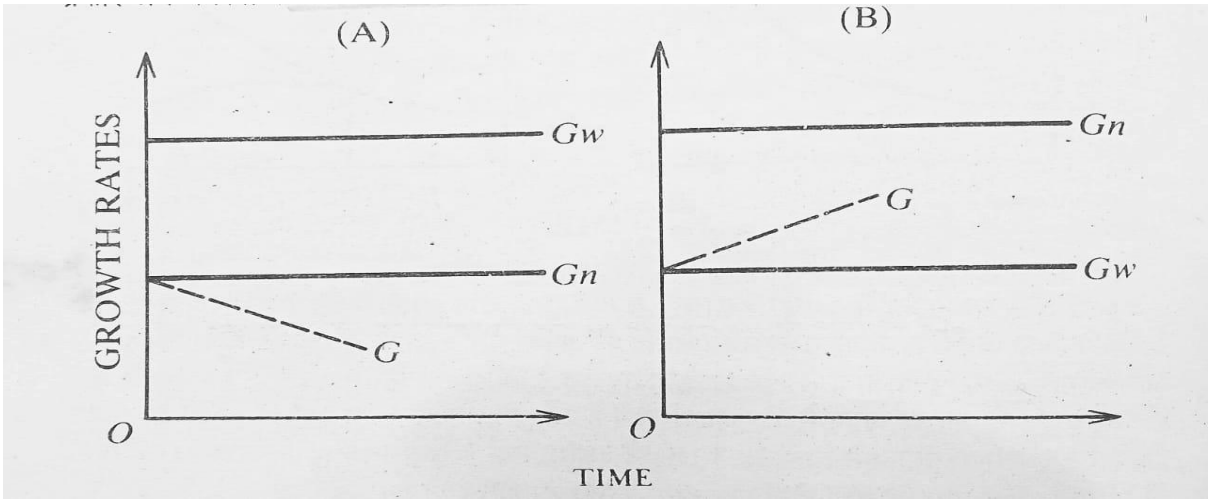

रेखाचित्र 1.3 (A) और (B)

1.4 डोमर का विकास प्रारूप (Development Model of Domar's)

ईब्स डोमर ने सन् **1946** में अपनी पुस्तक '**Essay in the Theory of Economic** Growth' में एक अध्याय '**Capital Expansion Rate of Growth and Employment'** के अन्तर्गत अपने विकास प्रारूप का प्रतिपादन किया। डोमर के विकास प्रारूप की मान्यताएं भी हैरोड के प्रारूप के समान है। इन्होंने कहा कि निवेश एक ओर तो आय को उत्पन्न करता है और दूसरी ओर उत्पादक क्षमता को बढ़ाता है। इसलिए उत्पादक क्षमता में वृद्धि को आय में वृद्धि के बराबर करने के लिए निवेश किस दर से बढ़ाए ताकि पूर्ण रोजगार बना रहे। वह निवेश के माध्यम से कुल पूर्ति तथा कुल माँग के बीच संबध स्थापित करके इस प्रश्न का उत्तर देता है।

1.4.1 डोमर के विकास प्रारूप की मान्यताएं

डोमर का विकास प्रारूप की प्रमुख मान्यताएं निम्नवत है-

1. समाज में अपेक्षित बचत **(Intended Extant Savings)** तथा वास्तविक बचत बराबर होती है। अर्थात औसत बचत प्रवृत्ति **(APS)** सीमान्त बचत प्रवृत्ति (**MPS**) के बराबर होता है।
2. अर्थव्यवस्था में अपेक्षित निवेश तथा वास्तविक निवेश भी बराबर होते है ।

   अर्थात $\mathbf{S = I}$
3. उत्पादन का उद्देश्य साम्य की स्थिति को प्राप्त करना।
4. विनियोग की दर, उत्पादन व आय वृद्धि की दर पर निर्भर करती है।
5. अर्थव्यवस्था में पूर्ण रोजगार विद्यमान है।
6. मूल्य-स्तर तथा ब्याज की दर में कोई परिवर्तन नहीं होता और पूँजी श्रम अनुपात (Capital Labor Ratio) तथा पूँजी उत्पादन अनुपात (Capital-Output Ratio) भी यथा स्थिर है।
7. राज्य हस्तक्षेप का अभाव है।
8. पूँजी गुणांक (Capital Coefficient) अर्थात पूँजीगत स्टॉक का आय से अनुपात स्थिर मान लिया गया है।
9. पूँजीगत वस्तुओं का मूल्यह्रास (depreciation) नहीं होता है।

1.4.2 पूर्ति पक्ष

डोमर ने पूर्ति पक्ष को इस प्रकार सपष्ट किया है कि मान लीजिए निवेश की वार्षिक आय I है और नई पूँजी (मशीन) की उत्पादन क्षमता S के बराबर है। तब I डालर से उत्पादन क्षमता IS डालर वार्षिक होगी। लेकिन यदि नयी पूँजी का उपयोग पुरानी मशीनों के स्थान पर किया जाए तो वार्षिक उत्पादन क्षमता IS से कम होगी। डोमर इसे $\mathrm{I}\,\sigma$ से प्रदर्शित करता है।

दूसरे शब्दों में

$$\Delta Y = I\sigma \ldots \ldots \ldots \ldots \ldots (1)$$

जबकि निवेश की औसत उत्पादकता $\boldsymbol{\sigma = \Delta Y/I, I\sigma}$ को सिग्मा प्रभाव भी कहते है।

1.4.3 माँग पक्ष

इसकी व्याख्या **केन्ज की गुणक प्रक्रिया** से करता है। मान लीजिए राष्ट्रीय आय में वार्षिक वृद्धि ΔY होगी, वह निवेश में वृद्धि ΔI की $1/\alpha$ गुणा होगी

$$\mathbf{I} = \boldsymbol{\alpha}\,\mathbf{Y} \quad \text{अथवा} \quad \frac{1}{\alpha} = \mathbf{Y}$$

$$\mathbf{Y} = \frac{1}{\alpha}$$

दूसरे शब्दों में

$$\Delta Y = \Delta I \frac{1}{\alpha} \ldots\ldots\ldots\ldots (2)$$

1.4.4 संतुलन

आय का पूर्ण रोजगार संतुलन बनाए रखने के लिए कुल माँग एवं कुल पूर्ति के बराबर रहना चाहिए। समीकरण (1) और (2) को बराबर रखने पर

$$\frac{\Delta I}{\alpha} = I\sigma \quad \text{अर्थात}$$

$$\frac{\Delta I}{I} = \alpha\,\sigma \quad \ldots\ldots\ldots\ldots\ldots\ldots (3)$$

समीकरण (3) से स्पष्ट है कि यदि हम पूर्ण रोजगार बनाये रखना चाहते है। तब $\frac{\Delta I}{I}$ शुद्ध स्वायत्त निवेश की वृद्धि दर $\alpha\,\sigma$ के बराबर होनी चाहिए। इसका स्पष्टीकरण एक उदाहरण द्वारा दिया है।

मान लीजिए कि σ = 50% प्रतिवर्ष, α = 24% और Y=300 बिलियन डॉलर प्रतिवर्ष है।

यदि पूर्ण रोजगार को बनाए रखना है तो $300 \times \frac{24}{100} = 72$ मिलियन डॉलर निवेश चाहिए। इससे उत्पादन क्षमता में निवेशित मात्रा की σ गुणा वृद्धि होगी। अर्थात $300 \times \frac{24}{100} \times \frac{50}{100} = 36$ बिलियन डॉलर की और राष्ट्रीय आय को भी इतनी ही मात्रा में बढ़ना पड़ेगा। परन्तु आय में सापेक्ष वृद्धि आय द्वारा विभक्त निरपेक्ष वृद्धि के बराबर होगी। $\Delta Y/Y$ अर्थात

(1) $\Delta Y = 1/\alpha \quad \Delta I$ अर्थात $\Delta I = \Delta Y\,\alpha = 300 \times \frac{24}{100} = 72$ बिलियन डॉलर

(2) $\Delta I.\,\sigma = 76 \times \frac{50}{100} = 36$ बिलियन डॉलर

(3) $\frac{\Delta Y}{Y} = \frac{36}{300} = \frac{12}{100} = 12\%\ , \alpha = \frac{24}{100} \times \frac{50}{100} = 12\%$

इसलिए पूर्व रोजगार बनाए रखने के लिए यह आवश्यक है कि आय में 12% प्रतिवर्ष की दर से वृद्धि हो इस सुनहरी मार्ग से विचलन के परिणामस्वरूप चक्रीय परिवर्तन होगें। जब $\alpha\,\sigma$ से $\Delta I/I$ अधिक होगा, तो अर्थव्यवस्था में मंदी की स्थिति होगी।

$$Y = S + I$$

रेखाचित्र 1.4 में राष्ट्रीय आय का निर्धारण समस्त माँग तथा समस्त पूर्ति रेखाओं द्वारा दिखाया गया है। क्षैतिज अक्ष पर आय के स्तर को जबकि अनुलम्ब अक्ष पर बचत एवं निवेश को लिया गया है 45^0 कोण $Y = S + I$ का संतुलन दिखाया गया है।

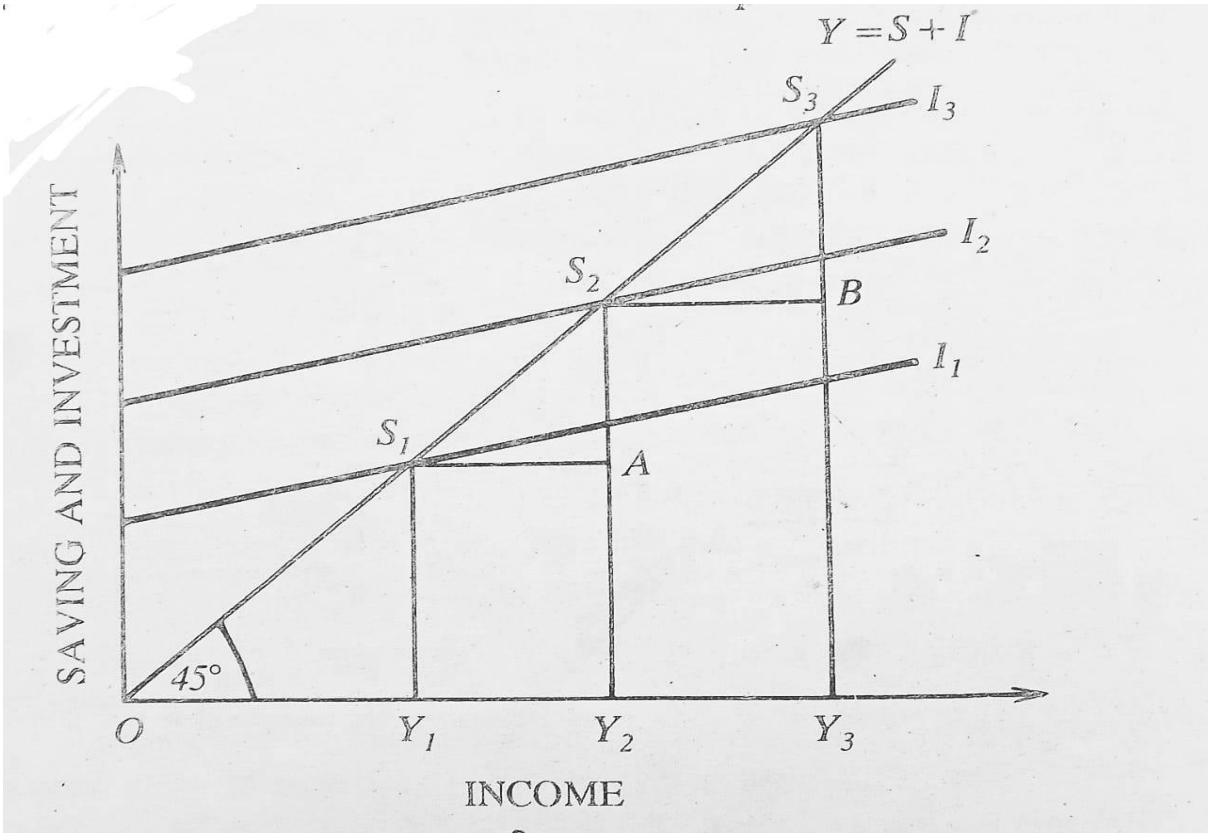

रेखाचित्र 1.4

प्रारम्भ में, अर्थव्यवस्था का संतुलन बिन्दु S_1 हैं। अब आर्थिक निवेश I_1 है गुणक प्रभाव के कारण आय का स्तर बढ़कर S_1 A(=Y_1Y_2) हो जाता है। लेकिन वार्षिक उत्पादन क्षमता Iσ से कम रहती है। रेखाचित्र से स्पष्ट है कि $OY_2 > OY_1$ अब निवेश की मात्रा बढ़ कर I_2 हो जायेगी और आय में वृद्धि S_2 B(=Y_2Y_3) होगी। यह प्रक्रिया निवेश गुणक के अनुसार चलती रहेगी जब तक आय में वृद्धि निवेश में की गई वृद्धि की गुणक की वृद्धि के बराबर नहीं हो जाती।

1.4.5 आलोचना

(1) उत्पादन फलन तथा पूँजी श्रम अनुपात को स्थिर माना।

(2) सीमांत बचत प्रवृति तथा औसत बचत प्रवृति स्थिर है।

(3) कीमत परिवर्तन पर ध्यान नहीं दिया।

(4) पूँजीगत तथा उपभोक्ता वस्तुओं में भेद नहीं करता।

(5) उद्यमी व्यवहार की उपेक्षा की गई है।

(6) सरकार की भूमिका पर विचार नहीं करता।

1.5 हैरोड तथा डोमर प्रारुपो का तुलनात्मक अध्ययन

इनमें कुछ समानताएँ भी है जबकि कुछ असमानताँए है-

1.5.1 हैरोड तथा डोमर प्रारुपो की समानताएँ

1. **बचत एवं निवेश को अधिक महत्व:-** दोनों प्रारूप बचत एवं निवेश को विशेष महत्व देते है और अर्थव्यवस्था का संतुलन बचत एवं निवेश की समानता पर निर्भर करता है।

डोमर प्रारूप	हैरोड प्रारूप
जबकि α =, $\sigma = \frac{\Delta Y}{I} \times \frac{\Delta I}{I} = \alpha \sigma$ $\sigma = \frac{\Delta S}{\Delta Y} \times \frac{\Delta I}{I} = \frac{\Delta Y}{I} \times \frac{\Delta S}{\Delta Y}$ or $\frac{\Delta I}{I} = \frac{\Delta S}{I}$ $\Delta I = \Delta S$	$GC = S$ जबकि $G = \frac{\Delta Y}{Y}, C = \frac{I}{\Delta Y}, S = \frac{S}{Y}$ $\frac{\Delta Y}{Y} \times \frac{I}{\Delta Y} = \frac{S}{Y}$ or $\frac{I}{Y} \times \frac{S}{Y}$ I=S

2. **डोमर की सतत् वृद्धि दर** (α σ) हैरोड की वृद्धि की अभीष्ट दर (Gw) के अनुसार है। हैरोड का S डोमर के α के बराबर है। अतः $\alpha = \frac{S}{Y}$ अथवा S= α y

$$\sigma = \frac{\Delta Y}{I} \; or \; I = \frac{\Delta Y}{\sigma}$$

अर्थव्यवस्था में आय का संतुलन बनाए रखने के लिए बचत एवं निवेश का बराबर होना आवश्यक है।

$$I = S, \frac{\Delta Y}{\sigma} = \alpha Y \text{ or } \Delta Y/Y = \alpha\,\sigma = Ws$$

3. **हैरोड यह मानकर चलता है कि बचत कुल आय का एक स्थिर अशं मात्र है**

$$Gs\ S = sY(0 < r < I)$$

बचत फलन दीर्घकालीन उपभोगफलन है जिससे।APS=MPC

निवेश आय के स्तर में परिवर्तन का फलन है $I = Cr(\Delta Y)Cr > O$ जब दीर्घ काल में,

$$I = S \text{ or } Cr\ (\Delta Y)sY$$

दोनों तरफ Yसे बिभक्त करें

$$Cr\frac{\Delta Y}{Y} = s\frac{Y}{Y}$$

$$Cr\frac{\Delta Y}{Y} = S$$

$$Gw = \frac{S}{Cr}$$

1.5.2 हैरोड तथा डोमर प्रारूप की असमानताएँ

1. डोमर ने सीमान्त पूँजी उत्पादन तथा गुणक के व्युत्क्रम का प्रयोग किया है जबकि हैरोड ने सीमांत पूँजी उत्पादन तथा त्वरक का प्रयोग किया है।

2. डोमर ने निवेश को वृद्धि प्रक्रिया में मुख्य कार्य सौपता है जबकि हैरोड आय स्तर को वृद्धि प्रक्रिया में सबसे महत्वपूर्ण कारक समझता है।
3. डोमर, निवेश की माँग और पूर्ति में संबध स्थापित करता है जबकि हैरोड बचत की माँग और पूर्ति को बराबर करता है।
4. डोमर, पूँजी उत्पादन अनुपात के व्युत्क्रम का प्रयोग करते है जबकि हैरोड पूँजी उत्पादन अनुपात का इस दृष्टि से डोमर का $\sigma = 1/Cr$ हैरोड का।
5. डोमर $\Delta I/I = \Delta Y/Y$ की मान्यता स्वीकार करतें है जबकि हैरोड नहीं।
6. हैरोड के लिए व्यापार चक्र वृद्धि के मार्ग का अभिन्न अंग पर डोमर के लिए नहीं फिर भी वह σ निवेश की औसत उत्पादकता के उतार-चढ़ाव को माना है।
7. हैरोड उद्यमियों के व्यवहार ढ़ाँचे को माना जबकि डोमर सम्बन्ध में कुछ नहीं सुझातें है।

1.6 अभ्यास प्रश्न

लघु उत्तरीय प्रश्न

1. हैरोड का विकास प्रारूप क्या है?
2. हैरोड की वास्तविक संवृद्वि दर का वर्णन कीजिए।
3. डोमर के विकास प्रारूप क्या है?
4. हैरोड-डोमर के विकास प्रारूप की प्रमुख मान्यतॉए क्या है?
5. हैरोड-डोमर के विकास प्रारूप की मुख्य बातें क्या है?

बहुविकल्पीय प्रश्न

1. विकास की अभीष्ट दर हैः

अ.GC=S ब.GC=S/Cr

स.GC=SCr द. GC=I

2. Essay in the Theory of Economic Growth पुस्तक के लेखक कौन है?

अ. हैरोड ब.डोमर

स.एडम स्मिथ द. रिकार्डो।

1.7 सारांश

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् यह जान चुके हैं कि प्रतिष्ठित अर्थशास्त्रियों ने पूँजी संचय के क्षमता वृद्धि पक्ष पर अधिक जोर दिया था और उसके माँग पक्ष की अवहेलना की थी। इसके विपरीत कीन्सवादियों ने पूँजी संचय के "***आय- वृद्धि पक्ष पर अधिक जोर दिया और उसके क्षमता वृद्धि पक्ष को भुला दिया।***" हैरोड डोमर ने इन दोनों घरानों की भूल को सुधारते हुये निवेश प्रक्रिया के दोनों पक्षों को मिला दिया है और इस प्रकार यह उनके माँडल की सबसे बड़ी विशेषता कही जा सकती है। हैरोड एवं डोमर के विकास प्रारूप की मान्यताएं समान है। इन्होंने कहा कि निवेश एक ओर तो आय को उत्पन्न करता है और दूसरी ओर उत्पादक क्षमता बढ़ाता है

इसलिए उत्पादक क्षमता में वृद्धि को आय में वृद्धि के बराबर करने के लिए निवेश किस दर से बढ़े ताकि पूरा रोजगार बना रहे वह निवेश के माध्यम से कुल पूर्ति तथा कुल माँग के बीच संबध स्थापित करके इस प्रश्न का उत्तर देता है।

हैरोड तथा डोमर ने भी आर्थिक वृद्धि की प्रक्रिया में निवेश को प्रमुख स्थान दिया है। विशेष रूप से उसकी द्वैत (Dual) प्रकृति को एक तरफ निवेश आय में वृद्धि करता है तो दूसरी तरफ अर्थव्यवस्था के पूँजीगत स्टॉक को बढ़ाकर उसकी उत्पादन क्षमता में वृद्धि कर देता है। पहले को निवेश का माँग प्रभाव और दूसरे को पूर्ति प्रभाव कहा जा सकता है। इसलिए एक अर्थव्यवस्था में जब तक निवेश बढ़ता रहेगा, तब तक वास्तविक आय तथा उत्पादन का विस्तार होता रहेगा।

1.8 शब्दावली

- **वास्तविक वृद्धि दर** - वास्तविक वृद्धि दर, वह दर है जिस दर पर देश विकास कर रहा है।
- **अभीष्ट या आवश्यक वृद्धि दर** - आवश्यक वृद्धि दर, विकास की वह दर होती है जिसे यदि प्राप्त कर लिया जाये तो उद्यमी ऐसी मानसिक स्थिति में होते है कि वे इसी प्रकार से विकास करते रहने के लिए प्रेरित होंगे।
- **प्राकृतिक वृद्धि दर** - इसे वृद्धि की पूर्ण रोजगार दर या वृद्धि की सामान्य दर भी कहा जाता है।

1.9 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

बहुविकल्पीय प्रश्न

1- ब. GC=S/Cr, 2. ब.डोमर

1.10 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

- सिन्हा वी.सी. (2010) *विकास और पर्यावरणीय अर्थशास्त्र*, सहित्य भवन पब्लिकेशन आगरा।
- एस. पी. सिहं (2001) *आर्थिक विकास एवं नियोजन*, एस चन्द एण्ड कम्पनी लि., नई दिल्ली।
- एम.एल.झिंगन (2002)*आर्थिक विकास एवं नियोजन*,वृंदा पब्लिकेशन्स प्रा. लि. नई दिल्ली।
- धींगरा आई. सी. (1987), *इकोनॉमिक डेवलपमेंट एन प्लानिंग इन इण्डिया*, एस. चन्द्र नई दिल्ली।

1.11 उपयोगी/सहायक ग्रन्थ

- अग्रवाल ए. एन., (2006) *इण्डियन इकोनॉमी (प्रोब्लम ऑफ डेवलपमेंट एण्ड प्लानिंग),* आशीष पब्लिशिंग हाऊस, नई दिल्ली।
- अहलूवालिया, आई. जे. (1985), *इन्डस्ट्रियल ग्रोथ इन इंडिया*, ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, नई दिल्ली।
- अहलूवालिया, आई. जे. एवं लिटिल, आई. एम. डी. (2002), *इण्डियास इकोनॉमिक रिफार्म एण्ड डेवलपमेन्ट*, ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, नई दिल्ली।

1.12 निबन्धात्मक प्रश्न

1. हैरोड-डोमर के विकास प्रारूप की विवेचना कीजिए तथा इसके मुख्य कमियों को इंगित कीजिए।
2. हैरोड-डोमर के विकास प्रारूप में समानताओं और असमानताओं की विवेचना कीजिए?
3. हैरोड-डोमर के विकास प्रारूप के विश्लेषण के प्रमुख अंश स्पष्ट कीजिए। इसके व्यावहारिक प्रयोग की विवेचना कीजिए?

इकाई 2- सोलो का प्रारूप
(Solow's Model)

2.1 प्रस्तावना

2.2 उद्देश्य

2.3 सोलो का विकास प्रारूप

2.3.1 सोलो का विकास प्रारूप की मान्यताएँ

2.3.2 दीर्घकालीन वृद्धि का प्रारूप

2.3.3 सम्भव विकास प्रारूप

2.3.4 विकास प्रारूप के आधारभूत समीकरण की रेखाचित्र द्वारा व्याख्या

2.3.5 विकास प्रारूप में अस्थिरता की स्थितियां

2.4 सोलो का विकास प्रारूप का आलोचनात्मक मूल्यांकन

2.5 अभ्यास प्रश्न

2.6 सारांश

2.7 शब्दावली

2.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

2.9 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

2.10 उपयोगी/सहायक ग्रन्थ

2.11 निबन्धात्मक प्रश्न

2.1 प्रस्तावना

आर्थिक विकास के प्रारूप से सम्बन्धित यह दूसरी इकाई है इससे पहले की इकाई के अध्ययन के बाद आप बता सकते है कि आर्थिक विकास क्या है? आर्थिक विकास का मापन की विधियॉ कौन-कौन सी है। अल्पविकसित देशों की विशेषताएँ और विकास के निर्धारक घटक क्या-क्या है। साथ ही आर्थिक विकास के प्रतिष्ठित विकास प्रारूप, मार्क्स का विकास प्रारूप, शुम्पीटर का विकास प्रारूप और हैरोड-डोमर का विकास प्रारूप का अध्ययन कर चुके है।

इस इकाई में सोलो विकास प्रारूप के सम्बन्ध में बड़े ही स्पष्ट रूप से और विस्तार से इसके विषय में चर्चा की है, इसके अर्न्तगत विकास का निर्धारण किस प्रकार होता है। इसके अतिरिक्त प्रस्तुत इकाई में सोलो विकास प्रारूप के सन्तुलन के सम्बन्ध में विस्तार से विश्लेषण प्रस्तुत किया गया है।

इस इकाई के अध्ययन के बाद सोलो विकास प्रारूप के महत्व को समझा सकेगें, तथा एक अर्थव्यवस्था के विकास में इसके योगदान का स्पष्ट विश्लेषण कर सकेगें।

2.2 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप-

- ✓ बता सकेंगे कि सोलो का विकास प्रारूप क्या होता है?
- ✓ सोलो का विकास प्रारूप की मान्यताएँ को समझ सकेंगे।
- ✓ सोलो के विकास प्रारूप की प्रमुख विशेषताएं को जान सकेगें।

2.3 सोलो का विकास प्रारूप

हैरोड डोमर प्रारूप के आलोचको में नव प्रतिष्ठित अर्थशास्त्री अग्रणी है और उनमें भी सबसे आगे है। **प्रो0 रार्बट एम0 सोलो** का नाम प्रमुख है। हैरोड डोमर प्रारूप स्थिर पूँजी- श्रम अनुपात की धारणा पर आधारित है। सोलो ने **1956** में प्रकाशित अपने लेख **"A Contribution to the theory of Economic Growth"** में स्थिर पूँजी श्रम अनुपात की धारणा की मान्यता को अस्वीकार करते हुए कहा कि **पूँजी- श्रम अनुपात में परिवर्तन करके उत्पादन में परिवर्तन लाया जा सकता है।** प्रो. सोलो का यह भी मत है कि **पूँजी- श्रम अनुपात में परिवर्तन करने से आर्थिक विकास प्रक्रिया में समायोजनशीलता बढ जाती है।**

दूसरे रूप में कहे, संसाधनों की वर्तमान स्थिति के अनुरूप उत्पादन में कम या अधिक पूँजी- श्रम अनुपात वाली तकनीक को अपनाना सम्भव हो जाता है।

2.3.1 सोलो का विकास प्रारूप की मान्यताएँ

सोलो का विकास प्रारूप की प्रमुख मान्यताएँ निम्नवत है-

1. एक समिश्र वस्तु का (Composite Commodity) का उत्पादन होता है।
2. पूँजी मूल्यह्रास (deprication) की गुजाइश छोड़ने के बाद उत्पादन को शुद्ध उत्पादन समझा जाता है। फलस्वरूप निवेश = बचतें और यह पूँजी-कोष में होने वाले परिवर्तन (K) के बराबर होती हैं, अर्थात

$$I = sY = K$$

3. उत्पादन के केवल दो साधनों श्रम तथा पूँजी का प्रयोग किया जाता है।
4. पैमाने के स्थिर प्रतिफल (constant returns to scale) होते है। दूसरे शब्दों में, उत्पादन फलन प्रथम कोटि का समरूप (homogeneous production function) होता है।
5. उत्पादन के साधनों (श्रम तथा पूँजी) को उनकी सीमान्त वस्तु उत्पादकताओं के अनुसार भुगतान किया जाता है।
6. कीमतें तथा मजदूरी लोचशील होती है।
7. श्रम स्थायी रूप से पूर्ण रोजगार में रहता है।
8. श्रम शक्ति की वृद्धि दर बर्हिजनित (exogenous) निर्धारित होती है।
9. पूँजी का उपलब्ध स्टॉक भी पूर्ण नियुक्त रहता है।
10. पूँजी संचय, समिश्र वस्तु (Composite Commodity) के संचय के रूप में होता है।
11. श्रम तथा पूँजी का परस्पर स्थानापन्न किया जा सकता है।
12. तकनीकी प्रगति तटस्थ है।
13. बचत अनुपात स्थिर है।

इन मान्यताओं के दिये होने पर सोलो ने अपने प्रारूप में स्पष्ट किया है कि यदि तकनीकी गुणांक परिवर्ती हो तो पूँजी-श्रम अनुपात की प्रवृति यह होगी कि वह अपने आप को समय बीतने पर संतुलन अनुपात की दिशा में समायोजित कर लेगा। यदि श्रम से पूँजी का प्रारंभिक अनुपात अधिक होगा तो श्रम शक्ति की तुलना में पूँजी तथा उत्पादन की वृद्धि अधिक धीरे होगी और विलोमशः भी। सोलो का विश्लेषण संतुलन पक्ष स्थिर अवस्था की ओर केन्द्रित है चाहे वह किसी भी पूँजी श्रम अनुपात से क्यों न प्रारम्भ हों?

2.3.2 दीर्घकालीन वृद्धि का प्रारूप

सोलो सम्पूर्ण अर्थव्यवस्था में एक मात्र वस्तु का ही उत्पादन मान कर चलता है। केन्द्रीय विश्लेषण की सहायता से यह स्पष्ट करता है कि उत्पादन की दर $y(t)$ ही अर्थव्यवस्था की वास्तविक आय प्रकट करती है। आय का कुछ भाग उपभोग किया जाता है तथा कुछ भाग बचा कर निवेश किया जाता है। दूसरे शब्दों में एक स्थिर पूँजी श्रम अनुपात बनाए रखने के लिए बचत का भाग अवश्य निवेश के बराबर होना चाहिए। वह शुद्ध निवेश K अथवा पूँजी स्टॉक को $k(t)$ एवं बचत की दर को $sY(t)$ दर्शाता है, जो बराबर है।

निवेश बचत समीकरण यह हैः

$$I = S$$

$$K = sy = \frac{\Delta k}{\Delta t} \dots\dots\dots\dots (1)$$

उत्पादन के साधन पूँजी K व श्रम L को उत्पादन फलन में दिखाने से

$$Y = F(K, L) \dots\dots\dots\dots\dots\dots (2)$$

जो स्थिर प्रतिफल दर्शाता है।

समीकरण 2 को समीकरण 1 में रखने पर

$$K = sF(K, L) \dots\dots\dots\dots (3)$$

समीकरण 3, प्रौद्योगिक संभावनाओं को व्यक्त करता है। रोजगार स्तर व यह भी एक स्थिर सापेक्ष दर से बढ़ता है। इस प्रकार

$$L(t) = Loe^{nt} \dots\dots\dots\dots\dots (4)$$

प्रौद्योगिक उन्नति के अभाव में n वृद्धि की प्राकृतिक दर होगी। समय (t) में L श्रम की मात्राओं को रोजगार पर लगाते है जबकि समय O से लेकर t तक श्रम शक्ति एक घांताकीय (Exponentially) रूप से बढ़ती पूर्णत बेलोचदार श्रम की माँग है अर्थात श्रम पूर्ति वक्र Y अक्ष के समानांतर होगा।

पैमाने के स्थिर प्रतिफल के दिए होने पर पूँजी श्रम जिस तीवृता से बढ़ते है उत्पादन तथा बचत में वैसे बढ़ते है। इस तरह संतुलन विकास संभव है। सोलो का मूल समीकरण निम्न होगा।

$$K` = sF\ (\ K, Loe^{nt}) \dots\dots\dots\dots\dots\dots\dots\dots (5)$$

2.3.3 सम्भव विकास प्रारूप

सोलो ने एक नया चर r श्रम से पूँजी का अनुपात (k/L) लिया है। समय के साथ में आनुपातिक परिवर्तन को इस प्रकार लिखते है।

$$\frac{r'}{r} = \frac{k'}{k} - \frac{L'}{L} \dots\dots\dots\dots\dots\dots\dots\dots\dots\dots\dots (6)$$

समय के साथ r में आनुपातिक परिवर्तन
= समय के साथ पूँजी स्टॉक में आनुपातिक परिवर्तन − समय के साथ श्रम शक्ति में आनुपातिक परिवर्तन

समीकरण (6) में $K` = sF\ (k,L)$ एवं $\frac{L}{L} = n$ रखने पर

$$\frac{r'}{r} = \frac{sF\ (K,L)}{K} - n$$

or

$$r` = r \times \frac{sF\ (K, L\ )}{K} - nr \dots\dots\dots\dots\dots\dots\dots (7)$$

L से गुणा तथा भाग देने पर समीकरण 7 का स्वरूप बदलने से क्योंकि उत्पादन फलन प्रथम कोटि के समरूप है।

$$r` = r \times \frac{sFL(\frac{K}{L}, 1)}{K} - nr$$

$$Or\ \ r` = r \times \frac{L}{K} \times sF(\frac{K}{L}, 1) - nr$$

जैसा कि सोलो ने बताया $r = \frac{K}{L}$ या $\frac{1}{r} = \frac{L}{K}$ होगा तो आधारभूत समीकरण

$$r` = r \times \frac{1}{r} \times sF(r, 1) - nr$$

$$r` = sF(r,1) - nr \ldots\ldots\ldots\ldots\ldots (8)$$

समीकरण 8 में r = पूँजी श्रम अनुपात के परिवर्तन की दर जबकि (sF (r,1) प्रति श्रमिक पूँजी के फलन के रूप में प्रति व्यक्ति उत्पादन अथवा उत्पादकता को बताता है। nr व्यक्त करता है कि स्थिर पूँजी श्रम अनुपात रखने के लिए पूँजी श्रम अनुपात के किसी भी मूल्य पर प्रति श्रमिक कितना निवेश किया जायें।

2.3.4 विकास प्रारूप के आधारभूत समीकरण की रेखाचित्र द्वारा व्याख्या

आधारभूत समीकरण में $r` = 0$ व रखने से sF (r, 1) = nr होगें। तब पूँजी-श्रम अनुपात स्थिरांक अर्थात पूँजी स्टॉक अवश्य उसी दर से बढेगा जिस दर से श्रम शक्ति बढेगी या श्रम शक्ति का प्रति श्रमिक उत्पादन स्थिर रहेगा ऐसी स्थिति संतुलित विकास को प्रकट करती है।

जैसा कि चित्र (2.1) में दिखाया है कि nr रेखा मूल बिन्दु से जाती है वक्र sF (r,1) इस ढंग से व्यक्त है कि पूँजी की घटती सीमांत उत्पादकता को व्यक्त करें। जब $r` = 0$ तब दोनों वक्र एक दूसरे को e' बिन्दु पर काटते है।

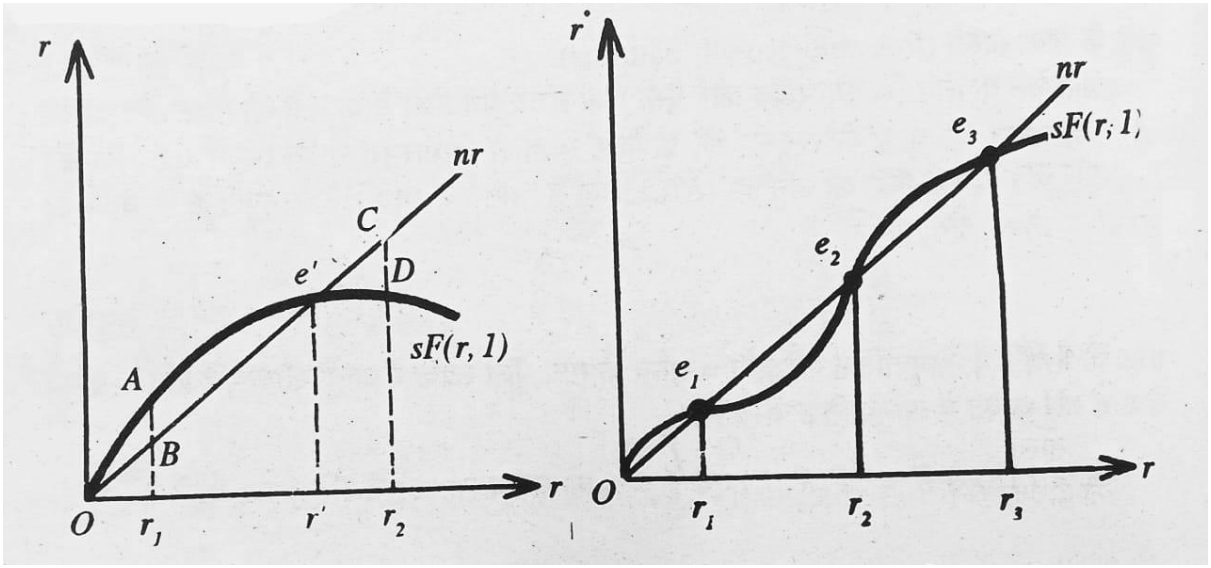

रेखाचित्र 2.1 (A) और (B)

2.3.5 विकास प्रारूप में अस्थिरता की स्थितियां

दूसरी तरफ यदि $sF(r,1)>nr$, तो ऐसी स्थिति में पूँजी एवं उत्पादन में वृद्धि श्रम शक्ति की अपेक्षा अधिक होगी जब तक पूँजी का प्रारम्भिक संतुलन मूल्य $r`$ के बराबर नहीं आ जाता। जैसा चित्र 2.1 (A) में दिया है कि $r_1 > r`$ और बचत की पूर्ति $Ar_1 > Br_1$ निवेश की मात्रा से बिन्दु अ से बिन्दु $e`$ तक पूँजी में वृद्धि तीव्र रहेगी। इसके विपरीत $nr > sF(r,1)$ तब ऐसी स्थिति में निवेश की मात्रा $Cr_2>Dr_2$ बचत की पूँजी क्योंकि $r_2> r`$ से। इसलिए संतुलित विकास के लिए पूँजी श्रम अनुपात (r_2) के मूल्य को कम करके ($r`$) के बराबर रखना होगा।

लेकिन स्थिरता की स्थिति उत्पादकता वक्र की ढाल पर निर्भर करती है। चित्र 2.1 (B) में उत्पादकता वक्र $sF(r, 1)$मूल बिन्दु O से खीचा nr को तीन बिन्दु e_1, e_2 व e_3 पर काटता है। बिंदु O से e_1, तक उत्पादकता की ढाल से स्पष्ट है पूँजी में वृद्धि धीमी है। e_2 पर संतुलन नहीं क्योंकि श्रम वृद्धि रेखा को नीचे से काटता है। e_2 पर संतुलन e_3 तक पूँजी में वृद्धि तीव्र है पूँजी श्रम अनुपात r_1 या r_3 पर संतुलित वृद्धि होगी सोलो ने कहा यह सब संभावनाओं को समाप्त नहीं करता। दो संभावनायें और है जिसे चित्र 2.2 में दिखाया गया है।

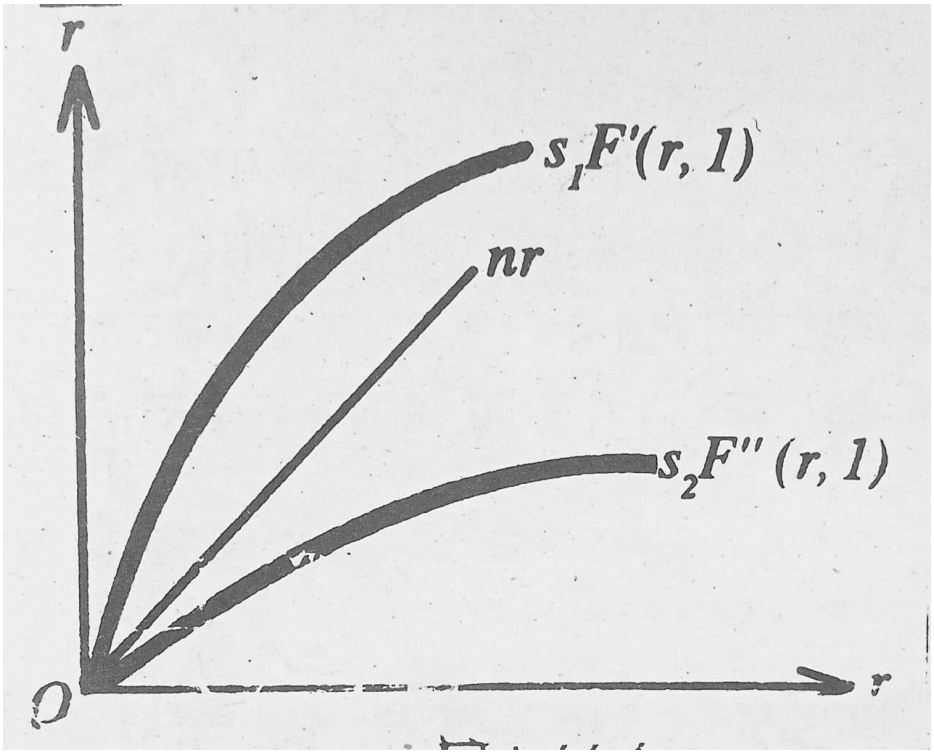

चित्र 2.2

इससे किरण nr संतुलित वृद्धि पथ जहाँ अभीष्ट तथा प्राकृतिक वृद्धि दर बराबर है। वक्र $s_1F`(r, 1)$ जो nr से ऊपर है बहुत उत्पादकीय व्यवस्था व्यक्त करता है। जिसमें पूँजी श्रम की पूर्ति की अपेक्षा अधिक तीव्र बढ़ते है निरंतर पूर्ण रोजगार है आय बचत इतनी बढती है कि पूँजी श्रम अनुपात सीमा रहित बढ़ती है।

जबकि $s_1F``(r, 1)$ एक बहुत अनुत्पादकीय व्यवस्था को व्यक्त करता है इसमें पूर्ण रोजगार पर कम हो रही प्रति व्यक्ति आय की ओर ले जाता है, क्योंकि दत से नीचे है। इसमें भी आय बढ़ती है। क्योंकि शुद्ध निवेश धनात्मक है। श्रम पूर्ति बढ़ रहा है। परन्तु दोनों ही अवस्था में निरंतर घटती सीमांत उत्पादकता पाई जाती है।

सोलो ने निष्कर्ष रूप में अपने प्रारूप में इस प्रकार बताया कि, ***"जब परिवर्ती समानुपातों तथा पैमाने के स्थिर की सामान्य नवक्लासिकी परिस्थितियों के अर्न्तगत उत्पादन होता है तो वृद्धि प्रकृति तथा अभिष्ट दरों में कोई साधारण विरोद्ध सम्भव नहीं कोई छुरी धार संतुलन नहीं हो सकता व्यवस्था श्रम शक्ति की किसी भी दी हुई दर से समायोजन कर सकती है और अन्ततः स्थिर समानुपातिक विस्तार की अवस्था तक पहुँच सकती है।"*** अर्थात

$$\frac{\Delta K}{K} = \frac{\Delta L}{L} = \frac{\Delta Y}{Y}$$

2.4 सोलो का विकास प्रारूप का आलोचनात्मक मूल्यांकन

प्रो. ए. के. सेन कई दृष्टिकोण से इसे दुर्बल तथा कमी वाला मानते है। इसकी प्रमुख आलोचनाएं इस प्रकार है।

1. **अवास्तविक मान्यताँए:- (i)** पूर्ण रोजगार का पाया जाना **(ii)** निवेश का बचत पर निर्भर होना।
2. **निवेश फलन की अनुपस्थिति:-** प्रो. सेन का कहना है कि सोलो प्रारूप निवेश फलन अनुपस्थित है यदि इसे एक बार शामिल कर ले तो सोलों प्रारूप में भी अस्थिरता की हैरोडियन समस्या तुरन्त पैदा हो जाती है।
3. **वास्तविक वृद्धि दर और आवश्यक वृद्धि दर के बीच सन्तुलन की उपेक्षा:-** यह केवल आवश्यक वृद्धि दर (Gw) और प्राकृतिक वृद्धि दर (Gn) के बीच सन्तुलन करने का प्रयास करता है। वास्तविक वृद्धि दर (G) और आवश्यक वृद्धि दर (Gw) में सन्तुलन की समस्या छोड देता है।
4. **पूँजी एवं श्रम का प्रतिस्थापन:-** पूँजी तथा श्रम के बीच में दीर्घकाल में कुछ प्रतिस्थापन होता है परन्तु यह मान लेना कि प्रतिस्थापन की यह सम्भावना सदैव पायी जाती है वास्तविकता से सरासर परे है।
5. **सतत् या नियमित विकास की अवधारणा:-** यह धारणा व्यावहारिक उपयोगिता के बजाए मात्र सैद्धान्तिक महत्व की र्निमूल धारणा बनकर रह जाती है।
6. **पूँजी की समरूपता एवं लोचशीलता की अवास्तविक मान्यता पर आधारित है।**
7. **सोलो प्रारूप श्रम-** वर्द्धक तकनीकी प्रगति की मान्यता पर आधारित है, जिसका कोई आनुभविक औचित्य नहीं है।

2.5 अभ्यास प्रश्न

लघु उत्तरीय प्रश्न

1. सोलो का विकास प्रारूप की मान्यताएं बताइए?
2. सोलो के विकास प्रारूप की मुख्य आधारभूत समीकरण क्या है?
3. सोलो के विकास प्रारूप का सार क्या है?
4. सोलो विकास प्रारूप की आलोचनाएं बताइए?

बहुविकल्पीय प्रश्न

1. सोलो के विकास प्रारूप का वैकल्पिक रूप है:

अ.एडम स्मिथ ब.हैरोड-डोमर

स.माल्थस द. मार्क्स।

2. सोलो के विकास प्रारूप सम्बन्धित हैः

अ.अल्पकालीन वृद्धि से ब. दीर्घकालीन वृद्धि से

स.उपर्युक्त दोनों से द. उपर्युक्त में से कोई नहीं।

2.6 सारांश

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् यह जान चुके हैं कि पूँजी- श्रम अनुपात में परिवर्तन करने से आर्थिक विकास प्रक्रिया में समायोजनशीलता बढ जाती है। दूसरे रूप में कहे, संसाधनों की वर्तमान स्थिति के अनुरूप

उत्पादन में कम या अधिक पूँजी- श्रम अनुपात वाली तकनीक को अपनाना सम्भव हो जाता है। सोलो ने अपने प्रारूप में स्पष्ट किया है कि यदि तकनीकी गुणांक परिवर्ती हो तो पूँजी श्रम अनुपात की प्रवृति यह होगी कि वह अपने आप को समय बीतने पर संतुलन अनुपात की दिशा में समायोजित कर लेगा। यदि श्रम से पूँजी का प्रारंभिक अनुपात अधिक होगा तो श्रम शक्ति की तुलना में पूँजी तथा उत्पादन की वृद्धि अधिक धीरे होगी और विलोमशः भी। सोलो का विश्लेषण संतुलन पक्ष स्थिर अवस्था की ओर केन्द्रित है चाहे वह किसी भी पूँजी श्रम अनुपात से क्यों न प्रारम्भ हों।

सोलो ने निष्कर्ष रूप में अपने प्रारूप में इस प्रकार बताया कि, ***"जब परिवर्ती समानुपातों तथा पैमाने के स्थिर की सामान्य नवक्लासिकी परिस्थितियों के अर्न्तगत उत्पादन होता है तो वृद्धि प्रकृति तथा अभिष्ट दरों में कोई साधारण विरोद्ध सम्भव नहीं कोई छुरी धार संतुलन नहीं हो सकता व्यवस्था श्रम शक्ति की किसी भी दी हुई दर से समायोजन कर सकती है और अन्ततः स्थिर समानुपातिक विस्तार की अवस्था तक पहुँच सकती है।"*** अर्थात

$$\frac{\Delta k}{K} = \frac{\Delta L}{L} = \frac{\Delta Y}{Y}$$

2.7 शब्दावली

- **प्रतिष्ठित अर्थशास्त्री-** एडम स्मिथ और उनके अनुयायी जैसे- रिकार्ड़ा ,जे. एस. मिल आदि।
- **श्रम-वर्द्धक तकनीकी-** उत्पादन की वह प्रकिया जो श्रम प्रधान हो।

2.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

बहुविकल्पीय प्रश्न-

1. ब.हैरोड-डोमर। 2. ब. दीर्घकालीन वृद्धि से।

2.9 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

- सिन्हा वी.सी. (2010) *विकास और पर्यावरणीय अर्थशास्त्र*, सहित्य भवन पब्लिकेशन आगरा।
- एस. पी. सिहं (2001) *आर्थिक विकास एवं नियोजन*, एस चन्द एण्ड कम्पनी लि., नई दिल्ली।
- एम.एल.झिंगन (2002)*आर्थिक विकास एवं नियोजन*,वृंदा पब्लिकेशन्स प्रा. लि. नई दिल्ली।
- धींगरा आई. सी. (1987), *इकोनॉमिक डेवलपमेंट एन प्लानिंग इन इण्डिया*, एस. चन्द्र नई दिल्ली।

2.10 उपयोगी/सहायक ग्रन्थ

- अग्रवाल ए. एन., (2006) *इण्डियन इकोनॉमी (प्रोब्लम ऑफ डेवलपमेंट एण्ड प्लानिंग),* आशीष पब्लिशिंग हाऊस, नई दिल्ली।
- अहलूवालिया, आई. जे. (1985), *इन्डस्ट्रियल ग्रोथ इन इंडिया*, ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, नई दिल्ली।
- अहलूवालिया, आई. जे. एवं लिटिल, आई. एम. डी. (2002), *इण्डियास इकोनॉमिक रिफार्म एण्ड डेवलपमेन्ट*, ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, नई दिल्ली।

2.11 निबन्धात्मक प्रश्न

1. सोलो के विकास प्रारूप की विवेचना कीजिए तथा इसके मुख्य कमियों को इंगित कीजिए?
2. सोलो के विकास प्रारूप की गणितीय विवेचना कीजिए?

इकाई 3- जे. ई. मीड का प्रारूप
(J. E. Meade's Model)

3.1 प्रस्तावना
3.2 उद्देश्य
3.3 जे. ई. मीड नव क्लासिकी आर्थिक विकास प्रारूप
3.3.1 मीड नव क्लासिकी आर्थिक विकास प्रारूप की मान्यताएँ
3.3.2 उत्पादन फलन
3.3.3 प्रति व्यक्ति वास्तविक आय
3.3.4 पूँजी संचय
3.3.5 तकनीकी प्रगति
3.3.6 सत्त आर्थिक वृद्धि की अवस्था
3.3.7 सत्त आर्थिक वृद्धि चित्र
3.4 मीड मॉडल की हेरोड डोमर से तुलना
3.5 आलोचनात्मक मूल्यांकन
3.6 अभ्यास प्रश्न
3.7 सारांश
3.8 शब्दावली
3.9 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
3.10 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
3.11 उपयोगी/सहायक ग्रन्थ
3.12 निबन्धात्मक प्रश्न

3.1 प्रस्तावना

इस इकाई में जे. ई. मीड विकास प्रारूप के सम्बन्ध में बड़े ही स्पष्ट रूप से और विस्तार से इसके विषय में चर्चा की है, इसके अर्न्तगत विकास का निर्धारण किस प्रकार होता है।इसके अतिरिक्त प्रस्तुत इकाई में जे. ई. मीड विकास प्रारूप के सन्तुलन के सम्बन्ध में विस्तार से विश्लेषण प्रस्तुत किया गया है। इस इकाई के अध्ययन के बाद आप जे. ई. मीड विकास प्रारूप के महत्व को समझा सकेगें, तथा एक अर्थव्यवस्था के विकास में इसके योगदान का स्पष्ट विश्लेषण कर सकेगें।

3.2 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप-

- ✓ बता सकेंगे कि जे. ई. मीड का विकास प्रारूप क्या होता है।
- ✓ अतिरेक मूल्य का सिद्वांत को समझ सकेंगे।
- ✓ जे. ई. मीड के विकास प्रारूप की प्रमुख विशेषताएं को जान सकेगें।

3.3 जे. ई. मीड नव क्लासिकी आर्थिक विकास प्रारूप

केम्ब्रिज विश्वविद्यालय के प्रो. जे. ई. मीड ने 1961 में आर्थिक वृद्धि का नव क्लासिकी मॉडल निर्मित किया है। जिसका उद्देश्य यह प्रकट करना है कि संतुलन वृद्धि की प्रक्रिया के दौरान सरलतम प्रतिष्ठित आर्थिक प्रणाली का व्यवहार क्या होगा?

3.3.1 मीड नव क्लासिकी आर्थिक विकास प्रारूप की मान्यताएँ

मीड नव क्लासिकी आर्थिक विकास प्रारूप की प्रमुख मान्यताएँ निम्नवत है-

1. पैमाने के स्थिर प्रतिफल पाए जाते है।
2. स्वतन्त्र बन्द अर्थव्यवस्था होती है जिसमें पूर्ण प्रतियोगिता पाई जाती है।
3. अर्थव्यवस्था में पूँजी तथा उपभोग वस्तुएँ ही उत्पादित होती है।
4. अर्थव्यवस्था में मशीनें ही पूँजी का एकमात्र रूप है।
5. सब मशीनें एक समान मान ली जाती है।
6. माना गया है कि उपभोग वस्तुओं की स्थिर मुद्रा कीमत होती है।
7. भूमि तथा श्रम का पूर्ण प्रयोग होता है।
8. अल्पकाल तथा दीर्घकाल दोनों में ही श्रम का मशीनरी से अनुपात बदला जा सकता है इसे मीड मशीनरी की पूर्ण लोचता कहते है।
9. पूँजी तथा उपभोग वस्तुओं के बीच उत्पादन में पूर्ण स्थानापन्नता होती है।
10. प्रतिवर्ष मशीनरी के ह्रास की पुनः स्थापना होती है।

3.3.2 उत्पादन फलन

अर्थव्यवस्था में उत्पादन फलन चार तत्वों पर निर्भर करता है।

A) मशीनों के रूप में उपलब्ध पूँजी का शुद्ध स्टॉक

B) उपलब्ध श्रम शक्ति की मात्रा

C) भूमि तथा प्राकृतिक साधनों की प्राप्यता

D) तकनीकी ज्ञान की स्थिति जिसमें कालपर्यन्त सुधार होता है।

उत्पादन फलन

$$Y = F(K, L, N, t)$$

जहाँ Y शुद्ध उत्पादन (राष्ट्रीय आय शुद्ध), K पूँजी मशीनों का वर्तमान स्ट्रॉक, L श्रम शक्ति, N भूमि तथा प्राकृतिक साधन और t समय है जो तकनीकी प्रगति को व्यक्त करता है।

राष्ट्रीय आय N को स्थिर मान कर K,L तथा t, में वृद्धि के फलस्वरूप राष्ट्रीय आय में वृद्धि

$$\Delta Y = MPP_K \Delta K + MPP_L \Delta L + \Delta Y` \ldots\ldots\ldots (1)$$

जहाँΔ वृद्धि को MPP_K पूँजी के सीमान्त उत्पादन, ΔK मशीन के स्टॉक में वृद्धि MPP_L श्रम का सीमान्त उत्पादन, ΔL श्रम की मात्रा में वृद्धि, और t की जगह Y` रखने से वार्षिक उत्पादन वृद्धि , ΔY द्वारा व्यक्त है।

समीकरण (1) में दोनों तरफ Y से विभक्त करने पर

$$\frac{\Delta Y}{Y} = \left(\frac{MPP_K}{Y} \times \Delta K\right) + \left(\frac{MPP_L}{Y} \times \Delta L\right) + \frac{\Delta Y`}{Y} \ldots\ldots\ldots (1)$$

ΔK में K से गुणा तथा K से विभाजन ΔL में L से गुणा तथा L से विभाजन करने पर

$$\frac{\Delta Y}{Y} = \left\{\frac{MPP_K}{Y}\left(\frac{\Delta K}{K}\right) \times K\right\} + \left\{\frac{MPP_L}{Y}\left(\frac{\Delta L}{L}\right) \times L\right\} + \frac{\Delta Y`}{Y}\}$$

यदि $\frac{\Delta Y}{Y}$ उत्पादन की आनुपातिक वृद्धि दर, $\frac{\Delta K}{K}$ पूँजी स्ट्रॉक में आनुपातिक वृद्धि दर, $\frac{\Delta L}{L}$ श्रम की आनुपातिक वृद्धि दर और $\frac{\Delta Y`}{Y}$ तकनीकी प्रगति की आनुपातिक वृद्धि दर है। हम इन आनुपातिक वृद्धि दरों को क्रमशः y, k, l तथा r से व्यक्त करते है। अत: आधारभूत समीकरण इस प्रकार से होगा

$$y = Uk + Ql + r \ldots\ldots\ldots\ldots\ldots (2)$$

जहाँ

y = आय की वृद्धि दर

U = पूँजी के आनुपातिक सीमान्त उत्पादन

k = पूँजी स्टॉक में वृद्धि की दर

Q = श्रम का सीमांत उत्पादन

l = जनसंख्या की वृद्धि दर

r = तकनीकी की वृद्धि दर

3.3.3 प्रति व्यक्ति वास्तविक आय

अर्थव्यवस्था की वास्तविक प्रगति की सूचक प्रति व्यक्ति वास्तविक आय है।

प्रति व्यक्ति वास्तविक आय में वृद्धि

$$y - 1 = U_K + Ql + r - 1$$

$$= U_K - 1 + QL + r$$

$$= U_K - (1 + Q)l + r$$

समीकरण में $-(1 + Q)l$ घटते प्रतिफल को प्रकट करता है।

3.3.4 पूँजी संचय

अर्थव्यवस्था की वृद्धि दर पूँजी संचय की वृद्धि पर भी निर्भर करती है। समीकरण में Uk में निहित

$$U_K = \frac{\text{MPP}_K}{\text{Y}}\left(\frac{\Delta\text{K}}{\text{K}}\right) \times \text{K}$$

$$\Delta\text{K} = I = sY$$

$$U_K = \frac{\text{MPP}_K}{\text{Y}}\left(\frac{\text{sY}}{\text{K}}\right) \times \text{K}$$

$$U_K = \text{MPP}_K\, \text{s}$$

$$U_K = \text{vs} \qquad \ldots (\text{MPP}_K = \text{v})$$

समीकरण (2) में $U_K = \text{vs}$ रखने पर

$$y - l = vs - (1 - Q)l + r$$

3.3.5 तकनीकी प्रगति

यदि तकनीकी प्रगति (r) व जनसंख्या (l) को स्थिर मान ले तो बचत में वृद्धि प्रति व्यक्ति पूँजी बढ़ा देगा और पूँजी के सीमांत उत्पादन (v) में कमी लायेगा यदि श्रम व भूमि के स्थानापन्न में पूँजी का प्रयोग हो तो v में अपेक्षाकृत कम कमी होगी तथा r के कारण v में वृद्धि होगी तो आगे समय में PQI में वृद्धि करेगी। और बचत (S) बढ़ेगी।

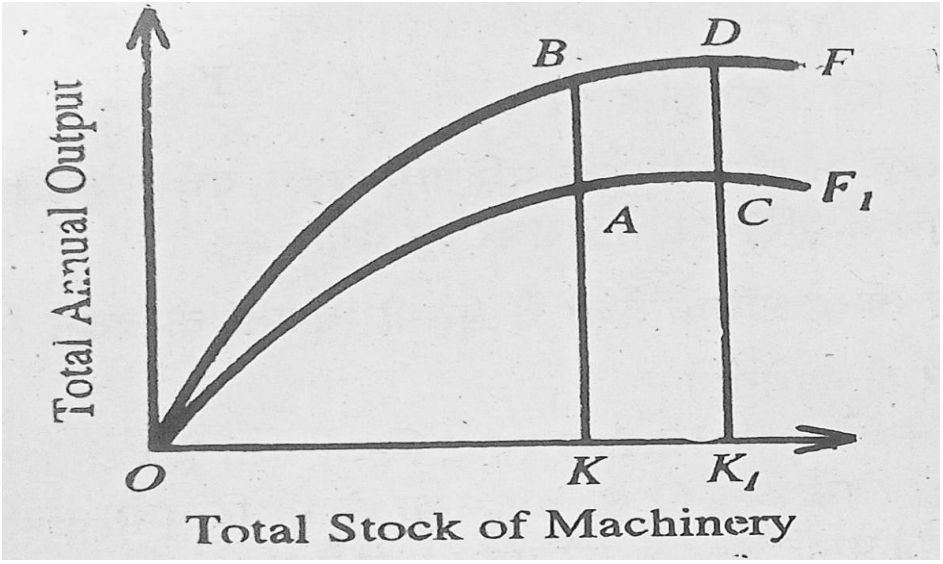

चित्र 3.1

स्थिर जनसंख्या (1 = o) पर प्रति व्यक्ति आय (PPI)

$$y - l = vs - (1 - Q)l + r$$

$$y = vs + r \quad \ldots\ldots (l = 0)$$

यदि r को भी स्थिर मान ले तो y = vs होगा।

कुल राष्ट्रीय आय पर तकनीकी प्रगति प्रभाव को रेखाचित्र में स्पष्ट किया गया है।

3.3.6 सत्त आर्थिक वृद्धि की अवस्था

इस अवस्था में **प्रो. मीड** ने जनसंख्या में आनुपातिक दर (l) से बढ़ रही है तकनीकी प्रगति की दर (r) स्थिर है। कुल उत्पादन आय तथा प्रति व्यक्ति आय में वृद्धि दर स्थिर है इनके लिए तीन स्थितियां होनी चाहिए

(क) विभिन्न साधनों के बीच प्रतिस्थापन लोच समान हो।

(ख) तकनीकी प्रगति की दर सभी साधनों के प्रति तटस्थ है।

(ग) बचाए हुए लाभ (Sv) बचाई मजदूरी (Sw) व बचाए लगान (Sy) के अनुपात सब स्थिर हो।

कुल बचत $S = SvU + SwQ + Sg$ का राष्ट्रीय आय में अनुपात भी स्थिर रहेगा।

समीकरण (2) में $Y = Uk + Ql + r$ में सत्त वृद्धि अवस्था में U,Q, L, और r के मान स्थिर है। जबकि $K = \frac{\Delta K}{K} = \frac{(I=sY=S)}{K}$ [$\Delta K = I = sY = S$ भी स्थिर है। अतः $\frac{Y}{K}$ तब स्थिर रहेगा जब पूँजी स्ट्रॉक की वृद्धि दर (k) राष्ट्रीय आय की वृद्धि दर (y) के बराबर हो, तब आय वृद्धि दर स्थिर रहेगी।

क्रांतिक वृद्धि दर - सत्त वृद्धि के लिए $\frac{\Delta Y}{Y} = \frac{\Delta K}{K}$ जिसे प्रो. मीड ने कहा कि पूँजी स्टॉक की एक क्रांतिक वृद्धि दर होती है जिस पर आय तथा पूँजी स्टॉक की वृद्धि दरें बराबर होती है। इसलिए $y = k = a$ को समीकरण (2) में रखने पर

$$y = Uk + Ql + r$$

$$a = Ua + Ql + r \quad \ldots (y = k = a)$$

$$a - Ua = Ql + r$$

$$a(1 - U) = Ql + r$$

$$a = \frac{Ql + r}{1 - U}$$

अस्थिरता की स्थितियाँ - पूँजी स्टॉक की वृद्धि दर k या $\frac{\Delta K}{K} = \frac{sY}{K} > \frac{Ql+r}{1-U}$ तो इस स्थिति में पूँजी स्टॉक में वृद्धि आय में वृद्धि से अधिक होगी तो परिणाम में बचत कम होगी पूँजी में वृद्धि दर में कमी होगी जो आय वृद्धि दर के बराबर ला देगी।

यदि $\frac{Ql+r}{1-U} > k$ तो आय वृद्धि पूँजी स्टॉक वृद्धि से अधिक है तो बचतों के बढ़ने से पूँजी स्टॉक की दर बढ़ कर आय में वृद्धि स्टार के बराबर हो जाएगी।

3.3.7 सत्त आर्थिक वृद्धि चित्र

रेखाचित्र में क्षैतिज अक्ष पर पूँजी स्टॉक की वृद्धि दर (k) को व बिन्दु से 45^0 रेखा से दिखाया गया है। अनुलम्ब अक्ष पर जनसंख्या वृद्धि (Q_l) जमा तकनीकी प्रगति (r) को मापा गया है। (Ay) राष्ट्रीय आय की वृद्धि दर (y) को व्यक्त करता है (U)रेखा पूँजी की आनुपातिक सीमांत उत्पादकता को मापता है।

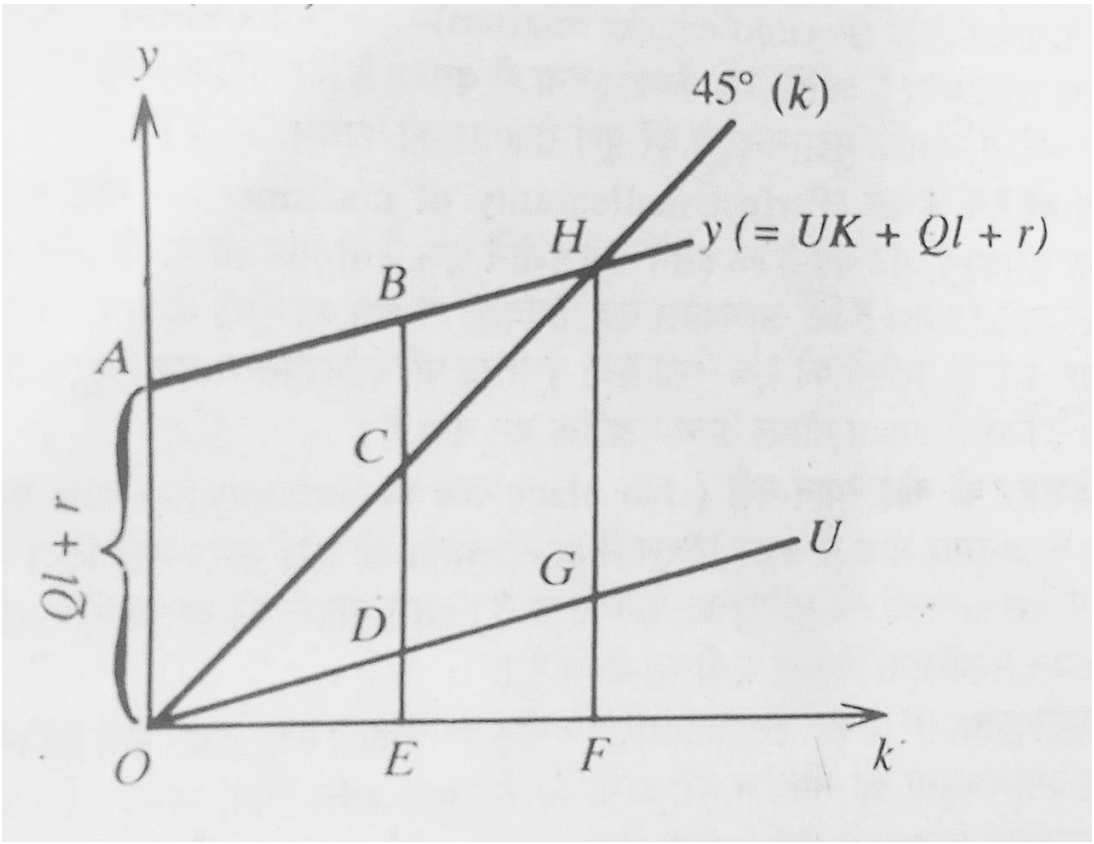

चित्र 3.2

स्पष्ट है कि बिन्दु B पर राष्ट्रीय आय वृद्धि दर (y)अधिक है पूँजी स्टॉक वृद्धि दर (k) से क्योंकि 45^0 (k) रेखा नीचे रहती है रेखा (y) से राष्ट्रीय आय की वृद्धि दर $(y) =$ BE $> CE$ पूँजी स्टॉक की वृद्धि दर (k) से। वास्तव में $(CE = OE)$। राष्ट्रीय आय में पूंजी की आनुपातिक सीमांत उत्पादकता (U) बराबर DE व जनसंख्या वृद्धि जमा तकनीकी प्रगति ($Q_l + r$) बराबर BD।

अतः बिंदु B सत्त आर्थिक वृद्धि का बिन्दु नहीं होगा।

परिणामस्वरुप पूँजी स्टॉक (k) बढ़ाना शुरू होगा जब तक बिंदु H नहीं आता। जहाँ $y = k =$ HF जोकि सत्तवृद्धि की अवस्था को बता रहा है।

क्रांतिक वृद्धि दर की माप:- रेखाचित्र 3.2 में H बिन्दु क्रांतिक वृद्धि दर बिन्दु है।

$$y = Uk + Ql + r$$

$$HF = GF \times HF + GH \quad \ldots\ldots (Ql + r = GH$$

$$HF - GF \times HF = GH$$

$$HF(1 - GF) = GH$$

$$HF = \frac{GH}{1 - GF}$$

Or

$$OF = \frac{GH}{1 - GF} \; \ldots\ldots \quad (HF = OF)$$

$$k = \frac{Q\boldsymbol{l} + r}{1 - U}$$

$$a = \frac{Q\boldsymbol{l} + r}{1 - U} \ldots\ldots (Y = k = a)$$

3.4 मीड मॉडल की हैरेड डोमर से तुलना

मीड की सत्त वृद्धि दर में $\frac{\Delta Y}{Y} = \frac{\Delta K}{K}$ जबकि हैरोड के अनुसार सत्त वृद्धि दर तब होगी जब $G = Gw = Gn$ डोमर में $\frac{\Delta I}{I} = \infty \sigma$

प्रो. मीड का पूँजी का सीमांत उत्पादन MPP_K बराबर है डोमर के सिग्मा (σ) के।

$$MPP_K = \frac{\Delta Y}{I} = \sigma$$

$$\frac{\Delta Y}{sY} = \sigma; \frac{\Delta Y}{Y} = s\sigma \quad \ldots . (\Delta K = I = sY)$$

$G_W = s\sigma$ हरोड़ की अभीष्ट दर $\frac{\Delta Y}{Y} = G_W$

3.5 आलोचनात्मक मूल्यांकन

(1) पूर्ण प्रतियोगिता

(2) पैमाने के स्थिर प्रतिफल

(3) अभासी-कारण सम्बन्ध

(4) मशीन की पूर्ण लोचता

(5) अनिश्चिता को कोई स्थान नही

(6) बन्द अर्थव्यवस्था

(7) संस्थानिक तत्वों की उपेक्षा

(8) गणितीय मॉडल

गुण (Merit)-

(1) इसका प्रमुख गुण यह है कि यह काल पर्यन्त राष्ट्रीय आय की वृद्धि दर तथा प्रति व्यक्ति वास्तविक आय दर जनसंख्या वृद्धि, पूंजी-संचय तथा तकनीकी प्रगति का प्रभाव प्रदर्शित करता है।

(2) सतत आर्थिक वृद्धि की अवस्था वस्तुतः श्रीमति रॉबिन्सन के स्वर्ण युग से अधिक ढंग से की गयी व्याख्या है जिसमें उन चरों का अध्ययन किया गया है जिसे उन्होने स्थिर माना है।

3.6 अभ्यास प्रश्न

लघु उत्तरीय प्रश्न

1. मीड ने इतिहास की भौतिकवादी व्याख्या किस प्रकार की है?
2. मीड का अतिरेक मूल्य का सिद्वांत क्या है?
3. मीड के विकास प्रारूप की मुख्य गुण क्या है?
4. मीड ने पूँजीवाद के पतन के क्या कारण बताए है?

बहुविकल्पीय प्रश्न

1. मार्क्स के अनुसार वस्तु के मूल्य का आधार हैः

अ.श्रम ब. भूमि

स. पूँजी द.खनिज संम्पदा।

2. Das Capital पुस्तक के लेखक हैः

अ.एडम स्मिथ ब. रिकार्डो

स.माल्थस द. मार्क्स।

3. मार्क्स का अतिरेक मूल्य हैः

अ. प्रयोग मूल्य ब. प्रयोग मूल्य एवं विनिमय मूल्य का अन्तर

स. विनिमय मूल्य द. कोई नहीं।

3.7 सारांश

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् यह जान चुके हैं कि जे. ई. मीड ने 1961 में आर्थिक वृद्धि का नव क्लासिकी मॉडल निर्मित किया है जिसका उद्देश्य यह प्रकट करना है कि संतुलन वृद्धि की प्रक्रिया के दौरान सरलतम क्लासिकी आर्थिक प्रणाली का व्यवहार क्या होगा।यह काल पर्यन्त राष्ट्रीय आय की वृद्धि दर तथा प्रति व्यक्ति वास्तविक आय दर जनसंख्या वृद्धि, पूंजी-संचय तथा तकनीकी प्रगति का प्रभाव प्रदर्शित करता है।सतत आर्थिक वृद्धि की अवस्था वस्तुतः श्रीमति रॉबिन्सन के स्वर्ण युग से अधिक ढंग से की गयी व्याख्या है जिसमें उन चरों का अध्ययन किया गया है जिसे उन्होने स्थिर माना है।

3.8 शब्दावली

- **प्रतिष्ठित अर्थशास्त्री-** एडम स्मिथ और उनके अनुयायी जैसे- रिकार्डो,जे. एस. मिल आदि।
- **विकास दूत-** (1) भूमिपति (2) पूँजीपति तथा(3) श्रमिक जिनमें भूमि की समस्त उपज बाँटी जाती है।
- **स्थिर अवस्था-** अर्थव्यवस्था एक ऐसी स्थिति जहॉ लाभ शून्य तक गिर जाए और पूँजी -संचय बिल्कुल रुक जाएगा।

3.9 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

बहुविकल्पीय प्रश्न-

1.अ.श्रम। 2. द. मार्क्स। 3. ब. प्रयोग मूल्य एवं विनिमय मूल्य का अन्तर।

3.10 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

- सिन्हा वी.सी. (2010) *विकास और पर्यावरणीय अर्थशास्त्र*, सहित्य भवन पब्लिकेशन आगरा।
- एस. पी. सिहं (2001) *आर्थिक विकास एवं नियोजन*, एस चन्द एण्ड कम्पनी लि., नई दिल्ली।
- एम.एल.झिंगन (2002)*आर्थिक विकास एवं नियोजन*,वृंदा पब्लिकेशन्स प्रा. लि. नई दिल्ली।
- धींगरा आई. सी. (1987), *इकोनॉमिक डेवलपमेंट एन प्लानिंग इन इण्डिया*, एस. चन्द्र नई दिल्ली।

3.11 उपयोगी/सहायक ग्रन्थ

- अग्रवाल ए. एन., (2006) *इण्डियन इकोनॉमी (प्रोब्लम ऑफ डेवलपमेंट एण्ड प्लानिंग),* आशीष पब्लिशिंग हाऊस, नई दिल्ली।
- अहलूवालिया, आई. जे. (1985), *इन्डस्ट्रियल ग्रोथ इन इंडिया*, ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, नई दिल्ली।
- अहलूवालिया, आई. जे. एवं लिटिल, आई. एम. डी. (2002), *इण्डियास इकोनॉमिक रिफार्म एण्ड डेवलपमेन्ट*, ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, नई दिल्ली।

3.12 निबन्धात्मक प्रश्न

1. मीड के विकास प्रारूप की विवेचना कीजिए तथा इसके मुख्य कमियों को इंगित कीजिए।
2. "मीड के विकास प्रारूप पश्चिमी पूँजीवाद के उदभव एवं विकास को स्पष्ट करने का प्रयास करता है।" व्याख्या कीजिए?
3. मीड के विकास प्रारूप व्याख्या की विवेचना कीजिए?

इकाई 4- जॉन रॉबिन्सन का प्रारूप

(Joan Robinson's Model)

4.1 प्रस्तावना

4.2 उद्देश्य

4.3 श्रीमती रॉबिन्सन के विकास प्रारूप

4.3.1 श्रीमती रॉबिन्सन के विकास प्रारूप का इतिहास

4.3.2 श्रीमती रॉबिन्सन के विकास प्रारूप की मान्यतायें

4.3.3 आर्थिक समस्या

4.4 जॉन रॉबिन्सन का विकास प्रारूप की विवेचना

4.4.1 मॉडल का गणितीय रूप

4.4.2 स्वर्ण युग

4.4.3 स्वर्ण युग के अन्य रूप

4.4.4 तकनीकी प्रगति

4.5 रॉबिन्सन तथा हैरॉड-डोमर मॉडल में सम्बन्ध

4.6 जॉन रॉबिन्सन के मॉडल की सीमायें

4.7 श्रीमती रॉबिन्सन के मॉडल का अर्थव्यवस्था में महत्त्व

4.8 अभ्यास प्रश्न

4.9 सारांश

4.10 शब्दावली

4.11 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

4.12 सन्दर्भ सहित ग्रन्थ

4.13 उपयोगी सहायक ग्रन्थ

4.14 निबन्धात्मक प्रश्न

4.1 प्रस्तावना

इससे पहले की इकाई में आपने सोलो और मीड के आर्थिक विकास के प्रारूप के बारे में विस्तृत रूप से जानकारी प्राप्त की। इस इकाई में हम आर्थिक विकास के अध्ययन विधि से रॉबिन्सन के विकास प्रारूप का अध्ययन करेंगे।आर्थिक विकास के अध्ययन के क्षेत्र में रॉबिन्सन के मॉडल का महत्वपूर्ण योगदान है।

श्रीमती जोन रॉबिन्सन ने सन् 1956 में प्रकाशित अपनी पुस्तक **'The Accumulation of Capital'** में आधुनिक पूंजीवादी अर्थव्यवस्था के सम्बन्ध में एक विकास मॉडल का निर्माण किया था। श्रीमती रॉबिन्सन का यह मॉडल आर्थिक विकास के जनसंख्या वृद्धि के घटक को स्वीकार करते हुये पूँजी संचय की दर और उत्पादन वृद्धि पर जनसंख्या वृद्धि के प्रभावों का विश्लेषण प्रस्तुत करता है।

इस वृद्धि से रॉबिन्सन मॉडल को केन्सवादी विधि से क्लासिकल सिद्धान्त पुनर्व्यवस्था के रूप में देखा जा सकता है जिसका मूल उद्देश्य अल्पविकसित देशों के विकास की समस्याओं का समाधान करना है।

4.2 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन से आप यह समझा सकेंगे कि-

- ✓ आर्थिक विकास का क्या अर्थ है।
- ✓ रॉबिन्सन का प्रारूप किस प्रकार की अर्थव्यवस्था से सम्बन्ध रखता है।
- ✓ रॉबिन्सन के विकास प्रारूप के प्रमुख तथ्य क्या हैं।
- ✓ श्रमिक वर्ग तथा उद्यमी वर्ग से क्या अर्थ हैं।
- ✓ पूँजी निर्माण का क्या अर्थ हैं।
- ✓ स्वर्ण युग से क्या तात्पर्य हैं।
- ✓ स्वर्ण युग के अन्य रूप क्या-क्या हैं।
- ✓ आप तकनीकी प्रगति को ठीक प्रकार से बता सकेंगेंण्णतकनीकी प्रगति का क्या अर्थ है।
- ✓ रॉबिन्सन के मॉडल का महत्त्व समझ सकेंगे।
- ✓ रॉबिन्सन के मॉडल का अन्य मॉडलों से सम्बन्ध समझा सकेंगे।

4.3 श्रीमती रॉबिन्सन का विकास

श्रीमती जोन रॉबिन्सन ने सन् 1956 में प्रकाशित अपनी पुस्तक **'The Accumulation of Capital'** में आधुनिक पूंजीवादी अर्थव्यवस्था के सम्बन्ध में एक विकास मॉडल का निर्माण किया था। श्रीमती रॉबिन्सन का यह मॉडल आर्थिक विकास के जनसंख्या वृद्धि के घटक को स्वीकार करते हुये पूँजी संचय की दर और उत्पादन वृद्धि पर जनसंख्या वृद्धि के प्रभावों का विश्लेषण प्रस्तुत करता है।

4.3.1 श्रीमती रॉबिन्सन के विकास प्रारूप का इतिहास

जॉन रॉबिन्सन के विकास प्रारूप का इतिहास - रॉबिन्सन का मॉडल हैरॉड मॉडल का विस्तार है। अपने आर्थिक विकास के विभिन्न मॉडलों का विस्तार रॉबिन्सन द्वारा प्रकाशित पुस्तक-**'The Accumulation of**

Capital' मिलता है। यह विकास के प्रारूप का महत्वपूर्ण मॉडल है। हम रॉबिन्सन मॉडल के अध्ययन से समझ सकेंगें कि .... रॉबिन्सन का मॉडल निम्न दो तथ्यों पर आधारित है-

1. पूँजी निर्माण की दर आय के वितरण पर निर्भर करती है।
2. श्रम के प्रयोग की दर पूँजी की पूर्ति तथा श्रम की पूर्ति पर निर्भर करती है।

4.3.2 श्रीमती रॉबिन्सन के विकास प्रारूप की मान्यतायें

रॉबिन्सन का मॉडल निम्नलिखित मान्यताओं पर आधारित हैं: जिसका अध्ययन हम निम्नलिखित बिन्दुओं के अन्तर्गत कर सकतें हैं-

1. पूँजीवादी अबन्ध एवं बन्द अर्थव्यवस्था है।
2. ऐसी अर्थव्यवस्था में केवल पूँजी और श्रम ही उत्पादकीय साधन है।
3. दिये हुये उत्पादक का उत्पादन करने के लिए पूँजी तथा श्रम स्थिर अनुपातों में लगाये जाते हैं। तकनीकी प्रगति तटस्थ है।
4. श्रम की कमी नहीं होती, और उद्यमी जितना चाहे श्रम को रोजगार पर लगा सकते हैं।
5. केवल दो ही वर्ग होते हैं- **'श्रमिक वर्ग'** तथा **'उद्यमी वर्ग'**
6. श्रमिक तथा उद्यमी जिनके बीच आय का वितरण होता है।
7. श्रमिक कुछ बचत नहीं करते और अपनी मजदूरी-आय को उपभोग पर व्यय करते हैं।
8. बचत करने और लाभ से प्राप्त अपनी समस्त आय को पूँजी-निर्माण के लिए निवेश करने के सिवाय उद्यमी कुछ नहीं उपभोग करता।
9. कीमत-स्तर में कोई परिवर्तन नहीं होता।
10. पूर्ण प्रतियोगी अर्थव्यवस्था है।

4.3.3 आर्थिक समस्या

अर्थशास्त्र में किसी भी तरह की समस्या वास्तविक जगत से सम्बन्धित होती है। रॉबिन्सन के मॉडल से हम आर्थिक विकास से जुड़ी समस्याओं की जानकारी प्राप्त होती है।

जॉन रॉबिन्सन ने अपने मॉडल में Golden Age' की बात कही है जहाँ रोजगार पूर्ण रूप से होगा तथा पूँजी का पूर्णतः सदुपयोग होगा।

रॉबिन्सन के शब्दों में - ***''जब तकनीकी परिवर्तन तटस्थ हो, और एक स्थिर गति से हो, तब अर्थव्यवस्था 'स्वर्ण युग' की स्थिति में होगी। अल्पविकसित अर्थव्यवस्थाओं की समस्या स्थिरता की समस्या नहीं है, बल्कि वह आर्थिक विकास की गति को तेज करने की समस्या है।***

रॉबिन्सन ने 'स्वर्ण युग' की बात कही है स्वर्ण युग जब अर्थव्यवस्था पूर्णतः रोजगार की स्थिति में हो। जनसंख्या की वृद्धि दर, संसाधनों की वृद्धि के बराबर हो, अर्थव्यवस्था में किसी भी प्रकार का कोई आपदा न हो, ऐसी स्थिति 'स्वर्ण युग' कहलायेगी।

When technical progress is neutral, and procreation steadily without any change in the time pattern of production the competitive mechanism working freely, population growing at a steeply rate and accumulation growing un jest enough to supply predictive Capacity for all available labour the rate of profit tend to be construct and the level of real wager to rise with output annual output and the stock of capital then grow together at a constant proportionate rate compounded of the rate of increase of the labour force and the rate of increase of lab ouput per man.

We may describe these conditions as a 'golden age'

4.4 जॉन रॉबिन्सन का विकास प्रारूप की विवेचना

4.4.1 मॉडल का गणितीय रूप

इस मॉडल के अनुसार चूंकि उत्पादन के दो ही साधन हैं- पूँजी तथा श्रम। अतः राष्ट्रीय आय, सकल लाभों तथा सकल मजदूरियों का योग होगी।

$$Y = wN + pK$$

अर्थात्

कुल आय = (मजदूरी X श्रमिकों की संख्या) + (लाभ की दर ग् पूँजी की मात्रा)

इस समीकरण में,

Y = कुल आय

w = मजदूरी दर

N = श्रमिकों की संख्या

p = लाभ की दर

K = पूँजी की मात्रा

लाभ की दर जो कि पूँजी संचय का आधार है, का मान निम्नलिखित सूत्र द्वारा ज्ञात किया जा सकता है-

$$P = \frac{Y - wN}{K} = \frac{\text{राष्ट्रीय आय} - \text{कुल मजदूरी}}{\text{पूँजी की मात्रा}}$$

श्रमिकों को मजदूरी देने के बाद बची हुई शुद्ध राष्ट्रीय आय से पूँजी का अनुपात ही लाभ की दर है। दूसरे शब्दों में लाभ की दर, आय (Y) (श्रम उत्पादकता), वास्तविक मजदूरी दर (w), तथा पूँजी-श्रम अनुपात घट जाता है। अतः इस प्रकार की स्थितियों में एक साहसी अपने लाभ को अधिकतम कर सकता है। इसी प्रकार मजदूरी दर:

$$w = \frac{Y - PK}{N} = \frac{\text{राष्ट्रीय आय} - \text{पूँजी का हिस्सा}}{\text{श्रम की संख्या}}$$

व्यय के पक्ष से शुद्ध राष्ट्रीय आय (Y) बराबर होती है,

उपभोग व्यय (C) + निवेश व्यय (I)

$$Y = C + I$$

इस तरह, रॉबिन्सन का यह मॉडल व्यय पक्ष की दृष्टि से केन्स की धारणा को ही स्वीकार करता है।

श्रीमती रॉबिन्सन ने न्यूमैन की धारणा के अनुरूप यह मान लिया है, कि मजदूरियों में से बचत शून्य होती है, क्योंकि मजदूर अपनी समस्त आय को उपभोग पर खर्च कर देते हैं और कुछ भी बचत नहीं कर पाते हैं। बचत उद्यमियों द्वारा की जाती है।

(उद्यमी लाभों को व्यय न करके केवल विनियोग करते हैं)

अतः $S = I$

जहाँ S = बचत (Saving)

तथा I = विनियोग (Investment)

बचत और विनियोग बराबर होते हैं।

जब सम्पूर्ण लाभ विनियोग के लिए होते हैं, तो किसी निश्चित समय में पूँजी की वृद्धि लाभ की दर तथा पूँजी की मात्रा के गुणनफल के बराबर होती है।

इस पर यह स्पष्ट है कि,

यदि मजदूरी निकालकर आय स्थिर रहती है और पूँजी-श्रम अनुपात ऊँचा हो जाता है, तो लाभ की दर कम हो जायेगी और परिणामस्वरूप पूँजी निर्माण की दर कम हो जायेगी।

बचत-निवेश सम्बन्ध को निम्न प्रकार व्यक्त कर सकते हैं-

$$S = PK$$

$$I = \Delta K$$

यहाँ Δ k वास्तविक पूँजी में वृद्धि को दर्शा रहा है।

$$pK = \Delta K; \qquad S = I$$

या

$$p = \frac{\Delta K}{K}$$ पूँजी में वृद्धि की दर है

अथवा पूँजी संचय की दर है।

इस प्रकार गणितीय विश्लेषण से आप समझ चुके होंगें कि ,-

पूँजी संचय की दर ($\frac{\Delta K}{K}$) क्योंकि लाभ की दर (P) के बराबर ही है इसलिए पूँजी संचय की मात्रा भी उन्हीं घटकों पे निर्भर करती है जिन पर लाभ की मात्रा निर्भर करती है पूँजी संचय (Δ K) की मात्रा के अतिरिक्त एक अन्य महत्त्वपूर्ण घटक है जनसंख्या वृद्धि, जिससे विकास की दर सम्बन्धित है।

यदि जनसंख्या अथवा श्रम शक्ति में वृद्धि पूँजी संचय की तुलना में कहीं अधिक हो जाती है तो इसके कारण श्रम उत्पादकता घटेगी। बेराजगारी की समस्या भी बढ़ेगी और अन्य अनेक समस्यायें स्वयं और उत्पन्न होंगी।

रॉबिन्सन ने यह विचार भी स्पष्ट किया कि पूर्ण रोजगार की स्थिति तब तक ही सम्भव है, जब तक जनसंख्या की वृद्धि के अनुपात में उतनी ही पूँजी वृद्धि की दर चलती रहे।

4.4.2 स्वर्ण युग

इस प्रकार एक ओर पूँजी की वृद्धि-दर ($\frac{\Delta K}{K}$) और जो अर्थव्यवस्था की वृद्धि-दर ($\frac{\Delta N}{N}$) है, को निर्धारित करती है। जब जनसंख्या की वृद्धि-दर पूँजी की वृद्धि दर के बराबर हो जाती है तो अर्थव्यवस्था पूर्ण रोजगार संतुलन में होती है।

$\frac{\Delta N}{N} = \frac{\Delta K}{K}$ ऐसी स्थिति में पूँजी तथा श्रम का पूर्ण नियोजन होता है और इस आधार पर अर्थव्यवस्था की वृद्धि दर निर्धारित होती है। जब ये दोनों दरें समान होती हैं, तो देश की अर्थव्यवस्था पूर्ण रोजगार संतुलन में होती है,

रॉबिन्सन के अनुसार यही 'स्वर्ण युग' है।

$$\text{अर्थात्} \left(\frac{\Delta N}{N} = \frac{\Delta K}{K}\right) = Golden\ Age$$

इस स्वर्ण युग के विषय में श्रीमती रॉबिन्सन ने लिखा है- कि जब यांत्रिक प्रगति धीरे-धीरे होती रहती है, तब बिना उत्पादन व्यवस्थाओं में आमूल परिवर्तन के प्रतियागितात्मक व्यवस्था स्वतन्त्र रूप से कार्य करती है, जनसंख्या मंद गति से बढ़ती है और पूँजी संचय, श्रम की पूर्ति तथा उत्पादन क्षमता की तुलना में अधिक तेजी से होता है। लाभ की दर भी लगभग स्थिर रहती है ओर प्रति व्यक्ति उत्पादन के साथ वास्तविक मजदूरियों में वृद्धि होती है। ऐसी स्थिति में अर्थव्यवस्था में कोई आन्तरिक अव्यवस्था उत्पन्न नहीं हो पाती। साहसियों को भविष्य के विषय में निश्चितता होती है, उनकी संचय प्रवृत्ति यथास्थिर पूर्ववत् बनी रहती है। कुल वार्षिक उत्पादन और पूँजी की मात्रा (वस्तुओं के रूप में मूल्यांकित किये जाने पर) श्रम शक्ति तथा प्रति व्यक्ति उत्पादन में वृद्धि के सन्दर्भ में स्थिर अनुपात से बढ़ती रहती है। इसी को श्रीमती रॉबिन्सन ने 'स्वर्ण युग' कहा है।

इस प्रकार रॉबिन्सन के विकास प्रारूप के स्वर्ण युग के अध्ययन को आप अर्थव्यवस्था की सबसे ठीक स्थिति समझ सकतें हैं

संक्षिप्त रूप में यह एक ऐसी आदर्श अवस्था है जिसमें न तो जनसंख्या और न ही उत्पादन अथवा पूँजी संचय में कमी अथवा अधिकता जैसी कोई असामान्य स्थिति उत्पन्न होने पाती है।

स्वर्णयुग की स्थापना के लिए लाभ तथा मजदूरी का सामंजस्य आवश्यक है।

लाभों की दर स्थिर रहने के लिए निम्न बातें आवश्यक हैं-

1.जनसंख्या का स्थिर अनुपात में बढ़ना।

2.श्रम-आधिक्य के लिए पूँजी-संचय का काफी तेजी से बढ़ना।

3.प्रति व्यक्ति आय की वृद्धि के साथ वास्तविक मजदूरी का स्तर बढ़ना।

इस व्यवस्था में पारस्परिक विरोध नहीं होता, क्योंकि कुल वार्षिक आय तथा पूँजी स्टॉक समान रहते हैं। यह स्थिति 'स्वर्ण युग' कहलाती है।

स्वर्ण युग से विचलन

रॉबिन्सन ने अपने मॉडल में स्वर्ण युग के विचलन की भी बात कही है।

अर्थव्यवस्था 'स्वर्ण युग' के इस रास्ते अथवा बिन्दु से यदि हटती है तो भी इस बात की काफी सम्भावनाए रहती हैं कि वह पुनः संतुलन की स्थिति प्राप्त कर लेगी।

यहाँ पर एक स्वाभाविक प्रश्न यह उठता है कि यदि यह संतुलन भंग हो जाये तो क्या अर्थव्यवस्था में ऐसा कोई विकल्प है, जिसकी सहायता से इसे पुनः प्राप्त किया जा सके? इस विषय का अध्ययन करने से पहले हम यह बता देना उचित समझेंगे कि दो ऐसी स्थितियां हो सकती हैं, जिनमें यह सन्तुलित स्थिति (स्वर्णयुग) नहीं पाई जाती।ये स्थितियां इस प्रकार हैं-

यदि जनसंख्या वृद्धि दर पूँजी की वृद्धि से अधिक है, अर्थात् $\frac{\Delta N}{N} = \frac{\Delta K}{K}$ तो वह अल्प रोजगार की स्थिति को जन्म देती है। इस स्थिति में श्रमिकों की अधिकता मजदूरी की दर को घटा देती है और कीमतों में स्थिरता रहने से वास्तविक मजदूरी कम हो जाती है। इसका परिणाम यह होगा कि लाभ की दर बढ़ जायेगी जो पूँजी की वृद्धि दर को जनसंख्या स्तर तक बढ़ा देगी। इसके विपरीत यदि पूँजी की वृद्धि दर जनसंख्या की वृद्धि दर से अधिक है। अर्थात् $\frac{\Delta K}{K} > \frac{\Delta N}{N}$ तो प्राविधिक सुधारों एवं पूंजी-श्रम अनुपात या उत्पादकता में परिवर्तनों के द्वारा साम्य की स्थिति लाई जा सकती है।

जॉन रॉबिन्सन के मॉडल की व्याख्या चित्र के द्वारा की जा सकती है-चित्र 4.1 में OP उत्पादन फलन को व्यक्त करता है, जिसका प्रत्येक बिन्दु श्रम व पूँजी के अनुपात को प्रदर्शित करता है। पूँजी-श्रम अनुपात मजदूरी-लाभ सम्बन्ध को ज्ञात करने हेतु OP वक्र पर एक स्पर्श रेखा है, जो OP को G बिन्दु पर काटती है तथा खड़े अक्ष को W पर काटती है। G बिन्दु स्वर्ण युग का पूँजी-श्रम अनुपात है जो व के बराबर है। प्रति व्यक्ति उत्पादन OA के बराबर है जिसमें से OW मजदूर दे दी जाती है तथा AW अतिरिक्त है जो पूँजी पर लाभ की दर बताता है।

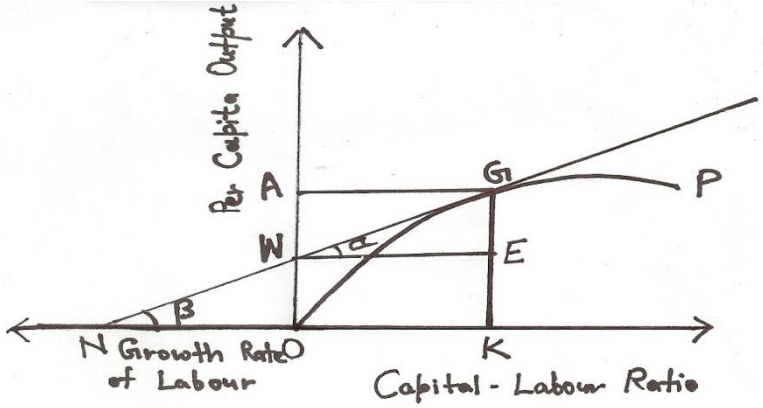

चित्र 4.1

इससे सिद्ध होता है कि पूँजी की वृद्धि दर श्रम की वृद्धि दर के बराबर है अतः पूँजी की वृद्धि दर $(\frac{\Delta K}{K})$ श्रम की वृद्धि दर $(\frac{\Delta N}{N})$ के बराबर हो जाती है।

$$\frac{\Delta K}{K} = \frac{\Delta N}{N}$$

$\frac{EG}{EW}$ व्यक्त करता है $\frac{\Delta K}{K}$

$\frac{OW}{ON}$ व्यक्त करता है $\frac{\Delta N}{N}$

$$\text{अतः } \frac{EG}{EW} = \frac{OW}{ON}$$

$$\text{क्योंकि } \tan\alpha \ - tan\,\beta$$

रॉबिन्सन के अनुसार स्वर्ण युग की स्थिति सम्भाव्य वृद्धि अनुपात (Potential growth Rate) में ही बन सकती है। सम्भाव्य वृद्धि अनुपात पूँजी संचय की चरम सीमा को प्रकट करता है जो लाभ की स्थिर दर पर सदैव ही निर्धारित की जा सकती है।

अतः वृद्धि अनुपात में स्थिरता बनी रहने से ही स्वर्ण युग की स्थिति बन सकती है, अन्यथा नहीं।

परिस्थितियों में परिवर्तन होने से स्वर्ण युग की स्थिति भी बदलती है। स्थिर अवस्था स्वर्ण युग की एक विशिष्ट अवस्था है। इसमें विकास अनुपात शून्य होता है लाभ की दर शून्य होती है और उद्योगों के उत्पादन का कुल भाग मजदूरियों के रूप में ही समाप्त हो जाता है।

इस अवस्था को श्रीमती रॉबिन्सन ने आर्थिक मोक्ष की अवस्था कहा है क्योंकि इस अवस्था में अभोग अपने अधिकतम स्तर पर होता है और ऐसा स्थायी रूप से दी हुई यांत्रिक दशाओं में भी सम्भव हो सकता है।

4.4.3 स्वर्ण युग के अन्य रूप

आपने रॉबिन्सन के मॉडल में स्वर्ण युग की अवधारणा का अध्ययन किया। अब आप रॉबिन्सन द्वारा बताए गए स्वर्ण युग के कुछ अन्य रूपों का भी उल्लेख किया है-

1. **पंगु स्वर्ण युग -** यह वह स्थिति है जब पूँजी संचय की दर पूर्ण रोजगार के लिए आवश्यक दर से कम होती परन्तु फिर भी वह जनसंख्या वृद्धि दर से अधिक होती है। यह अवस्था अर्थव्यवस्था का धीरे-धीरे स्वर्ण युग की तरफ बढ़ने का संकेत करती है।
2. **सीसा युग**- यह पंगु स्वर्ण युग का दुर्भाग्यपूर्ण स्थिति है। इसमें पूंजी-संचय की दर जनसंख्या की वृद्धि दर से कम होती है। बेरोजगारी में वृद्धि होती है, तथा तकनीकी प्रगति अवरुद्ध हो जाती है।
3. **प्रतिबन्धित स्वर्ण युग -**इस अवस्था में पूर्ण रोजगार भी विद्यमान रहता है और पूँजी संचय भी परन्तु साम्य की यह स्थिति $\frac{\Delta K}{K} = \frac{\Delta N}{N}$ के कारण न उत्पन्न होकर किन्हीं अन्य कारणों तथा श्रम संघों के दबाव अथवा सरकारी प्रतिबन्धों व आदेशों के फलस्वरूप होती है।

4. **रेंगता हुआ प्लैटिनम युग-** इस अवस्था में पूर्ण रोजगार होता है। पूँजी गहन तकनीकी अपनायी जाती है।फिर भी लाभ घटने लगते हैं और जब यह घटकर मजदूरी दर के बराबर हो जाते हैं। तब पूँजी संचय और स्टॉक का समायोजन होने पर अर्थव्यवस्था स्थैतिक रूप ग्रहण कर लती है।
5. **उछलता-कूदता प्लैटिनम युग-** इस अवस्था के प्रारम्भ में बेरोजगारी होती है, परन्तु लाभों के बढ़ने के कारण रोजगार बढ़ने लगता है। तीव्र लाभ लालसा पूंजीगत निवेश को बढ़ावा देती है, जिसके फलस्वरूप लाभ तथा रोजगार दोनों बढ़ते हैं। विकास की गति भी बढ़ती है, परन्तु धीरे-धीरे पूँजी निवेश पर मिलने वाला लाभ घट जाता है और अंततः यह अवस्था समाप्त हो जाती है।
6. **दोगला स्वर्ण युग -** यह वह युग है, जिसमें बेराजगारी विद्यमान रहती है। फिर भी संगठित होने के कारण श्रमिक काम करने तथा उत्पादकता बढ़ाने को तैयार नहीं होते। फलस्वरूप पूँजी संचय तथा तकनीकी प्रगति का कार्य रुक जाता है। बेराजगारी के साथ-साथ मुद्रा स्फीति भी बढ़ती है। अर्थव्यवस्था में नरक सी स्थिति उत्पन्न हो जाती है तथा ऊँची मौद्रिक तथा वास्तविक मजदूरी विकास में बाधक सिद्ध होने लगती है।
7. **दोगला प्लैटिनम युग-** यह वह युग है जिसमें तकनीकी प्रगति होती है पूँजी संचय भी होता है तथा पूर्ण रोजगार भी विद्यमान रहता है परन्तु इसके बावजूद श्रमिकों की वास्तविक आय नहीं बढ़ने पाती है।

4.4.4 तकनीकी प्रगति

तकनीकी प्रगति रॉबिन्सन के मॉडल में तटस्थ है। परन्तु तकनीकी प्रगति श्रम की मांग व पूर्ति पर निर्भर करती है। जब फर्मे अपने इर्द-गिर्द प्रसार कर रही लाभदायक मार्केटों का फायदा उठाने में असमर्थ होती है तो वे श्रम-बचतकारी तरीकों को अपनाने का प्रयत्न करती है। ऐसा इसलिए है कि तकनीकी प्रगति की दर को जनसंख्या की वृद्धि दर को शून्य मानते हुये प्रति व्यक्ति उत्पादन में वृद्धि परिभाषित किया गया है। फिर भी वृहद बेरोजगारी होने पर भी तकनीकी प्रगति होती रहती है।

जॉन रॉबिन्सन के अनुसार- ज्ञान की वृद्धि से **'स्वायत्त नवप्रवर्तन'** फर्मों में प्रतियोगिता से **'प्रतियोगी नवप्रवर्तन'** तथा श्रम की कमी से **'प्रेरित नवप्रवर्तन'** हो सकते हैं। मॉडल के दृष्टिकोण से वृद्धि की इच्छित दर प्रतियोगी और स्वायत्त नवप्रवर्तन के कारण वृद्धि की सम्भाव्य दर से कम हो सकती है। इच्छित वृद्धि दर संचय की दर हैं जो जिस स्थिति में फर्मे अपने आपको पाती हैं।

उसी में उन्हें संतुष्ट बनाये रखती है। इच्छित वृद्धि दर संचय की दर के कारण जो लाभ दर होती है उस द्वारा निर्धारित होती है तथा संचय की दर उस लाभ की दर द्वारा प्रेरित होती है। रेखाचित्र द्वारा तकनीकी प्रगति को आप ठीक प्रकार समझ सकेंगें-

चित्र में 4.2 वक्र A लाभ की सम्भावित दर को व्यक्त करता है जो संचय की दर की फलन है।

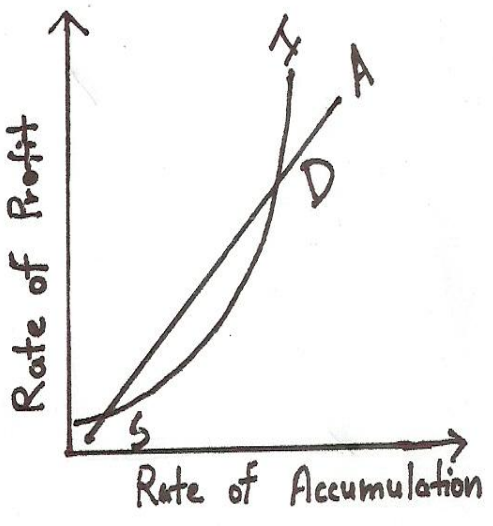

वक्र I संचय की दर को व्यक्त करता है जो संचय (लाभ) की दर की फलन है। बिन्दु D के दाई ओर किसी भी स्थिति में लाभ की सम्भावित दर संचय की दर से कम होती है। इसलिए निवेश बढ़ाने की प्रवृत्ति होती और संचय की दर बढ़ कर बिन्दु D तक पहुँच जायेगी। इस प्रकार बिन्दु D इच्छित वृद्धि दर को व्यक्त करता है। दूसरी ओर सम्भाव्य वृद्धि दर जनसंख्या की वृद्धि और तकनीकी ज्ञान से उत्पन्न होने वाली भौतिक स्थितियों पर निर्भर करती।

4.5 रॉबिन्सन तथा हैरड-डोमर मॉडल में सम्बन्ध

प्रो. कुरिहारा ने रॉबिन्सन एवं हैरड-डोमर मॉडलों के बीच सम्बन्ध को निम्नवत् व्यक्त किया है -

$$P = \frac{\Delta K}{k} = \frac{Y - wn}{k}$$

या $P = \frac{Y}{y} \quad \frac{Y-wn}{k}$ (समीकरण के दायीं तरफ के भाग को Y से गुणा तथा भाग देने पर)

या $P = \frac{Y}{K} \quad (\frac{Y-WN}{Y})$

या $P = \frac{Y}{K}(\frac{S}{Y})$

Y आय तथा WN व्यय को व्यक्त करता है।

अतः इनका अन्तर बचत (S= I) है।

यहाँ $\frac{Y}{K}$ पूँजी की उत्पादकता अर्थात् O तथा $\frac{S}{Y}$ औसत क्या प्रवृत्ति अर्थात् O है।

$\frac{\Delta K}{k} = O$ (डोमर के वृद्धि माडल में $\frac{\Delta K}{K} = \frac{\Delta N}{N}$)

इस तरह यह डोमर का वृद्धि समीकरण है

तथा $G = \frac{S}{C}$

पुनः $\frac{\Delta K}{K} = G, L = S$

$O = \frac{1}{C}$ यह Harrod का वृद्धि समीकरण है।

समानताएँ

उपर्युक्त सम्बन्ध यह स्पष्ट करता है कि दोनों मॉडल प्रकृति में समान हैं तथा समान परिणाम देते हैं अर्थात् अर्थव्यवस्था की वृद्धि दर बचत-आय अनुपात तथा पूँजी की उत्पादकता पर निर्भर करती है। दोनों मॉडलों में स्थिर पूँजी गुणांक तथा तकनीकी तटस्थ की धारणा को अंगीकार किया गया है।

असमानतायें

1. हैराड-डोमर मॉडल में पूँजी संचय का निर्धारण बचत-आय अनुपात तथा पूँजी की उत्पादकता द्वारा होता है जबकि जॉन रॉबिन्सन के मॉडल पूँजी संचय को लाभ-मजदूरी सम्बन्ध तथा श्रम की उत्पादकता द्वारा निर्धारित किया गया है।
2. हैराड-डोमर मॉडल में पूँजी ही पूँजी संचय का प्रमुख कारक है, जबकि जॉन रॉबिन्सन के मॉडल में श्रम को पूँजी संचय का कारक माना गया है।
3. हैराड-डोमर मॉडल व्यापार चक्रो की समुचित व्याख्या करता है जबकि रॉबिन्सन का मॉडल व्यापार चक्रों के स्पष्टीकरण की उपेक्षा करता है।
4. जब लगभग पूर्ण रोजगार पर इच्छित वृद्धि दर सम्भाव्य वृद्धि दर के बराबर होती है तो अर्थव्यवस्था स्वर्ण युग में है। तकनीकी प्रगति के कारण प्रति व्यक्ति उत्पादन जब बढ़ रहा होता है, तो वास्तविक मजदूरी दर में वृद्धि होती है। परन्तु पूँजी पर लाभ की दर स्थिर रहती है। तथा लाभ की दर के अनुरूप उत्पादन की तकनीकों का चुनाव किया जाता है यही रॉबिन्सन का स्वर्ण युग है।

4.6 श्रीमती जॉन रॉबिन्सन के मॉडल की सीमायें

आपनें रॉबिन्सन मॉडल के सभी सकारात्मक तथ्यों का अध्ययन कर लिया है। अब हम रॉबिन्सन के विकास प्रारूप की सीमाओं का अध्ययन करेंगें-

श्रीमती रॉबिन्सन का मॉडल हैरॉड की वृद्धि मॉडल का विस्तार है। सम्भाव्य वृद्धि दर हैरड की प्राकृतिक वृद्धि दर है।

स्वर्ण युग में वास्तविक (G) तथा प्राकृतिक वृद्धि (Gn) दरें एक-दूसरे के बराबर होती हैं और अभीष्ट वृद्धि दर (Gw) उनके अनुरूप होती है। दोनों, तटस्थ तकनीकी परिस्थितियों तथा स्थिर बचत-अनुपात को स्वीकार करते हैं। पर जॉन रॉबिन्सन का पूँजी संचय का सिद्धान्त मजदूरी सम्बन्ध तथा श्रम-उत्पादकता पर निर्भर है। इसके विपरीत हैराड का सिद्धान्त बचत-आय अनुपात तथा पूँजी उत्पादकता पर निर्भर है। रॉबिन्सन का मॉडल पूँजी संचय में श्रम के महत्त्व पर बल देता है। जबकि हैरॉड का पूँजी के महत्त्व पर।

प्रो. कुरिहारा के अनुसार- केन्स के बाद वृद्धि अर्थशास्त्र में श्रीमती रॉबिन्सन का प्रमुख योगदान यह होता है कि उसने क्लासिकल मूल्य और वितरण प्रतीत सिद्धान्त तथा केन्ज के आधुनिक बचत-निवेश सिद्धान्त का एक सांमजस्यपूर्ण प्रणाली में एकीकरण कर दिया। परन्तु ***"यदि श्रम-उत्पादकता मजदूरी दर, लाभ दर और पूंजी-श्रम अनुपात व्यावहारिक नीति के लक्ष्य न माने जायें तो इसमें इतना सुधार नहीं हो सकता कि राजकोषीय मौद्रिक नीति प्राचलों का प्रवर्तन कर सके जितना कि पूर्णतया योजनाबद्ध अर्थव्यवस्था में उन्हें ऐसा समझा जाये।"***

मॉडल की कमियॉं

इस मॉडल की निम्न कमियाँ हैं-

1. **आर्थिक वृद्धि को निजी लाभ-प्राप्तकर्ताओं पर छोड़ना सही नहीं -** ***"जॉन रॉबिन्सन की पूंजी-वृद्धि की चर्चा का यह व्यापक प्रभाव पड़ता है कि आर्थिक वृद्धि जैसी महत्त्वपूर्ण समस्या खेल***

के पूँजीवादी नियमों पर छोडने का समस्त विचार अस्वीकार करना पड़ता है क्योंकि उसका स्वतन्त्र वृद्धि का मॉडल यह प्रदर्शित करता है कि बढ़ती हुई जनसंख्या की आवश्यकताओं तथा उन्नतिशील प्रौद्योगिकी के अनुरूप अर्थव्यवस्था की आर्थिक वृद्धि करने का परम कार्य निजी लाभ प्राप्तकर्ताओं पर छोड़ना कितना विपत्तिजनक तथा असुरक्षित है।"

2. **बन्द अर्थव्यवस्था -** जॉन रॉबिन्सन का मॉडल बन्द अर्थव्यवस्था की मान्यता पर आधारित है। परन्तु विकसित देशों की अर्थव्यवस्थायें बन्द नहीं बल्कि खुली होती हैं, जिनमें उनके विकास की दर को बढ़ाने का महत्त्वपूर्ण कार्य विदेशी व्यापार एवं विदेश पूँजी करते हैं।
3. **संस्थानिक साधनों की उपेक्षा** - यह मॉडल संस्थानिक साधनों को दिये हुये मानकर चलता है, परन्तु किसी भी मॉडल में आर्थिक वृद्धि के एक निर्धारक के रूप में संस्थानिक साधनों के कार्य की उपेक्षा नहीं की जा सकती ।अर्थव्यवस्था का विकास काफी हद तक सामाजिक, सांस्कृतिक तथा संस्थानिक परिवर्तनों पर निर्भर करता है।
4. **स्थिर कीमत स्तर -** यह मॉडल स्थिर कीमत स्तर की मान्यता पर आधारित है परन्तु यह मान्यता अवास्तविक है। जब एक अर्थव्यवस्था प्रगति के मार्ग पर अग्रसर रहती है। तो इसके लिए निवेश की मात्रा लगातार बढ़ाई जाती है, जिससे साधनों की मांग भी निरन्तर बढ़ती रहती है। परन्तु उसकी पूर्ति को मांग के अनुसार बढ़ाया नहीं जा सकता। इस कारण कीमतों में वृद्धि होती जाती है। अतः वृद्धि के साथ कीमतों में वृद्धि अनिवार्य है।
5. **उत्पादन के स्थिर गुणांक नहीं होते -** रॉबिन्सन यह मानती हैं कि उत्पादन की एक दी हुई मात्रा उत्पादित करने के लिए पूँजी और श्रम स्थिर अनुपातों में लगाये जाते हैं, यह एक अवास्तविक मान्यता है क्योंकि एक गत्यात्मक अर्थव्यवस्था में उत्पादन के स्थिर गुणांक नहीं होते हैं। बल्कि समय के साथ पूँजी और श्रम में स्थानापन्नता होती है। तथा स्थानापन्नता की कोटि रहती प्रौद्योगिकी परिवर्तनों की प्रकृति पर निर्भर करती है।

4.7 श्रीमती रॉबिन्सन के मॉडल का अर्थव्यवस्था में महत्त्व-

आपने रॉबिन्सन मॉडल के विभिन्न तथ्यों को भली प्रकार अध्ययन कर लिया है। इसके द्वारा आप रॉबिन्सन मॉडल को ठीक प्रकार समझ सकतें है।रॉबिन्सन का मॉडल अल्पविकसित अर्थव्यवस्था के लिए उपयोगी है-

1. **विकासशील अर्थव्यवस्था-** इस सिद्धान्त में विकासशील अर्थव्यवस्था में जनसंख्या का पूंजी-संचय की दर पर प्रभाव का अध्ययन किया गया है। योजनाबद्ध आर्थिक विकास की सहायता से कोई भी देश **'स्वर्ण युग'** को प्राप्त कर सकता है।
2. **सम्भाव्य वृद्धि अनुपात-** स्वर्ण युग वृद्धि अनुपात पर निर्भर करता है। श्रम-शक्ति की बृद्धि पर एवं प्रति व्यक्ति उत्पादन के आधार पर सम्भाव्य वृद्धि अनुपात का हिसाब ठीक ढंग से लगाकर योजना कार्य आसान किया जा सकता है।

3. अल्प-रोजगार की प्रवृत्ति- पूँजी दर की अपेक्षा जनसंख्या की वृद्धि अधिक होने पर अल्प-रोजगार की प्रवृत्ति का सामना करना पड़ता है।

रॉबिन्सन के मॉडल में कीमत स्तर को स्थिर माना गया है। इनके मॉडल में दो भाग हैं-1.क्लासिकल, 2.कीन्सीयन। आय पक्ष और व्यय पक्ष दोनों को जोड़ दिया जाये तो इनका मॉडल एक महत्त्वपूर्ण मॉडल बन जाता है।

रॉबिन्सन के मॉडल की एक महत्त्वपूर्ण विशेषता है कि यह जनसंख्या व मानव शक्ति की पूर्ति की आर्थिक विकास का एक महत्त्वपूर्ण निर्धारक मानते हैं। इन देशों में जनसंख्या के आधिक्य की कठिनाई दूर करने के लिए विकास की समस्या का विश्लेषण श्रम के दृष्टिकोण से किया गया है। अल्प-विकसित देशों के लिए आय की वृद्धि की उचित दर वह होगी जो जनसंख्या वृद्धि की दर और पूँजी निर्माण की दर में समानता स्थापित कर सके।

4.8 अभ्यास प्रश्न

रिक्त स्थान भरें-

1. रॉबिन्सन ने सन्..... में अपना मॉडल प्रस्तुत किया।
2. रॉबिन्सन मॉडल का उद्देश्य..... देशों की विकास की समस्याओं का समाधान करना है।
3. राष्ट्रीय आय.....का योग है।
4. वृद्वि अनुपात में स्थिरता बनी रहने से ही .....की स्थिति बनी रहती है।
5. तकनीकी प्रगति .....है।

बहुविकल्पीय प्रश्न

1. रॉबिन्सन ने अपने मॉडल में बात कही है-

   क. पूँजीवादी युग ख. समाजवादी युग

   ग. स्वर्ण युग घ. भौतिक युग

2. रॉबिन्सन की 1956 में प्रकाशित पुस्तक है

   क. Theory of economic development

   ख. The accumulation of capital

   ग. Genral theory of employment

   घ.Trade cycle

3. रॉबिन्सन के विकास प्रारूप में उत्पादन के साधन हैं.....

   क. दो ख. चार

   ग. तीन घ. एक

4. स्वर्ण युग से विचलन होता है-

   क. जब जनसंख्या की वृद्वि दर पूँजी की वृद्वि दर से अधिक होती है।

   ख. जब जनसंख्या की वृद्वि दर पूँजी की वृद्वि दर से कम होती है।

   ग. जब जनसंख्या की वृद्वि दर पूँजी की वृद्वि दर से बराबर होती है।

घ.उपर्युक्त दोनों।

सत्य असत्य बताइए

1. जनसंख्या की वृद्धि दर संसाधनों की वृद्धि दर के बराबर होती है तब अर्थव्यवस्था पूर्ण रोजगार सन्तुलन में होती है।
2. स्वर्ण युग का समीकरण है $\frac{\Delta I}{I} = -\frac{\Delta S}{S}$
3. पंगु स्वर्ण युग की विशेषता हैः- पूंजी संचय की दर पूर्ण रोजगार के लिए आवश्यक दर से अधिक होती है।
4. श्रमिक अपनी मजदूरी उपभोग पर व्यय करते हैं।

एक शब्द या वाक्य उत्तरीय प्रश्न

1. रॉबिन्सन का मॉडल किस प्रकार की अर्थव्यवस्था पर आधारित है?
2. आय के वितरण के लिए दो वर्ग कौन-कौन से हैं?
3. रॉबिन्सन ने किस वर्ग को बचत और निवेश का उत्तरदायी माना है?
4. अर्थव्यवस्था में **'स्वर्ण युग'** की स्थिति कब रहती है?
5. रॉबिन्सन का विकास मॉडल किस मॉडल का विस्तार है?

4.9 सारांश

इस इकाई के अध्ययन के बाद आप समझ चुके हैं कि -जॉन रॉबिन्सन का मॉडल एक विकासशील अर्थव्यवस्था में जनसंख्या वृद्धि की समस्या को स्पष्ट रूप से सम्मिलित करता है और पूँजी संचय की दर तथा उत्पादन वृद्धि पर जनसंख्या के प्रभावों का विश्लेषण करता है। उनका मॉडल दो आधारभूत तथ्यों पर आधारित है-

1. पूँजी-निर्माण आय के वितरण पर निर्भर होती है।
2. श्रम के प्रयोग की दर पूँजी की पूर्ति और श्रम की पूर्ति पर निर्भर होती है।

अर्थव्यवस्था में रॉबिन्सन द्वारा दी गयी सभी मान्यताओं को मानते हुये सन्तुलन की दशा में बचत विनियोग के बराबर होनी चाहिये।

अर्थात् S= I

आप जानते है कि रॉबिन्सन यह मानती हैं कि श्रमिक अपनी समस्त आय उपभोग पर व्यय कर देते हैं और मजदूरी में से शून्य बचत होती है। इसके दूसरी ओर साहसियों के समस्त लाभ का विनियोग कर दिया जाता है।

इन दशाओं में S = PK और I = Δk

Δk = वास्तविक पूँजी की वृद्धि

S = I

PK = Δ k

अर्थात् $P = \frac{\Delta K}{K}$

पूंजी संचय की दर $\frac{\Delta K}{K}$) लाभ की दर (P) के बराबर होती है और इसलिए यह कहा जा सकता है कि पूँजी संचय की दर उन्हीं बातों से निर्धारित होती है और लाभ की दर को निर्धारित करती है।

रॉबिन्सन ने अपने मॉडल में स्वर्ण युग की बात कही है।

'स्वर्ण युग' वह स्थिति है, जिसमें पूर्ण रोजगार की स्थिति अर्थव्यवस्था में विद्यमान होती है। इस स्थिति में,पूँजी की वृद्धि दर, जनसंख्या की वृद्धि दर के बराबर होती है। तकनीकी प्रगति तटस्थ होती है, और स्थिरता के साथ बढ़ती है, उत्पादन के प्रतिरूप में कोई परिवर्तन नहीं होता है।

प्रतियोगी यंन्त्र स्वतन्त्रतापूर्वक कार्य कर रहा होता है जनसंख्या वृद्धि एक ही दर से होती है और समस्त उपलब्ध श्रम को उत्पादक पूँजी प्रदान करने के लिए पूँजी संचय प्राप्त तेजी के साथ होता है, लाभ की दर स्थिर रहने की प्रवृत्ति होती है और प्रति व्यक्ति उत्पादन में वृद्धि होने के साथ-साथ मजदूरी बढ़ती है। ऐसी दशा में अर्थव्यवस्था में कोई आन्तरिक अन्तर्विरोध नहीं होता है-

तब वार्षिक उत्पादन और पूँजी का स्टॉक श्रम शक्ति की वृद्धि तथा प्रति व्यक्ति उत्पादन के एक निश्चित यौगिक अनुपात में बढ़ता है। इन सारी दशाओं की रॉबिन्सन ने 'स्वर्ण युग' कहा है।

$\frac{\Delta N}{\mathrm{N}} = \frac{\Delta \mathrm{k}}{\mathrm{k}}$ यदि $\frac{\Delta N}{\mathrm{N}} > \frac{\Delta \mathrm{k}}{\mathrm{k}}$

अर्थात् जब अर्थव्यवस्था में जनसंख्या वृद्धि की दर पूँजी संचय की दर से अधिक होती है तो अर्थव्यवस्था में बेरोजगारी उत्पन्न हो जाती है ।

अधिकांश अल्पविकसित देशों में ऐसी ही स्थिति पायी जाती है। इस स्थिति से अर्थव्यवस्था वापस लौटती अथवा नहीं, यह लाभ मजदूरी सम्बन्ध के व्यवहार पर निर्भर करता है। पर रॉबिन्सन यह मानती हैं कि अर्थव्यवस्था में श्रम की अधिकता जल्दी या देर से मौद्रिक मजदूरी की दर को गिरा देगी, जिसके कारण वास्तविक मजदूरी की दर गिर जायेगी। वास्तविक मजदूरी की दर नीची होने के कारण लाभ की दर अधिक हो जायेगी, अधिक मात्रा में पूँजी का संचय किया जायेगा और वह जनसंख्या वृद्धि दर के बराबर पहुंच जायेगा।

इस प्रकार फिर से 'स्वर्ण युग' संतुलन स्थापित हो जायेगा। यदि वास्तविक मजदूरी की दर गिरती है, तो यह संतुलन पुनः स्थापित नहीं हो सकेगा।

आप जानते हैं कि रॉबिन्सन ने स्वर्ण युग से विचलन की बात कही है ऐसी स्थिति में, इसके दूसरी ओर यदि पूँजी संचय की छः जनसंख्या वृद्धि की दर से अधिक होती है। अर्थात् यदि $\frac{\Delta N}{\mathrm{N}} > \frac{\Delta \mathrm{k}}{\mathrm{k}}$ तो ऐसी स्थिति में अर्थव्यवस्था में पूँजी संचय की अधिकता तथा श्रम की कमी पायी जायेगी । ऐसा विकसित देशों के सम्बन्ध में इस प्रकार की दशाओं में तकनीकी सुधार के द्वारा समस्त उत्पादन फलन को बदल कर स्थापित किया जासकता है। जिसके परिणामस्वरूप अर्थव्यवस्था ऊँचे पूंजी-श्रम अनुपात पर अपना सामंजस्य कर लेती है।

इस प्रकार कहा जा सकता है कि यदि अर्थव्यवस्था स्वर्ण युग से हट जाती है तो कुछ दशाओं में फिर संतुलन स्थापित करना सम्भव होता है किन्तु आत्मविकसित देशों की अपेक्षा विकसित देशों की 'स्वर्ण युग' संतुलन के मार्ग पर लौटने की सम्भावना अधिक होती है।

जॉन रॉबिन्सन 'स्वर्ण युग' को आर्थिक मोक्ष की अवस्था कहती है, जिसमें उपभोग अधिकतम सम्भव दर से बढ़ रहा होगा।

4.10 शब्दावली

- **पूँजी संचय-**रॉबिन्सन ने अपने विकास प्रारूप में संचय की दर को महत्त्वपूर्ण कारक माना है, जो केवल उद्यमी वर्ग ही करता है, और निवेश भी उद्यमी ही करता है। पूँजी संचयन की दर लाभ की दर तथा निवेश की दर को निर्धारित करती है, निवेश की दर लाभ की दर को प्रभावित करती है और लाभ की दर स्वयं पूँजी संचय की दर को निर्धारित करती है।
- **बन्द अर्थव्यवस्था-**रॉबिन्सन का मॉडल बन्द अर्थव्यवस्था पर आधारित है। बन्द अर्थव्यवस्था से तात्पर्य ऐसी अर्थव्यवस्था से है, जहाँ विदेशी व्यापार नहीं होता अर्थात् आयात-निर्यात पूर्णतः बाधित रहता है।
- **तकनीकी प्रगति-** रॉबिन्सन के मॉडल में तकनीकी प्रगति तटस्थ है। तकनीकी प्रगति से तात्पर्य, नवप्रवर्तन, विकास ज्ञान में वृद्धि आदि अनेकों परिवर्तन से है।
- **तटस्थ -**तटस्थ से तात्पर्य एक समानता से है। अर्थात् कोई भी परिवतन दिखाई न देना।
- **उद्यमी-**उद्यमी से तात्पर्य साहसी से है जो विनियोग करता है। रॉबिन्सन ने उद्यमी को महत्त्वपूर्ण माना है क्योंकि इनके मॉडल में बचत केवल साहसी करते हैं, और विनियोग केवल साहसी ही करते हैं ।
- **बचत-**बचत से तात्पर्य बचाने से है। आय का वह भाग उपभोग या विनियोग न किया जाये रॉबिन्सन के अनुसार बचत केवल उद्यमी वर्ग ही करता है, और निवेश भी वही करता है।
- **उपभोग-**व्यक्ति अपनी आय का उपयोग मुख्यतः दो भागों में करता है- बचत तथा उपभोग, रॉबिन्सन के अनुसार उद्यमी वर्ग बचत तथा विनियोग करते हैं, श्रमिक वर्ग केवल उपभोग करते हैं।
- **स्वर्ण युग-**जब जनसंख्या की वृद्धि दर पूँजी की वृद्धि दर के बराबर होती है तो रॉबिन्सन के अनुसार यह स्वर्ण युग की स्थिति होती है। $\frac{\Delta N}{\mathrm{N}} = \frac{\Delta \mathrm{k}}{\mathrm{k}}$ रॉबिन्सन ने इसे अर्थव्यवस्था की अनोखी स्थिति कहा है, क्योंकि इस युग में पूर्ण रोजगार की स्थिति होती है।
- **अल्पविकसित देश-**अल्प विकसित देशों से तात्पर्य कम विकसित देशों से है। जहाँ विकास कम हुआ है। अल्प विकसित देशों में सामान्यतः बेरोजगारी की स्थिति पायी जाती है, और जनसंख्या भी अधिक होती है।इन देशों में पूर्ण रोजगार तब ही सम्भव है, जब जनसंख्या की वृद्धि दर पूँजी की वृद्धि दर के बराबर हो।

4.11 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

रिक्त स्थान भरो-

1. 1956 2. अल्पविकसित 3. सकल आय तथा सकल मजदूरी।
4. स्वर्ण युग 5. तटस्थ

बहुविकल्पीय प्रश्न-

1. ग. स्वर्ण युग। 2. ख. The Accumulation of Capital

3. क. दो 4. घ. उपरोक्त दोनों

सत्य असत्य बताइए-

1. सत्य 2. असत्य 3. असत्य 4. सत्य

एक शब्द या वाक्य उत्तरीय प्रश्न

1. बंद अर्थव्यवस्था 2.उद्यमी तथा श्रमिक 3.उद्यमी

4.जब $\frac{\Delta N}{N} = \frac{\Delta K}{K}$ 5.हैरॉड के वृद्धि मॉडल।

4.12 सन्दर्भ सहित ग्रन्थ

- टी. आर. जैन, वी. के. ओरी-2006-07 *डेवलेपमेन्ट इकोनोमिक्स* वी. के. पब्लिकेशन।
- ***Development Studies***, Vols 1 &2, Ed. Robin Gnosh, K.R. Gupta and Premjit Malti.
- Kenneth K. Kurihava, ***the Keynesion theory of Economic Development*** (London-1961) P. 79-80.

4.13 उपयोगी सहायक ग्रन्थ

- अग्रवाल ए.एन., (2006) *इण्डियन इकोनॉमी (प्रोब्लम ऑफ डेवलपमेंट एण्ड प्लानिंग)* आशीष पब्लिशिंग हाऊस
- सिन्हा वी.सी.(2010) *विकास और पर्यावरणीय अर्थशास्त्र*, सहित्य भवन पब्लिकेशन आगरा।
- एस. पी. सिहं (2001) *आर्थिक विकास एवं नियोजन*, एस चन्द एण्ड कम्पनी लि., नई दिल्ली।
- एम.एल.झिंगन (2002) *आर्थिक विकास एवं नियोजन*,वृंदा पब्लिकेशन्स प्रा.लि. नई दिल्ली।
- धींगरा आई. सी. (1987), *इकोनॉमिक डेवलपमेंट एन प्लानिंग इन इण्डिया*, एस. चन्द्र नई दिल्ली।

4.14 निबन्धात्मक प्रश्न

1. श्रीमती जॉन रॉबिन्सन के आर्थिक वृद्धि के सिद्धान्त की आलोचनात्मक व्याख्या कीजिए। यह कहाँ तक अल्पविकसित अर्थव्यवस्थाओं पर लागू होता है?
2. 'स्वर्ण युग' से आप क्या समझते हैं? जॉन रॉबिन्सन की इस धारणा की व्याख्या कीजिए।
3. रॉबिन्सन के विकास प्रारूप में तकनीकी प्रगति की क्या भूमिका है?
4. रॉबिन्सन के मॉडल का गणितीय रूप क्या है? रॉबिन्सन के मॉडल का H-D मॉडल से सम्बन्ध बताइये ?

इकाई 5- पूँजी निर्माण एवं आर्थिक विकास

(Capital Formation and Economic Development)

5.1 प्रस्तावना

5.2 उद्देश्य

5.3 विदेशी पूँजी का भारत जैसे अल्पविकसित देशों के विकास में योगदान

5.4 विदेशी पूँजी का आर्थिक विकास पर प्रभाव

5.5 विदेशी पूँजी से होने वाले सम्भावित खतरें

5.6 विदेशी पूँजी का सीमाएँ

5.7 विदेशी पूँजी से होने वाली हानियाँ

5.8 विदेशी पूँजी से सम्बन्धित सावधानियाँ

5.9 अभ्यास प्रश्न

5.10 सांराश

5.11 शब्दावली

5.12 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

5.13 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

5.14 सहायक/उपयोग पाठ्य सामग्री

5.15 निबन्धात्मक प्रश्न

5.1 प्रस्तावना

विश्व के प्रायः सभी विकसित एवं विकासशील देश किसी न किसी सीमा तक विदेशी पूँजी एवं विदेशी सहायता पर निर्भर रहे हैं। विदेशी पूँजी ने आर्थिक विकास और औद्योगिकीकरण में महत्वपूर्ण भाग अदा किया है। इसके अभाव में कोई भी देश उन्नत नहीं कर सकता।

प्रत्येक देश के पास घरेलु साधन इतने पर्याप्त नहीं होते कि आर्थिक विकास में पूर्ण हो सकें।बड़ी-बड़ी योजनायें घरेलु बचतों के अलावा विदेशी पूँजी की सहायता भी लेते है। प्रायः प्रत्येक विकासशील राज्य ने अपने विकास की प्रारम्भिक अवस्था में अपने सीमित बचत के पूरक के रूप में विदेशी पूँजी की सहायता ली है।

17 वीं व 18 वीं शताब्दी में विश्व के अनेक देशों को ऋण प्रदान किया। वहीं अमरीका ने 19 वीं शताब्दी में भारी मात्रा में ऋण लिया और 20वीं शताब्दी में सबसे बड़ा ऋण देना वाला राष्ट्र बना।

5.2 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन करने के पश्चात् हमे यह जान सकेगे कि-

- ✓ विदेशी पूँजी का भारत जैसे अल्पविकसित देशों के विकास में क्या योगदान रहा?
- ✓ विदेशी पूँजी का आर्थिक विकास पर क्या प्रभाव पड़ता है?
- ✓ विदेशी पूँजी के आगमन से क्या खतरे हो सकते है?
- ✓ विदेशी विनियोग के मार्ग में क्या कठिनाइयां है और इससे क्या हानि हो सकती है।

5.3 विदेशी पूँजी का भारत जैसे अल्पविकसित देशों के विकास में योगदान (Contribution of foreign capital in the development of less developed countries like India)

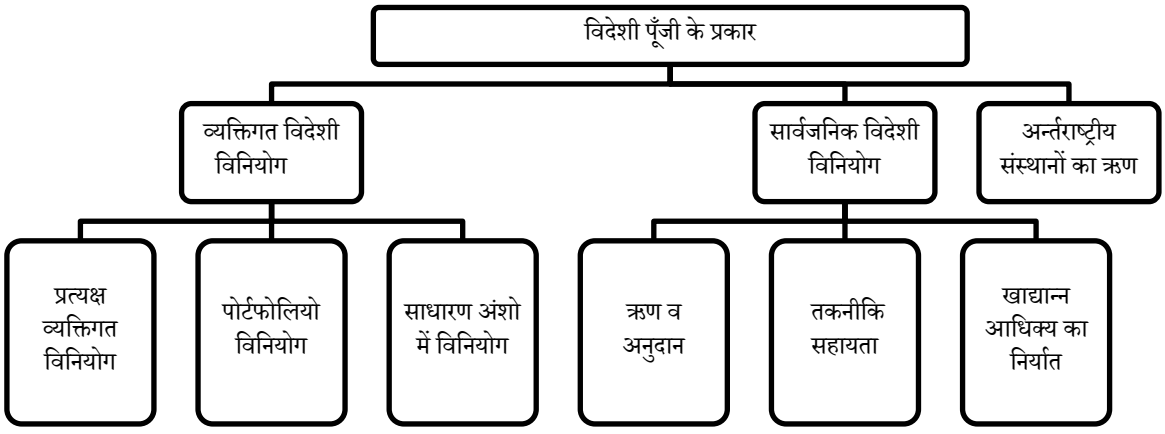

1. विदेशी राष्ट्रों से वास्तविक साधनों की प्राप्ति - विकास के कार्यों में जहां घरेलू एवं बाहर साधन अपर्याप्त होते है उन्हे विदेशी सहायता से पूर्ण किया जा सकता है। कर, ऋण या मुद्रा प्रसार से बचत तो प्राप्त होती है परन्तु इससे वास्तवकि साधनों के उपयोग से वंचित रहना पड़ता है। अतः राष्ट्रीय अतिरिक्त विनिमय द्वारा वित्तीय साधन जुटाकर वस्तुओं को प्राप्त करके उपभोग कर सकती है।

2. **बाह्य मितव्ययियताओं का सृजन** - आमतौर पर तो बाह्य मितव्ययिताओं होने पर ही विदेशी पूँजी का आगमन होता है, परन्तु कभी कभी स्वयं विदेशी पूँजी भी देश की बाह्य मितव्ययिताओं के सृजन करने में सहायता प्रदान करती है। तथा विदेशी विनियोगों को आकर्षित करती है।
3. **विनियोग कमी को पूर्ण करेन हेतु** - जिन देशों में आय का सृजन निम्न होता है, वहां घरेलु बचत भी कम होती है। ऐसे में करो एवं आन्तरिक ऋणों से जो राशि प्राप्त होती है वह विनियोग की आवश्यकता को पूर्ण करने के लिये अपर्याप्त होती है। ऐसी स्थिति में बाह्यय साधनों से सहायता लेना श्रेयस्कर होता है।
4. **लाभ अर्जित करना** - विदेशी विनियोजक अपने साथ कुशल विशेषज्ञ लाते है जिससे अविकसित एवं अर्द्धविकसित देशों को लाभ प्राप्त होते है। इन कुशल विशेषज्ञों से प्रशिक्षण सुविधाएं प्रदान होती है। कालास्तर में यही विकसित देश अपने देश में विकास की योजनाएं बनाकर आर्थिक विकास करते है।
5. **आर्थिक विकास की गति को बढ़ना** - अर्द्धविकसित देश जो बिना बाह्य व्यापारी के पर्याप्त मात्रा में विदेशी विनिमय अर्जित नही कर सकता, विदेशी पूँजी के माध्यम से विदेशी विनिमय उपलब्ध करावा कर नवीन योजनाओं के प्रारम्भ को प्रोत्साहित करती है।
6. **स्वस्थ परम्परा का निमार्ण**- विदेशी पूँजी के विनियोग से देश में स्वस्थ परम्परा का निमार्ण होता है। उससे आगमन से उद्योग प्रोत्साहित होते है और लाभ प्राप्त करते है जिससे विदेशी विनियोग की मात्रा में वृद्धि हो जाती है।
7. **सरकारी आय में वृद्धि** - विदेशी विनियोग से प्राप्त होने वाले लाभ पर सरकार कर एवं अन्य कर प्राप्त करती है जिससे सरकार की आय में वृद्धि होती है। उससे सरकारी न्याय में वृद्धि होती है जिसको देश के आर्थिक विकास में लगाया जा सकता है।
8. **घरेलु अर्थव्यवस्था पर भार में कमी** - जब विदेशी पूँजी का प्रवेश नहीं हुआ होता है तो राष्ट्र की आय कम होने से विकास की प्रारम्भिक अवस्था में विनियोग के साधन को जुटाने के लिये आन्तरिक उपयोग करना पड़ता है जिसका जनता पर बुरा प्रभाव पड़ता है। परन्तु विदेशी पूँजी की सहायता से उपभोग को उच्चतम स्तर पर रखा जा सकता है। उपभोग ऊँचा होने से उत्पादन में वृद्धि होती है।
9. **विदेशी उपयोगी वस्तुएं उपलब्ध होना** - विदेशी विनियोग से जनता को विदेशी उपयोग वस्तुएं सस्ते मूल्य पर सुविधापूवर्क उपलब्ध हो जाती है।
10. **जीवन स्तर में वृद्धि करने हेत** - विकसित एवं अर्द्धविकसित देशों के मनुष्यों के जीवन स्तर में काफी अंतर होता है। जो विश्वशान्ति के लिये एक खतरा है। अतः अर्द्धसिकसित देशों का तीव्र विकास होना आवश्यक है। बचत की दर कम न कर विदेशी पूंजी की सहायता से जीवन स्तर में वृद्धि की ला सकती है।
11. **भुगतान संतुलन की कमी को दूर करने हेतु** - अर्द्धविकसित देशों में तीव्र विकास से भुगतान संतुलन की कमी को उत्पन्न करता है। आर्थिक विकास व प्रत्यक्ष रूप से प्रभाव डालने के अतिरिक्त अग्रांकित ढंगों से प्रत्यक्ष प्रभाव भी डालता है। विकास कार्यक्रमों को पूर्ण करेन के लिये भारी मात्रा में सामग्री की आयात किया जाता है। बहुत से कच्चे पदार्थ, जो पहले निर्यात किये जाते थे, अब उनका उपयोग देश में होने लगा है जिससे निर्यात में कमी व भुगतान संतुजन विपक्ष हो जाते है।

12. **स्फीति रहित विकास -** विदेशी पूँजी सहायता से देश का मुद्रा स्फीति रहित विकास किया जा सकता है। विदेशी पूँजी के अभाव में हीनार्थ प्रबन्धन करके विनियोग के साधन को जुटाया जाता है परन्तु इससे मुद्रा प्रसार की स्थिति बन जाती है। विदेशी विनियोग से विनियोग की कमी को पूर्ण किया जा सकता है। तथा स्फीतिक स्थितियों से बचा जा सकता है।
13. **प्राविधिक ज्ञान, प्रबन्धकीय योग्यता आदि की कमी को पूर्ण करना -** विदेशी पूँजी आमत्रंण करने से प्राविधिक ज्ञान आदि की उपलब्धता भी हो जाती है। तकनीकि ज्ञान प्राप्त होने से औद्योगिक उन्नति संभव हो जाती है।
14. **जोखिम उठाना -** विदेशी पूंजीपति जोखिम उठाकर नए उद्योगों की स्थापना करते है। असफल होने पर यही पूंजीपति हानि सहन करने का साहस रखता है। सफल होने पर घरेलु पूंजीपति भी उसी व्यवसाय को आरम्भ करके लाभ उठाते है।
15. **अन्य लाभ -** अन्य लाभ जैसे रोजगार प्राप्त होना, उपभोग व बचत में वृद्धि होना, उत्पादन एवं लाभ को बढ़ाना आदि भी विदेशी पूँजी के आने से मिलता है।

5.4 विदेशी पूँजी का आर्थिक विकास पर प्रभाव

आर्थिक विकास के गति प्रदान करने हेतु विदेशी पूँजी का प्रवाह अनिवार्य है। यह औद्योगिकीकरण, आर्थिक उपरि पूँजी व अधिक रोजगार के सुअवसर उत्पन्न करने में सहायता देती है। आर्थिक विकास पर विदेशी पूँजी के प्रभाव निम्न हैः-

1. **प्राविधिक ज्ञान का विस्तार -** विदेशी सहायता से प्राविधिक ज्ञान में विस्तार होता है तथा देश के आर्थिक विकास में सहायता प्राप्त होती है। इसका विस्तार इन माध्यम से किया जा सकता है-
   क. अर्द्धविकसित राष्ट्रों में रहने वाले कर्मचारियों को प्रशिक्षण देकर
   ख. अर्द्धविकसित राष्ट्रों में नवीन शोध एवं प्रशिक्षण संस्थाओं की स्थापना करके
   ग. विदेशों के कुशल तकनीकि व्यक्तियों की सेवाएं प्राप्त करके।
2. **घरेलु पूँजी को प्रत्साहन -** विदेशी पूँजी से प्रोत्साहन पाकर देश में पूँजी निमार्ण को अभिप्रेरणा मिलती है। जिसकी सहायता से नवीन उद्योगों की स्थापना की जा सकती है एवं आर्थिक विकास की गति को बढ़ाया जा सकता है।
3. **प्रारम्भिक व्यापारिक जोखिम -** अर्द्धविकसित राष्ट्रों के विकास की प्रारम्भिक अवस्था में प्रायः उद्योगों की स्थापना में बहुत अधिक जोखिम रहता है, जिसको विदेशी पूंजीपतियों की पूँजी के विनियोग द्वारा सहन किया जाता है। व्यवसाय के सफल हो जाने पर बाद में देशी उद्योगपति भी पूँजी का विनियोग करके लाभ अर्जित करते है।
4. **रोजगार जीवन स्तर में वृद्धि -** विदेशी पूँजी के प्रयोग से ना केवल उत्पादन में वृद्धि होती है बल्कि रोजगार के नवीन अवसर भी खुल जाते है जिससे प्रति व्यक्ति आय बढ़ती है और परिणामस्वरूप जीवन स्तर में भी वृद्धि होती है।
5. **विदेशी विनियोक्ताओं को लाभ -** विदेशी विनियोजकों को भी विदेशी पूँजी से लाभ प्राप्त होता है। अर्द्धविकसित राष्ट्रों में पूँजी विनियोग के अधिक अवसर होते है। इसके लाभदायक उद्योग (profitable

industry) में पूँजी का विनियोग सम्भव हो जाता है। साथ ही इन अर्द्धविकसित राष्ट्रों द्वारा आयात करके देश के उद्योगों को सदृढ़ बनाया जा सकता है।

6. **प्राकृतिक साधनों का पूर्ण विदोहन -** अर्द्धविकसित राष्ट्रों में प्राकृतिक साधनों का अधिकतम दोहन नही हो पाता है। विदेशी पूँजी की सहायता से यह कार्य संभव हो जाता है तथा देश का आर्थिक विकास तीव्र गति से किया जा सकता है।
7. **पूंजीगत वस्तुओं से आयात की सुविधा -** अर्द्धविकसित राष्ट्रों में आर्थिक विकास के लिए भारी मात्रा में पूंजीगत वस्तुओं की आवश्यकता होती है जो विदेशों से आयात की जाती है और जिसके लिए भारी मात्रा में विदेशी मुद्रा की आवश्यकता होती है तो विदेशी पूँजी की सहायता से ही प्राप्त की जा सकती है।
8. **स्थायी सम्पत्तियों का निमार्ण** - विदेशी पूँजी की सहायता से देश में बिजलीघर, सिचांई के साधनों, बांध आदि के रूप में स्थायी सम्पत्तियों का निमार्ण हो जाता है।
9. **मुद्रा स्फीति पर रोक -** मशीनों एवं तकनीकी सहायता के रूप में प्राप्त होने वाली विदेशी पूँजी से देश में मुद्रा स्फीति के प्रभावों को रोका जा सकता है। इसका जनता एवं देश के आर्थिक विकास पर अच्छा प्रभाव पड़ता है।
10. **आन्तरिक स्थायित्व** – देश में आन्तरिक स्थायित्व लाने हेतु विदेशी पूँजी सहायक सिद्ध होती है। विकसित अर्थव्यवस्था में बचत से अधिक विनियोग होने से उत्पादन की मात्रा बढ़ती है तथा आय में वृद्धि होती है। अर्द्धविकसित राष्ट्रों में बचत कम होने से विनियोग कम होता है एवं आन्तरिक अर्थव्यवस्था में स्थायित्व का अभाव बना रहता है। विदेशी पूँजी आन्तरिक स्थायित्व लाकर देश के आर्थिक विकास को तीव्र करती है।

5.5 विदेशी पूँजी से होने वाले सम्भावित खतरें

विदेशी पूँजी आयात करने से आयात करने वाले देश को निम्नलिखित खतरे उत्पन्न होने की सम्भावना होती है।

1. **घरेलु पूँजी को खतरा -** अर्द्धविकसित राष्ट्रों को जो पूँजी एवं श्रम, विदेशों से उपलब्ध होती है उनका व्यावसायिक और प्राविधिक स्तर अपेक्षाकृत काफी ऊँचा रहता है। इस कारण घरेलु पूँजी को खतरा हो जाता है क्योंकि वह विदेशी पूँजी से प्रतिर्स्पद्धा में नही टिक पाती।
2. **देश की सुरक्षा को खतरा -** अर्द्धविकसित राष्ट्रों के आधारभूत उद्योगों और परियोजनाओं में निवेश विदेशी पूँजी पर निर्भर रहना देश के लिये खतरा उत्पन्न कर सकता है क्योंकि संकट की स्थिति में जब कभी देश को अधिक पूँजी की आवश्यकता होगी, ऐसे में विदेशी पूंजीपति अपनी पूँजी विनिवेश करते है। सरकार के कठोर नियन्त्रण न होने पर समस्त विदेशी पूँजी विनिवेश होने का भय होता है।
3. **आथिक मूल्य वसूल करना** - विकसित राष्ट्र अक्सर अर्द्धविकसित देशों की मज़बूरी का लाभ उठाते है। अर्द्धविकसित राष्ट्र अपनी परियोजनाओं और विनियोग के लिये विदेशी पूँजी और उनके प्राविधिक ज्ञान पर निर्भर रहते है। ऐसे में विकसित देश इन मशीनों और प्राविधिक सेवाओं का अधिक मूल्य वसूल करने का प्रयास करते है। जिससे देश में अन्य वस्तुओं के मूल्य भी अनावश्यक रूप में बढ़ जाते है।

4. **पक्षपात एवं भेदभावपूर्ण नीति -** विदेशी पूँजी के सहयोग से स्थगित औद्योगिक संस्थाओं में उच्च पद पर प्रायः विदेशी व्यक्ति को ही नियुक्त किया जाता है। जो सदैव पक्षपात एवं भेदभावपूर्ण नीति का अनुसरण करते है जिससे देश के कर्मचारियों को प्रशिक्षण एवं अनुभव से वंचित रहना पड़ता है।
5. **राजनैतिक प्रभुत्व -** विदेशी पूँजी के आयात के कारण अर्द्धविकसित राष्ट्र आर्थिक एवं राजनैतिक दृष्टि से पराधीन हो गए है। अतः जिसके कारण इन देशों के राजनैतिक प्रभुत्व पर भी खतरा उत्पन्न हो जाता है।
6. **पूँजी निमार्ण को खतरा -** जब विदेशी पूँजी आती है तो बहुत सा धन ब्याज व लाभ के भुगतान के रूप में विदेशों को चला जाता है। जिससे देश में पूँजी निमार्ण का अभाव बना रहता है। पूँजी निमार्ण न होने पर विकास कार्यक्रम को आगे नही बढ़ाया जा सकेगा।
7. **देश का असन्तुलित विकास-** विदेशी पूँजी का मूलतः प्रयोग अर्द्धविकसित देशो में उद्योगों में निवेश के रूप में किया जाता है जिसमें लाभ की मात्रा अधिक होती है। फलस्वरूप, देश के आवश्यक व आधारभूत उद्योगों की उपेक्षा हो जाती है। इससे देश का औद्यौगिक विकास असन्तुलित हो जाता है।
8. **आर्थिक शक्ति का विदेशियों के हाथों में केन्द्रीयकरण -** विदेशी पूँजी के आगमन से देश के उद्योग धन्धों पर विदेशियों का ही प्रभुत्व हो जाता है। उद्योगों का संचालन केवल लाभ की आशा से ही किया जाता है जिससे देश के हितो की अवलेहना हो जाती है। इससे आर्थिक शक्ति का केन्द्रीकरण विदेशियों के हाथों में आ जाता है और वे अपनी इच्छानुसार मनमाने ढंग से उद्योगों में उत्पादन करके शोषण करने का प्रयास करते है। इससे देश का विकास देश के हित में न होकर विदेशियों के हित में हो जाता है।

5.6 विदेशी पूँजी का सीमाएं

जिन देशों में विदेशी पूँजी को उपयोग करने का सामर्थ्य तो था परन्तु वह पूंजी का अभाव था। वहां विदेशी पूँजी सहायक सिद्ध रही है। किसी भी अर्द्धविकसित राष्ट्र में विदेशी पूँजी को रखने का अभाव अनेक कारणों से हो सकता है।

1. यदि राष्ट्र में पूर्व सुनियोजित एवं पहले से सोची हुयी सुनिश्चित योजना का अभाव हो
2. विदेशी पूँजी को उपभोग करने वाले उचित, कुशल प्रशासकों, प्रबन्धक एवं प्राविधिक ज्ञान का सर्वथा अभाव रहा हो।
3. यदि घरेलु श्रमिकों के लिये प्रशिक्षण देना कठिन हो या उन्हे उद्योग के अनुरूप बनाना कठिन हो।
4. देश की सामाजिक एवं राजनैतिक संस्थाएं उत्पादन की नवीन प्रणाली को अपनाने में असमर्थ हो।
5. देश में परिवहन व संचार के साधनों के अलावा विद्युत एवं अन्य ज्ञानोपयोगी सेवाओं की कमी के कारण विदेशी पूँजी का उत्पादक व भारी उद्योग में निवेश करना सम्भव न हो।

5.7 विदेश पूँजी से होने वाली हानियां

विदेशी पूँजी से जहां अनेकों लाभ प्राप्त होते है, वहीं उससे होने वाली हानियां भी कम नहीं है।

1. **सम्पूर्ण अर्थव्यवस्था की विदेशी विनियोजकों पर निर्भरता-** देशवासी अपने निवार्ह के लिये विदेशियों की पूँजी पर निर्भर हो जाती है। पूँजी उधार देने वाले राष्ट्र के व्यापार चक्र का प्रभाव ऋण लेने वाले राष्ट्र पर भी पड़ता है।

2. **घरेलु निवेशकों को बाहर करने का भय -** विदेशी विनियोक्ताओं को अनियन्त्रित स्वतंत्रता प्रदान करने पर डर बना रहता है कि विदेशी विनियोक्ता, घरेलु विनियोक्ताओं को प्रतिस्पर्धा से बाहर ना कर दें। घरेलु विनियोक्ता, विदेशी पूंजीपति से कम कुशल होते है जिसके कारण विदेशी पूंजीपति, घरेलु विनियोक्ता के समकक्ष नहीं हो सकते है।
3. **विदेशी पूँजी राष्ट्र का शोषण करना -** प्रायः यह देखा गया है कि विदेशी पूँजी का विनियोग, अर्द्धविकसित देशों के ऐसे उद्योगों में प्रयोग किया जाता है। जिसमें कच्चे माल का उपयोग अधिक होता है और यह तैयार माल विदेशों को निर्यात किया जा सके। विदेशी पूँजी द्वारा अर्द्धविकसित राष्ट्रों का शोषण ही किया गया। विदेशी निवेश होने के उपरान्त भी अविकसित देश पिछडे के पिछडे ही रह गए।
4. **खानों में विदेशी निवेश का संकेंद्रण -** विदेशी पूँजी प्रायः खानों आदि जैसे व्यवसायों में ही केन्द्रित रही क्योंकि इससे उन्हें कच्चा माल प्राप्त होता था। कच्चे माल के निर्यात के द्वारा विदेशी मुद्रा अर्जित की जाती है और इनसे प्राप्त लाभ को आयात की जाने वाली वस्तुओं के उद्योग में उपयोग किया जाता है तो आयात पर निर्भरता कम हो जायेगी और विदेशी विनिमय की बचत होगी। विदेशी पूँजी को निर्यात उद्योगों में केन्द्रित करने से एक तरफा विकास संभव हो सकेगा।
5. **निर्यात उद्योगों में विदेशी पूंजी का निवेश -** विदेशी शासक का यह स्वार्थ होता है कि वे निर्यात उद्योगों में ही विदेशी पूँजी लगाए क्योंकि परिवहन साधनों का विकास बंदरगाह और मुख्य व्यापारिक केन्द्रों पर उनका ध्यान आकृष्ट रहता है ना कि देश के आन्तरिक भाग में परिवहन के साधनों पर।
6. **विदेशी पूँजी का बुरा अनुभव -** भूतकाल में विदेशी पूँजी का खराब अनुभव रहा है जिससे देश की अर्थव्यवस्था पर बुरा प्रभाव पड़ा है। यदि राष्ट्रीय सरकार, विदेशी पूँजी को विनियोजित एवं नियन्त्रित ढंग से आमन्त्रित करे तो बुरे प्रभावों से बचा जा सकता है, परन्तु इसके साथ ही इस बात पर भी ध्यान देना है कि देश में ऐसे नियम न बना दिया जाये जिससे विदेशी पूँजी के आगमन पर एकदम रोक लग जाए और देश की अर्थव्यवस्था पर बुरा प्रभाव पड़े।
7. **देश की राजनीति में हस्तक्षेप -** यदि विदेशी पूँजी पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध है तो इससे देश की राजनीति पर प्रभाव अवश्य पड़ेगा। राजनीतिक पार्टियों को चन्दा देकर भी गुट में मिलाने का प्रयास किया जाता है।
8. **घरेलू निवेशकों में गिरावट -** विदेशी पूँजी को देश के सर्वाधिक लाभदायक कार्यों में विनियोग किया जाता है। जिससे घरेलू विनियोजकों को पूँजी के विनियोग करने का अवसर प्राप्त नहीं हो पाता। इससे देश में उद्योगों के विकास को पूर्ण अवसर प्राप्त नहीं हो पाते है और देश पिछड़ जाता है।
9. **भेदभावपूर्ण व्यवहार -** विदेशी पूंजीपति देश के श्रमिकों एवं योग्य व्यक्तियों को अपने राष्ट्र के लाभार्थ उपयोग करते है। इससे देश के उद्योगों का पूर्ण विकास नहीं हो पाता और वे पिछड़ जाते है।
10. **घरेलू मांग सम्बन्धी माल का उत्पादन न करना -** विदेशी पूँजी का उपयोग प्रायः घरेलू मांग सम्बन्धी माल की पूर्ति हेतु नहीं किया जाता है, जबकि इन उद्योगों को लघु पैमाने व छोटी मात्रा की पूँजी से ही प्रारम्भ किया जा सकता है। विदेशी पूँजीपति इन उद्योगों में पूँजी लगाने की नहीं सोचता। यह राष्ट्र के आर्थिक विकास के लिए हानिकारक हो सकती है। इसका मुख्य कारण स्थानीय बाजार का अभाव था।

11.लाभ की ऊँची दर - विदेशी पूँजी जिन उद्योगों में विनियोजित की जाती है उनकी लाभ की दर काफी ऊँची होती है। जबकि अन्य उद्योगों में लाभ की दर इतनी अधिक नहीं होती। लाभ की ऊँची दर रखने से वस्तुओं के उत्पादन की लागत बढ़ जाती है और इसके परिणामस्वरूप वस्तुओं के मूल्य बढ़ जाते है और देशवासियों को हानि उठानी पड़ती है।

इस प्रकार ***"विदेशी व्यापारिक उपक्रम देश के विकास में किस सीमा तक सहायता करता है, यह इस बात पर निर्भर नहीं होता कि यह कार्य नियति के लिये है या घरेलु उपयोग के लिये। यह इस बात पर अधिक निर्भर करता है कि यह श्रमिक व अन्य स्थानीय साधनों की कितनी मांग बढ़ाता है, अपने लाभों को कितना पुनर्विनियोग करता तथा अन्य घटकों का इस पर प्रभाव पड़ता है।"***

5.8 विदेशी पूँजी से सम्बन्धित सावधानियाँ

विदेशी पूँजी जितना देश के आर्थिक विकास में सहायक सिद्ध होती है उतनी ही उससे होने वाली हानियां अनेक तरीको से खतरा उत्पन्न कर सकते है। अतः विदेशी पूँजी को आमन्त्रित करने से पहले कुछ सावधानियां बरत लेनी चाहिए।

(1) आन्तरिक बचत में योगदान एवं प्रोत्साहन मिल सके।

(2) विदेशी पूँजी का उपयोग अपने देश की विधि व कानून द्वारा ही होना चाहिए।

(3) विदेशी पूँजी का उपयोग करते समय देश का आर्थिक विकास ध्यान में होना चाहिए।

(4) विदेशी पूँजी का उपयोग देश की आवश्यकताओं के अनुरूप ही होना चाहिए ताकि जनता की आवश्यकता को शीघ्रता से पूर्ण किया जा सके।

(5) देश को वर्तमान में लाभ हो सके और भविष्य में दीर्घकाल तक उस पर निर्भरता न बनी रहे यह भी ध्यान देना चाहिए।

(6) विदेशी पूँजी का आगमन, उपभोक्ता सामग्री एवं प्राविधिक सहयोग के रूप में प्राप्त करने का प्रयास किया जाना चाहिए।

(7) उन देशों को अधिकाधिक निर्यात किया जाना चाहिये जिनसे भारी मात्रा में विदेशी पूँजी ली गयी हो जिससे कि भुगतान संतुलन को संतुलित रखा जा सके।

(8) विदेशी पूँजी लेने वाले राष्ट्र को ऋण व ब्याज दोनो को वापस करने सम्बन्धी उचित प्रबन्ध करने का प्रयास करना चाहिये जिससे अदायगी सरलता से की जा सके।

5.9 अभ्यास प्रश्न

लघुउत्तरीय प्रश्न

1. विदेशी पूँजी किसे कहते है?
2. विदेशी पूँजी क्यों आवश्यक है?
3. विदेशी पूँजी राष्ट्र का किस प्रकार शोषण कर सकती है?

5.10 सांराश

भारत जैसे अल्पविकसित देश में पूँजी की कमी रही है। विकास की गति तीव्र करने के लिये पूँजी की आवश्यकता में वृद्धि हुई है और चूंकि आय की वृद्धि के साथ बचत में तदनुरूप वृद्धि नहीं होती, इसलिये विदेशी पूँजी इस कमी की पूर्ति कर सकती है। इस बात से इंकार नहीं किया जा सकता कि विदेशी पूँजी ने आर्थिक विकास और औद्योगिकीकरण में महत्वपूर्ण भाग अदा किया है। लेकिन विदेशी पूँजी की उपलब्धता से आर्थिक विकास संभव नहीं हो सकता। इसके लिये देश की बचतें होना भी आवश्यक है।

आर्थिक विकास के लिये अत्यावश्यक परियोजनाओं (Project) के लिये वित्त प्रबन्ध करने के उद्देश्य से घरेलू बचतें जुटानी कठिन हो जाती है। विकास की प्रारम्भिक अवस्था में स्वयं पूँजी बाजार ही अल्पविकसित होता है। इस अवधि में, जबकि पूँजी बाजार में सुधार हो रहा हो, अस्थाई उपाय के रूप में विदेशी पूँजी अत्यावश्यक होती है। विदेश पूँजी के साथ कई दुर्लभ उत्पादक तत्व जैसे तकनीकि जानकारी, व्यापारिक अनुभव और ज्ञान भी प्राप्त होते है, जो आर्थिक विकास में महत्वपूर्ण योगदान प्रदान करते है।

5.11 शब्दावली

- **सृजन -** Creation
- **प्रबन्धकीय योग्यता -** Managerial Ability
- **विनियोजक -** Inventor
- **आन्तरिक स्थायित्व -** Internal Stability
- **शोषण -** Exploitation
- **हस्तक्षेप-** Interference

5.12 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

5.13 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

- डॉ. जे.पी. मिश्रा- *संवृद्धि एवं विकास का अर्थशास्त्र* साहित्य भवन पब्लिकेशन्स, आगरा 2012
- दत्त एवं सुन्दरम- *भारतीय अर्थव्यवस्था*, एस. चंद पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली, 2012
- एल.एन. कोली- *भारतीय अर्थव्यवस्था* लक्ष्मी नारायन अग्रवाल, आगरा 2007
- कुमार सर्वेश- *भारतीय अर्थव्यवस्था*, सार्थक प्रकाशन,दिल्ली, 2011
- डा. जे. सी. पन्त एवं जे. पी. मिश्रा - *अर्थशास्त्र*, साहित्य भवन पब्लिकेशन, आगरा
- डा. टी.टी. सेठी - *समष्टि अर्थशास्त्र*

5.14 सहायक/उपयोग पाठ्य सामग्री

- Arvind Panagariya: The Emerging Giant
- Bimal Jalan : India's Economic Policy : Preparing for the Twenty-First Century *Penguin Books India* , 2000
- Waquar Ahmed, Amitabh Kundu, Richard Peet: India's New Economic Policy: *Taylor &Francis* US, 2010
- Prem Sagar Gupta: Foreign capital in India, People's Pub. House, 1952
- R. K. Uppal: Economic Reforms in India: A Sectoral Analysis
- Hayami, Yujiro, Godo, Yoshihisu, (2004), Development Economics, OxfordUniversity Press India
- Singh, S.P. (2010) Economics of Development & Planing theory & practice, S &Chand Publishing House
- Dhingra, I C., (2009), Development Economics, Sultan Chand & Sons
- Mishra, S.K., and Puri, V.K., (2007), Economics of Development & Planing theory & practice, Himalaya

5.15 निबन्धात्मक प्रश्न

1. एक अर्द्धविकसित देश के आर्थिक विकास में विदेशी पूँजी की भूमिका की समीक्षा कीजिये।
2. आर्थिक विकास में विदेशी पूँजी की भूमिका की व्याख्या की कीजिये इसके प्रयोग में क्या-क्या सावधानियां बरतनी चाहिए।

इकाई 6- मानव संसाधन एवं आर्थिक विकास
(Human Resources and Economic Development)

6.1 प्रस्तावना

6.2 उद्देश्य

6.3 मानव पूँजी निर्माण की अवधारणा

6.4 शिक्षा, शोध एवं ज्ञान की आर्थिक विकास में भूमिका

6.5 मानव पूँजी निर्माण अथवा बौद्धिक पूँजी निर्माण का महत्व

6.5.1 शोध एवं विकास

6.5.2 बौद्धिक पूँजी निर्माण

6.5.3 बौद्धिक पूँजी निर्माण अथवा कौशल निर्माण के स्त्रोत

6.6 मानव पूँजी निर्माण के उपाय

6.7 मानव पूँजी में विनियोग की सीमाएँ

6.8 भारत में मानव संसाधन विकास अथवा बौद्धिक पूँजी निर्माण

6.9 आर्थिक विकास में मानवीय पूँजी की भूमिका

6.10 राष्ट्रीय पोषण नीति

6.11 भारत में मानव विकास के बुनियादी संकेतक

6.12 अभ्यास प्रश्न

6.13 सांराश

6.14 शब्दावली

6.15 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

6.16 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

6.17 सहायक/उपयोग पाठ्य सामग्री

6.18 निबन्धात्मक प्रश्न

6.1 प्रस्तावना

पिछली इकाई में हमने पूँजी संसाधन एवं आर्थिक विकास के मध्य सम्बंधों को दर्शाया। आर्थिक विकास न मात्र पूँजी निर्माण द्वारा प्रभावित होता है वरन् मानव संसाधन भी आर्थिक विकास को महत्वपूर्ण ढंग से प्रभावित करते है।

आर्थिक विकास एक यान्त्रिक क्रिया मात्र ही नहीं वरन् अंतिम रूप से यह एक मानवीय उपक्रम है। मानव संसाधन विकास, मानव पूँजी निर्माण अथवा कौशल निर्माण एक ऐसी प्रक्रिया है जिसके अन्तर्गत मानव शक्ति के विकास हेतु प्रचुर मात्रा में मुद्रा निवेश किया जाता है ताकि देश की मानव शक्ति तकनीकी ज्ञान योग्यता एवं कुशलता की दृष्टि से विशिष्टता प्राप्त कर सके।

यदि किसी देश की जनसंख्या उसके आर्थिक विकास की आवश्यकताओं के अनुरूप है और उसके निवासी विवेकशील परिश्रमी, शिक्षित व कार्य दक्ष है तो निःसन्देह अन्य बातों के समान रहने पर उस देश का आर्थिक विकास अधिक रहेगा। इस प्रकार मानव पूँजी निर्माण, मानव में विनियोग और उसके सृजनात्मक तथा उत्पादक साधन के रूप में विकास से सम्बद्ध है।

6.2 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन से हम यह ज्ञात कर सकेंगे कि-

- ✓ मानव संसाधन की क्या अवधारणा है?
- ✓ बौद्धिक पूँजी निर्माण की आवश्यकता क्यों है?
- ✓ शिक्षा, शोध एवं ज्ञान की आर्थिक विकास में क्या भूमिका है?
- ✓ मानव पूँजी निर्माण का क्या महत्व है?
- ✓ मानव पूँजी निर्माण के क्या स्त्रोत है?
- ✓ मानवीय विनियोग के क्या क्षेत्र है?
- ✓ मानव पूँजी निर्माण के क्या उपाय है?
- ✓ मानव पूँजी में विनियोग की सीमाएं
- ✓ भारत में मानव संसाधन विकास

6.3 मानव पूँजी निर्माण की अवधारणा

मानव पूँजी निर्माण से तात्पर्य ऐसे व्यक्तियों को प्राप्त करना तथा उनकी संख्या में वृद्धि करना है जो कुशल, शिक्षित तथा अनुभवी हों, जिनकी देश के आर्थिक एवं राजनीतिक विकास के लिये नितान्त आवश्यकता होती है। इस प्रकार मानव पूँजी निर्माण, मानव में विनियोग और उसके सृजनात्मक तथा उत्पादक साधन के रूप में विकास से सम्बद्ध है। सरल शब्दों में यदि कहा जाय तो ऐसा कोई भी विनियेाग जो मानव शक्ति की शिक्षा, स्वास्थ्य, प्रशिक्षण, कार्यकुशलता तथा जीवन स्तर में वृद्धि करता है उसे मानव संसाधन के विकास अथवा बौद्धिक पूँजी निर्माण में किया गया सक्रिय विनियोग समझा जाता है। मानव संसाधन जन समुदाय की कुशलता, गुणों एवं प्रवृत्तियों से परिभाषित होता है।

पर्याप्त व श्रेष्ठतम मानव पूँजी उपलब्ध होने से देश की भौतिक पूँजी भी अधिक उत्पादक बन जाती है। वहीं विपरीत परिस्थिति में जब किसी देश में मानव पूँजी का अभाव है तब भौतिक पूँजी का भी लाभपूर्ण उपयोग नहीं हो पाता, मशीने रूक जाती है, उपकरणों की घिसावट समय से पहले होने लगती है और परिणामस्वरूप उपज की किस्म व उत्पादकता का स्तर गिर जाता है।

बैबलन के अनुसार, प्रौद्योगिकीय ज्ञान तथा कुशलता समाज की **'अभौतिक उपकरण तथा अमूर्त सम्पत्ति'** है जिसके बिना भौतिक पूँजी उत्पादकपूर्वक प्रयोग में नहीं लायी जा सकती। अल्पविकसित देशों में धीमी वृद्धि के लिये उत्तरदायी मानव पूँजी में निवेश की कमी है। आर्थिक पिछड़ापन दूर करने और प्रगति, क्षमताएँ व प्रोत्साहन उत्पन्न करने के लिये यह आवश्यक है कि लोगों के ज्ञान व कुशलता में वृद्धि की जाय। वास्तव में मानव साधन के गुण में सुधार किये बिना अल्पविकसित देशों में कोई प्रगति सम्भव नहीं।

संकुचित अर्थ में बौद्धिक पूँजी निर्माण का अर्थ है, मानव की शिक्षा तथा प्रशिक्षण पर व्यय करना जबकि विस्तृत अर्थ में, खाद्य सुरक्षा, स्वास्थ्य, शिक्षा तथा समस्त सामाजिक सेवाओं पर किये जाने वाले व्यय से लगाया जाता है।

6.4 शिक्षा, शोध एवं ज्ञान की आर्थिक विकास में भूमिका

किसी देश का आर्थिक विकास उसकी कार्यकुशलता, शिक्षित एवं प्रशिक्षित श्रम शक्ति पर निर्भर करता है। विवेकशील, परिश्रमी, शिक्षित व कार्यदक्ष निवासी होने पर किसी भी देश का आर्थिक विकास सकारात्मक होगा। कुशल मानव पूँजी के अभाव में भौतिक पूँजी का समुचित उपयोग न हो सकेगा जिससे लाभ पूर्ण रूप से नहीं मिल सकेगा। ऐसा इस कारण है कि मशीनें रूक जाती है उपकरण समय से पूर्व घिसने लगते है और उपज की किस्म व उत्पादकता का स्तर गिर जाता है। मानव साधन के गुणों में सुधार करके, उनके ज्ञान व कुशलता में वृद्धि करके आर्थिक पिछड़ेपन को दर किया जा सकता है, प्रगति, क्षमताएं व प्रोत्साहन बनाये रखने के लिये शिक्षा, शोध एवं ज्ञान में वृद्धि परम आवश्यक है।

अतितदास गुप्त के अनुसार, ***"शिक्षा को आबण्टित किये गये साधन उत्पादकीय क्षमता को बढ़ाने में सहायक होते है, अतः शिक्षा तथा अन्य आधार संरचना निवेश सिद्धान्त के आवश्यक अंग है।"***

आर्थिक विकास के लिये शिक्षा एक महत्वपूर्ण अस्त्र है। **प्रो. मिर्डल** के शब्दों में ***"बहुत बड़ी जनसंख्या को निरक्षर छोड़कर राष्ट्रीय विकास कार्यक्रम शुरू करने की बात मुझे निरर्थक मालूम पड़ती है।"***

कुशल श्रमिक एवं अकुशल श्रमिक में यह अंतर है कि एक अकुशल श्रमिक द्वारा अधिक देर तक काम करने से उनकी प्रति व्यक्ति आय कम होगी। निरक्षर तथा अप्रशिक्षित व्यक्तियों से जटिल मशीनों की देखरेख नहीं करानी चाहिये।

जैफ रनेज ने यह लक्ष्य किया है कि आर्थिक प्रगति के लिये प्रयासरत देश जब विकसित देशों से आधुनिक तकनीक व नवीनतम मशीनरी का आयात करते है और विशालकाय प्लाण्टों को खड़ा करते है, तो भी उत्पादन प्रायः सन्तोषजनक नहीं होते। इसके पीछे स्पष्ट कारण है कि प्रबन्धक तथा श्रमिक अपर्याप्त रूप से प्रशिक्षित होते है और साथ ही अनुभवहीन थी।

प्रो. सिंगर के अनुसार जो विनियोग शिक्षा एवं ज्ञान पर किया जाता है वह विनियोग केवल उत्पादक ही नहीं वरन् बढ़ता हुआ प्रतिफल भी देता है। विकसित देशों द्वारा शिक्षा, अनुसन्धान पर अधिक महत्व दिया जाने के पीछे यही कारण है। नवप्रर्वतनों की भूमिका का अंदाजा यहीं से लगा लिया जाता है।

इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि प्रगतिशील देशों द्वारा योग्य एवं प्रशिक्षित श्रमिकों तथा तकनीकशियनों पर बल देने से आर्थिक विकास सम्भव हो सका है। अमेरिकी अर्थशास्त्रियों जैसे शुल्ज, हार्बिन्सन, डैनिसन, कैण्ड्रिक व कुजनेट्स आदि के अध्ययनों से यह ज्ञात होता है कि अमेरिकी अर्थव्यवस्था की तीव्र वृद्धि के लिये मुख्य रूप से शिक्षा पर किया गया विनियोग ही उत्तरदायी है। शिक्षा पर खर्च किया गया एक डालर अपेक्षाकृत कई गुना वृद्धि करता है।

इस तरह विकास की प्रक्रिया में शिक्षा का महत्व एक गैर विवाहित सत्य है। आज विश्व के देशों में मानव पूँजी में निवेश हेतु उच्च प्राथमिकता दी जाती है। मानव पूँजी में निवेश से तात्पर्य संकुचित अर्थों में शिक्षा एवं प्रशिक्षण पर व्यय करना है, जबकि व्यापक अर्थों में, स्वास्थ्य, शिक्षा तथा सभी सामाजिक सेवाओं पर व्यय करने से लगाया जाता है।

शिक्षा सम्बन्धी विनियोग मुख्यतः निम्न तीन क्षेत्रों में किये जा सकते हैः-

(1) कृषि विस्तार सेवाओं की व्यवस्था करने

(2) औद्योगिक कौशल को उन्नत करने तथा

(3) प्रशासकीय एवं प्रबन्धकीय क्षमता में वृद्धि करने हेतु

निष्कर्ष रूप में, यह कह सकते है कि मानव पूँजी में विनियोग के औचित्य व महत्व को आज निर्विवाद रूप में स्वीकार किया जा चुका है, परन्तु अल्पविकसित देशों में मानवीय विनियोग की अपनी कुछ सीमाएं हैं, जिनके कारण इन देशों में वांछित दर से कौशल निर्माण नहीं हो पाता।

6.5 मानव पूँजी निर्माण अथवा बौद्धिक पूँजी निर्माण का महत्व

किसी देश की जनसंख्या का जितना अधिक हिस्सा शिक्षित, कुशल एवं प्रशिक्षित होकर रोजगार में लगा हुआ है, वह देश उतना ही तेजी से विकास करेगा। जैसा कि **प्रो. गेलब्रेथ** का विचार है कि अमेरिकी अर्थव्यवस्था के तीव्र विकास में अनेक साधनों के अलावा शिक्षा पर किये जाने वाले व्यय का सर्वाधिक योगदार रहा है। उन्हीं के शब्दों में ***"अब हमें अपनी औद्योगिक वृद्धि का एक बड़ा भाग अधिक पूँजी के विनियोग से नहीं मिलता है बल्कि वह मनुष्यों में निवेश और परिष्कृत मनुष्यों द्वारा किये गये सुधारों के कारण प्राप्त होता है।"*** इस तरह आर्थिक विकास की दृष्टि से भौतिक पूँजी की अपेक्षा मानव पूँजी को कहीं अधिक महत्वपूर्ण समझा जाता है क्योंकि मानवीय साधनों की कुशलता एवं दक्षता पर ही आर्थिक विकास का ढांचा खड़ा किया जा सकता है।

व्यापक अर्थों में पूँजी निर्माण से आशय श्रमिकों की कार्यकुशलता में वृद्धि करना है। कुजनेट्स ने इसकी पुष्टि करते हुये व्यक्त किया कि मुख्य पूँजीगत स्टॉक लोगों का प्रशिक्षण, चरित्र एवं कार्यकुशलता है। **एडम स्मिथ** ने भी इस विषय में कहा, ***"पूँजी के स्टॉक में सब निवासियों की अर्जित तथा उपयोगी योग्यताओं को भी***

सम्मिलित किया जाना चाहिये।" अर्थशास्त्री **मार्शल** ने भी व्यक्त किया, ***"सबसे मूल्यवान पूँजी वह है जो मानव मात्र में विनियोजित की जाय।"***

यह कहना उचित है कि किसी देश के सर्वागीण विकास के लिये वहाँ के मनुष्यों का निपुण, ज्ञानी और बुद्धिमान होना आवश्यक होता है। अविकसित मानव संसाधन ही अल्पविकसित राष्ट्र के विकसित होने में बाधक है। इनके मानव संसाधन न कौशल में निपुण, न चातुर्य में जिस कारण आधुनिक भौतिक पूँजी का समुचित उपयोग उत्पादन में प्रयुक्त नहीं हो पाता। मानव संसाधन के विकास पर ध्यान न देकर भौतिक साधनों पर ही ध्यान देना श्रेयस्कर नहीं होगा। अतः मनुष्य में निवेश करना उतना ही महत्वपूर्ण होता है जितना कि भौतिक पूँजी में।

श्रेष्ठतम मानव पूँजी की उपलब्धता उस देश की भौतिक पूँजी को भी उत्पादक बना देती है। अल्पविकसित देशों को विकसित बनने के लिये भौतिक संसाधनों के साथ-साथ मानव संसाधन का विकास भी करना होगा। आज के युग में मानव पूँजी में विनियोग अथवा मानव संसाधन का विकास आर्थिक विकास की एक प्रमुख शर्त एवं पूर्व आवश्यकता बन चुकी है।

6.5.1 शोध एवं विकास

प्रो. शुम्पीटर के अनुसार प्राविधिक प्रगति से आशय, ***"अर्थव्यवस्था में उत्पादन साधनों के ऐसे संयोग का प्रवेश है जो पहले सम्भव नहीं था अथवा प्रयुक्त नहीं किया था। वह एक ऐसी वस्तु है जिसे आन्तरिक साधन के रूप में प्रवेश दिया जाता है और जो अर्थव्यवस्था को प्रभावित कर आर्थिक संक्रान्ति की प्रक्रिया के लिये उत्तरदायी होती है।"***

शोध, प्राविधिक परिवर्तन आर्थिक प्रगति में एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाते है। **प्रो. किण्डलबर्गर** के शब्दों में ***"प्राविधिक प्रगति का अर्थ किसी व्यवसाय में प्रयुक्त ज्ञान और वास्तविक उत्पादन प्रक्रिया में परिवर्तन है।"*** तकनीकी प्रगति में योगदान देने वाले विभिन्न तत्वों के सापेक्ष महत्व और स्वयं प्रगति की रफ्तार भी विभिन्न देशों में उनकी विकास अवस्थाओं तथा सामाजिक, आर्थिक शक्ति के अनुसार भिन्न-भिन्न होती है।

तकनीकी प्रगति के चार मुख्य स्त्रोत निम्नलिखित है-

(1) देश की जनता की अन्वेषणकारी तथा नवप्रवर्तनकारी क्रियाएँ

(2) विदेशी व्यापार, विदेशी सहायता अथवा सम्पर्क आदि विभिन्न माध्यमों से विदेशी से सुधारी हुयी तकनीकों का आयात

(3) **'करने द्वारा सीखना'** अर्थात् देश के श्रमिकों, प्रबन्धकों, मालिकों का उत्पादन कार्यों में व्यावहारिक अनुभव और सीख।

(4) मानवीय पूँजी में निवेश अर्थात् देश की जनता तथा श्रमिकों की शिक्षा, स्वास्थ्य तथा निपुणता में सुधार।

शुम्पीटर के अनुसार प्रगति रचनात्मक विनाश की प्रक्रिया का परिणम है। विदेशी तकनीको को आत्मसात करके देश का विकास किया जा सकता है। इसे **'सांस्कृतिक विकरण प्रक्रिया'** कहा जाता है। आज के विकसित समाज की प्रमुख विशेषता तकनीकी प्रगति है इस बहुमुखी प्रक्रिया के अन्तर्गत नयी तकनीकें, नयी

मशीनें, परिवर्तित कार्यकुशलता तथा उत्पादकता आदि सम्मिलित है। **प्रो. कुजनेट्स** ने तकनीकी विकास के विभिन्न सोपानों को निर्धारण इस प्रक्रार किया हैः-

(1) वैज्ञानिक खोज अथवा तकनीक में वृद्धि

(2) आविष्कार

(3) आविष्कार का आर्थिक उत्पादन में प्रयोग

(4) नव प्रवर्तन का अधिकाधिक प्रसार एवं उसमें सुधार।

आज के आधुनिक अर्थव्यवस्था में विकसित होने की प्रक्रिया में देश शामिल है और निरन्तर सुधार की प्रक्रिया में लगे है। शोध एवं अन्वेषण आधुनिक वैज्ञानिक तकनीक का आधार है और आधुनिक तकनीक आर्थिक प्रगति का आधार है।

6.5.2 बौद्धिक पूँजी निर्माण

एक विवेकशील मानव पूँजी देश की अर्थव्यवस्था के आर्थिक विकास की प्रक्रिया को गतिशील बनाने तथा उपलब्ध संसाधनों का युक्तिपरक विदोहन करने में सक्षम होती है। अधिक शिक्षित, एवं तकनीक ज्ञान से युक्त जनसंख्या से देश का विकास तेजी से होता है। बौद्धिक सम्पदा के रूप में इंजीनियर, तकनीकी प्रशिक्षक, प्रबन्धकीय और शासकीय सेविवर्ग, वैज्ञानिक, चिकित्सक व कृषि विशेषज्ञ होने पर भौतिक पूँजी अधिक उत्पादक बन जाती है। इन्हीं कारणों से वर्तमान में समस्त देश अपने उपलब्ध संसाधनों की सहायता से बौद्धिक पूँजी निर्माण की प्रक्रिया में संलग्न है। मुद्रा का नागरिकों की क्षमता एवं कुशलता में वृद्धि करने हेतु निवेश किया जा सकता है। इससे बौद्धिक पूँजी निर्माण होता है।

वैबलन के अनुसार, प्रौद्योगिकीय ज्ञान तथा कुशलता समाज के अभौतिक उपकरण तथा अमूर्त सम्पत्ति है जिसके बिना भौतिक पूँजी उत्पादकतापूर्वक प्रयोग में नहीं लाई जा सकती है। इसी कारण अल्पविकसित देश पर्याप्त मात्रा में मानव पूँजी में निवेश न करने के कारण धीमी गति से प्रगति करते है।

6.5.3 बौद्धिक पूँजी निर्माण अथवा कौशल निर्माण के स्त्रोत

मानव विकास के दो मुख्य स्त्रोत है-

1. आन्तरिक स्त्रोत - किसी भी देश की आत्मनिर्भरता वहाँ के घरेलु तकनीक एवं संसाधनों के विकसित होने पर निर्भर करता है। आयातित तकनीक दीर्घकाल के लिये हितकारी नहीं होता। देश यथासंभव आन्तरिक संसाधनों पर निर्भर रहकर कौशल निर्माण कर सकते है।

(1) विशिष्ट तकनीकी संस्थाओं की स्थापना करके तथा

(2) औद्योगिक प्रशिक्षण संस्थानों की स्थापना कर उनमें प्रशिक्षण की समुचित व्यवस्था करना।

2. बाह्य स्त्रोत - बाह्य स्त्रोत से तात्पर्य है विदेशी तकनीकी विशेषज्ञों की सहायता लेना अथवा घरेलु श्रम शक्ति को शिक्षित एवं प्रशिक्षित करने के लिये विदेशी तकनीकी संस्थाओं एवं विशेषज्ञों के ज्ञान का उपयोग करना। विदेशी कौशल के आयात के मुख्य रूप से चार रूप हो सकते है-

(1) विदेशी तकनीकीशियनों को स्थायी अथवा अस्थायी रूप से देश में नियुक्त करना

(2) घरेलु श्रमिकों को प्रशिक्षण देने के लिये कुछ समय के लिये विदेशी विशेषज्ञों को आमन्त्रित करना

(3) देश के श्रमिकों को तकनीकी शिक्षा एवं प्रशिक्षण हेतु विदेशों में भेजना

(4) तकनीकी विशेषता प्राप्त विदेशी श्रमिकों को देश में प्रवास हेतु प्रोत्साहित करना आदि।

6.6 मानव पूँजी निर्माण के उपाय

मानव पूँजी के विकास के लिये निम्न उपायों का प्रयोग किया जाता हैः-

1. **अनिवार्य शिक्षा -** शिक्षा वह अस्त्र है जिसका कुशलतापूर्वक प्रयोग करके व्यक्ति अपनी कार्यक्षमता में वृद्धि कर सकता है। एक शिक्षित व्यक्ति देश के आर्थिक विकास में एक सकारात्मक भूमिका निभा सकता है। अतः माध्यमिक स्तर तक शिक्षा को अनिवार्य बनाने का प्रयत्न करना चाहिये। **प्रो. लुईस** का इस मुद्दे पर अपना यह मत है कि माध्यमिक शिक्षा प्राप्त व्यक्ति ही आर्थिक एवं सामाजिक विकास के ध्वजवात्मक तथा अनायुक्त अधिकारी है।
2. **तकनीकी शिक्षा पर अधिक बल -** विभिन्न व्यावसाया में शिक्षित एवं प्रशिक्षित व्यक्तियों के रूप् में मानव पूँजी की आवश्यकता इसलिये अधिक होती है क्योंकि वे जटिल विधियों एसं उपकरणें का प्रयोग करते है। क्रांतिक कुशलता वाले व्यक्तियों की अधिक आवश्यकता होती है। जैसे-डॉक्टर, इंजीनियर, व्यापार प्रबन्धक, वैज्ञानिक, तकनीशियन आदि।
3. **शिक्षा प्रणाली में परिवर्तन -** निरक्षरता दूर करने के साथ-साथ उच्च शिक्षा मात्र योग्य व्यक्तियों के लिये ही होनी चाहिये। व्यावसायिक एवं तकनीकी शिक्षा के विकास पर बल देना चाहिये। विश्वविद्यालयों एवं महाविद्यालयों में सामन्य स्नातक स्तर तक शिक्षा करने मात्र से मानव पूँजी का निर्माण नहीं होता, केवल शिक्षित बेरोजगारी ही बढ़ती है। इससे सामाजिक असन्तोष बढ़ता है, उत्पादकता घटती है।
4. **प्रौढ शिक्षा -** प्रौढ़ शिक्षा कार्यक्रमों को कृषकों, कृषि अनुसन्धान केन्द्रों तथा प्रयोगशालाओ जोड़ा जाना चाहिये। इससे कृषकों का दृष्टिाकोण बदलेगा। उनकी बौद्धिक क्षमता विकसित होगी रूढ़ियों एवं प्रथाओं के सम्बंध में अधिक विवेकशील होंगे।
5. **समुचित प्रेरणा -** हार्बिन्सन के अनुसार, तीव्र आर्थिक विकास तभी सम्भव है जब मानव इस बात के लिये समुचित प्रेरणा दी जाय कि वे उत्पादक क्रियाओं में रत रहे। आधुनिकीकरण के लिये यह परम आवश्यक है। ऐसी संस्थाओं का पथप्रदर्शन किया जाना चाहिये जिससे वे प्रशिक्षित किया जा सके।

6.7 मानव पूँजी में विनियोग की सीमाएँ

मानव पूँजी आर्थिक विकास के लिये अत्यन्त महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। इस औचित्य को स्वीकृत करने में कोई शंका नहीं है। अल्पविकसित देशों के संदर्भ में मानव पूँजी का समुचित विकास नहीं हो सका। इसका कारण है कि इन देशों में गरीबी और पूँजी के अभाव में इस क्षेत्र में पर्याप्त विनियोग नहीं हो सका। यही कारण है कि इन देशों में कौशल निर्माण की गति धीमी रहती है।

निम्नलिखित कारणों से मानव पूँजी अथवा मानव संसाधन में निवेश जोर नहीं पकड़ रहा है।

(1) इन देशों में मानव संसाधनों के विकास हेतु पूँजी का अभाव रहता है।

(2) कौशल निर्माण के लिये विदेशी तकनीकी ज्ञान का आयात करना पड़ता है। परन्तु इन देशों में विदेशी विनिमय कोषों का अभाव रहता है जिससे आयात करने में कठिनाई होती है।

(3) अधिकांश अल्पविकसित अर्थव्यवस्थाएं कृषि प्रधान होती है और कृषि के अन्तर्गत नव प्रवर्तन और कौशल निर्माण की सम्भावना कम रहती है।

(4) इन देशों के सामाजिक, राजनैतिक एवं सांस्कृतिक संगठनों तथा रूढ़िवादी विचारों के कारण भी प्राविधिक ज्ञान को अपनाने व लागू करने में कठिनाई बनी रहती है।

(5) इन देशों में लोग विकास, ज्ञान तथा कौशल के प्रति उदासीनता प्रदर्शित करते है। इससे मानव पूँजी में विनियोग को प्रोत्साहन नहीं मिलता।

(6) अल्पविकसित देशों में वित्तीय साधनों का अभाव पाया जाता है। इस कारण जो भी साधन उपलब्ध होते है वे या तो मानवीय साधनों के विकास पर व्यय किया जाय या फिर भौतिक साधनों के विकास में। एक को विकसित करने में दूसरे का समुचित विकास नहीं हो पाता। इससे त्वरित आर्थिक विकास में बाधा उत्पन्न होती है।

(7) कौशल निर्माण एक दीर्घकालिक प्रक्रिया है। मानव संसाधनों के विकास की यह एक प्रक्रिया है जो निरन्तर किये जाने वाले प्रयासों के फलस्वरूप दीर्घकाल में ही फलीभूम होती है। कौशल निर्माण के प्रमुख तीन तत्व है- शिक्षा, प्रशिक्षण एवं अनुभव को साकार रूप प्रदान करने के लिये एक लम्बे समय तक विनियोग करना पड़ता है। अतः न मात्र विनियोग अपितु सतर्कता और असीमित धैर्य की परम आवश्यकता भी पड़ती है।

6.8 भारत में मानव संसाधन विकास अथवा बौद्धिक पूँजी निर्माण

मानव संसाधन की आर्थिक विकास के लक्ष्य को प्राप्त करने की आवश्यकता को भारत देश में स्वीकार किया गया। तीसरी पंचवर्षीय योजना की रूपरेखा में स्पष्ट किया गया कि, ***"आर्थिक क्षेत्र में तेजी से विकास करने, प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में उन्नति करने तथा स्वतन्त्रता, सामाजिक न्याय और समान अवसर के सिद्धान्त पर आधारित समाजवादी समाज की स्थापना के लिये यदि कोई एक तत्व सबसे महत्वपूर्ण है तो वह है शिक्षा, स्वास्थ्य एवं समाज कल्याण। भारत के भावी निर्माण में राष्ट्रीय जीवन के प्रत्येक अंग में ये क्षेत्र सुनियोजित विकास के केन्द्र बिन्दु रहेंगे।"***

ऊपर दिये गये तत्व शिक्षा, जन स्वास्थ्य और चिकित्सा पर भारत में मात्र 5 से 10 प्रतिशत के बीच व्यय किया जाता है। यह प्रतिशत मानव संसाधन के विकास के लिये पर्याप्त नहीं है। विकासवादी अर्थशास्त्रियों का यह मानना है कि कम से कम 30 से 40 प्रतिशत मानव संसाधन विकास पर अवश्य व्यय करना चाहिये।

विश्व बैंक रिपोर्ट 1999-2000 में यह स्पष्ट लिखा है कि, ***"अन्य सभी विकास प्रयासों अथवा उद्यमों की ही भाँति शिक्षा और स्वास्थ्य भी अंतर सम्बन्धित है और यह समग्र विकास प्रक्रिया को प्रभावित कर सकते है। मानव विकास का पथ अंततः आर्थिक विकास की ओर जाता है। विकासशील देशों को इस सच्चाई को जानना बहुत आवश्यक है।"***

भारत की पंचवर्षीय योजनाओं में शिक्षा के विस्तार पर पर्याप्त ध्यान दिया गया है। पढ़ने वाले बच्चों की निरन्तर वृद्धि होती जा रही है। नये प्राथमिक विद्यालय, महाविद्यालय आदि खुलते जा रहे है। इसके साथ ही स्वास्थ्य का स्तर जो इस बात का भी द्योतक है कि व्यक्ति कितने समय तक निर्माण कार्य में संलग्न रहकर देश के

उत्थान में योगदान कर सकता है। उसकी कार्यक्षमता में वृद्धि होती है और यह सत्य है कि सपा और कमजोर जनता देश की आर्थिक प्रगति में योगदान नहीं देंगे वरन् बाधक ही सिद्ध होते हैं।

अतः स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात स्वास्थ्य सुविधाओं के विस्तार पर अधिकाधिक जोर दिया जा रहा है। अस्पतालों, प्राथमिक स्वास्थ्य केन्द्रों में वृद्धि हो रही है। महामारी और अन्य बीमारियों पर नियन्त्रण पा लिया गया है। यद्यपि इतना सब कुछ प्रयास किया जा रहा है फिर भी इस क्षेत्र अब भी और विकास सम्बन्धित सुविधाओं की आवश्यकता है। मृत्यु दर जो वर्तमान में 8 प्रति हजार है को कम करने की आवश्यकता है वहीं जीवन प्रत्याशा को भी बढ़ाने का प्रयास किया जा रहा है।

6.9 आर्थिक विकास में मानवीय पूँजी की भूमिका

किसी भी राष्ट्र की जनसंख्या, उसके मानव संसाधन उस राष्ट्र की सम्पत्ति है। देश की मानव पूँजी उस राष्ट्र की उन्नति में सहायक है। मानवीय संसाधनों को संगठित करके उनकी कार्यक्षमता में वृद्धि लाई जा सकती है। यदि जन शक्ति का समुचित दोहन नहीं किया गया तो यह रोजगार के अभाव में देश के लिये एक भारत बन जायेगा।

मानव संसाधन राष्ट्र के लिये एक सम्पत्ति है।

(1) प्राकृतिक संसाधनो का विदोहन - मानव पूँजी द्वारा ही प्राकृतिक संसाधनों का समुचित विदोहन सम्भव हो पाता है। जनसंख्या वास्तव में राष्ट्र की सम्पत्ति है।

(2) राष्ट्र की रक्षा- रक्षात्मक कार्य भी देश की जनसंख्या के द्वारा ही सम्भव हो पाता है।

(3) विस्तृत बाजार- अधिक जनसंख्या होने से विस्तृत बाजार मिल पाता है और विलोमशः।

(4) अनुसंधान एवं विकास- मानव संसाधन के द्वारा ही अनुसंधान एवं विकास कार्य होता है। यह बताया जाता है कि देश में कौन-कौन से खनिज व अन्य पदार्थ देश में उपलब्ध है तथा उनका उपयोग किन-किन कार्यों के लिये किया जा सकता है।

(5) श्रम विभाजन के लाभ- पर्याप्त जनसंख्या होने से उद्योगों में श्रम विभाजन की नीति अपनाकर लाभ प्राप्त किये जा सकते है।

राष्ट्र को जनसंख्या के विकास हेतु अपने दायित्व का निर्वाह निम्न उपायों से करना चाहिये।

(1) खाद्यान्नों की पूर्ति- भोजन, कपड़ा व मकान की पूर्ति करना जनसंख्या की आधारभूत आवश्यकताओं हेतु किया जाना चाहिये। यह एक गम्भीर दायित्व है।

(2) आवास समस्या- मकान, पार्क, सड़कें आदि निर्मित करना राष्ट्र के दायित्वों में आता है।

(3) स्वास्थ्य एवं चिकित्सा सुविधाएँ- इससे कुपोषण जनसंख्या नहीं रहेगी तो कार्यक्षमता में वृद्धि होगी।

(4) शिक्षा सुविधाएँ- उचित शिक्षा एवं प्रशिक्षण की व्यवस्था करना राष्ट्र की जिम्मेदारी है। इससे मानव संसाधन की गुणवत्ता बढ़ती है।

(5) रोजगार सुविधाएँ- राष्ट्र का दायित्व है कि जनसंख्या को रोजगार की सुविधाएँ प्रदान करे।

(6) परिवहन एवं संदेशवाहन सुविधाएँ- राष्ट्र द्वारा इन सुविधाओं को प्रदान करने से आर्थिक क्रियाओं का भी विकास सम्भव हो सकेगा।

(7) शान्ति एवं सुरक्षा- एक सुदृढ़ प्रशासन का यह भी उत्तरदायित्व है कि वह देश में शान्ति एवं सुरक्षा बनाये रखे।

अतः निष्कर्ष रूप में यह कहा जा सकता है, ***"मानव संसाधन जहाँ एक ओर आर्थिक विकास के लिये आवश्यक तत्व है वहाँ दूसरी ओर एक दायित्व भी है। सामान्यतया सीमित जनसंख्या की स्थिति में कोई विशेष दायित्व नहीं है, लेकिन जब जनसंख्या काफी बढ़ जाती है तो उत्तरदायित्व में वृद्धि हो जाती है जो आगे चलकर देश के आर्थिक विकास में बाधा उत्पन्न कर सकती है।"***

6.10 राष्ट्रीय पोषण नीति

वर्ष 1993 में घोषित राष्ट्रीय पोषण नीति के अन्तर्गत सन् 2000 तक निम्नलिखित लक्ष्यों को प्राप्त करने का उद्देश्य रखा गया है-

(1) स्कूल पूर्व के बच्चों में अत्याधिक कुपोषण के आपात के स्तर को 50 प्रतिशत तक घटाना

(2) चिरकालीन अल्प पोषण को घटाना और जन्म पर कम वजन वाले बच्चों के अनुपात कम करके 10 प्रतिशत तक लाना।

(3) सूक्ष्म पोषकों के अभाव को समाप्त करना।

(4) वृद्धावस्था पोषण पर अधिक बल देन।

(5) खाद्यान्नों के उत्पादन को बढ़ाकर 2500 लाख टन करना।

(6) गरीबी उन्मूलन कार्यक्रमों द्वारा पारिवारिक खाद्य सुरक्षा को उन्नत करना और उचित एवं स्वस्थ जीवन शैली को प्रोन्नत करना।

(7) निःसन्देह राष्ट्रीय पोषण नीति अपने घोषित लक्ष्यों की पूर्ति नहीं कर सकी।

6.11 भारत में मानव विकास के बुनियादी संकेतक

भारत में मानव विकास के बुनियादी संकेतक में जन्म के समय जीवन प्रत्याशा, साक्षरता दर, जन्म दर, मृत्यु दर एवं शिशु मृत्यु दर को सम्मिलित किया जाता है।

परिवार कल्याण सेवाओं की सुलभता और स्वास्थ्य के प्रति सचेत होने से अखिल भारतीय मृत्यु दर, जन्म दर तथा शिशु मृत्यु दर में गिरावट आयी है तथा साक्षरता के स्तर में सुधार हुआ है। इसी सब के फलस्वरूप भारत का मानव विकास सूचकांक ऊपर उठा है। देश में आर्थिक विकास के फलस्वरूप सामान्य लोगों के जीवन स्तर में सुधार आया है।

इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि देश में मानव संसाधन का निर्माण अभी प्राथमिक अवस्था है अतः देश की आर्थिक विकास को गति प्रदान के लिये देश में स्वस्थ नागरिकों, कुशल श्रमिकों, तकनीशियनों वैज्ञानिकों तथा प्राविधिकों की संख्या में वृद्धि करनी होगी। **विश्वविद्यालय अनुदान आयोग** के मतानुसार ***"भारत प्राकृतिक संसाधनों की दृष्टि से पूर्णतया सम्पन्न राष्ट्र है तथा इसके नागरिक प्रतिभाशाली एवं शक्तिमान है। उनमें विकास एवं पुर्ननिर्माण की उत्कृष्ट अभिलाषा विद्यमान है- आवश्यकता है तो केवल उसे गति***

एवं व्यावहारिकता प्रदान करने की। यह उत्तरदायित्व अब विश्वविद्यालयों एवं तकनीकी संस्थाओं का है कि वे ज्ञान का सृजन करके नूतन मस्तिष्कों को प्रशिक्षित करें ताकि प्राकृतिक एवं मानव संसाधनों का समन्वित एवं सन्तुलित ढंग से उपयोग किया जा सके।''

दसवीं पंचवर्षीय योजना ने मानव विकास की गुणवत्ता में वृद्धि हेतु आत्मनिर्भरता प्राप्ति का लक्ष्य निर्धारित किया। यह एक सकारात्मक पहल है।

6.12 अभ्यास प्रश्न

लघु उत्तरीय प्रश्न

(1) बौद्धिक पूँजी की अवधारणा को समझाइये?

बहुविकल्पीय प्रश्न

1. शिक्षा सम्बन्धी विनियोग कौन से क्षेत्रों में किये जा सकते है?

क. कृषि विस्तार सेवा

ख. औद्योगिक कौशल को उन्नत करने प्रबन्धकीय क्षमता में वृद्धि करने हेतु

ग. औद्योगिक कौशल को उन्नत करने प्रशासकीय क्षमता में वृद्धि करने हेतु

घ. उपरोक्त सभी

2. राष्ट्रीय पोषण नीति कब घोषित की गयी?

क. 1991 ख. 1992

ग. 1993 घ. 1994

3. मानव विकास के प्रमुख स्त्रोत क्या है?

क. आन्तरिक स्त्रोत ख. बाह्य स्त्रोत

ग. उपरोक्त दोनों घ. उपरोक्तमें से कोई नहीं

6.13 सांराश

मानव शक्ति के विकास हेतु प्रचुर मात्रा में मुद्रा निवेश किया जाता है ताकि देश की मानव शक्ति तकनीकी ज्ञान योग्यता एवं कुशलता की दृष्टि से विशिष्टता प्राप्त कर सके। मानव पूँजी निर्माण, मानव में विनियोग और उसके सृजनात्मक तथा उत्पादक साधन के रूप में विकास से सम्बद्ध है। श्रेष्ठतम मानव पूँजी उपलब्ध होने से देश की भौतिक पूँजी भी अधिक उत्पादक बन जाती है। कुशल मानव पूँजी के अभाव में भौतिक पूँजी का समुचित उपयोग न हो सकेगा जिससे लाभ पूर्ण रूप से नहीं मिल सकेगा।यह कहा जा सकता है कि प्रगतिशील देशों द्वारा योग्य एवं प्रशिक्षित श्रमिकों तथा तकनीकशियनों पर बल देने से आर्थिक विकास सम्भव हो सका है।आज विश्व के देशों में मानव पूँजी में निवेश हेतु उच्च प्राथमिकता दी जाती है। मानव पूँजी में निवेश से तात्पर्य संकुचित अर्थों में शिक्षा एवं प्रशिक्षण पर व्यय करना है, जबकि व्यापक अर्थों में, स्वास्थ्य, शिक्षा तथा सभी सामाजिक सेवाओं पर व्यय करने से लगाया जाता है।

आर्थिक विकास की दृष्टि से भौतिक पूँजी की अपेक्षा मानव पूँजी को कहीं अधिक महत्वपूर्ण समझा जाता है क्योंकि मानवीय साधनों की कुशलता एवं दक्षता पर ही आर्थिक विकास का ढांचा खड़ा किया जा सकता

है। अतः मनुष्य में निवेश करना उतना ही महत्वपूर्ण होता है जितना कि भौतिक पूँजी में।तकनीकी प्रगति में योगदान देने वाले विभिन्न तत्वों के सापेक्ष महत्व और स्वयं प्रगति की रफ्तार भी विभिन्न देशों में उनकी विकास अवस्थाओं तथा सामाजिक, आर्थिक शक्ति के अनुसार भिन्न-भिन्न होती है।शोध एवं अन्वेषण आधुनिक वैज्ञानिक तकनीक का आधार है और आधुनिक तकनीक आर्थिक प्रगति का आधार है।मानव विकास के दो मुख्य स्त्रोत है-आन्तरिक स्त्रोत, बाह्य स्त्रोत।

अल्पविकसित देशों के संदर्भ में मानव पूँजी का समुचित विकास नहीं हो सका। इसका कारण है कि इन देशों में गरीबी और पूँजी के अभाव में इस क्षेत्र में पर्याप्त विनियोग नहीं हो सका। यही कारण है कि इन देशों में कौशल निर्माण की गति धीमी रहती है। मानव पूँजी के विकास के लिये निम्न उपायों का प्रयोग किया जाता है:- अनिवार्य शिक्षा, तकनीकी शिक्षा पर अधिक बल, प्रौढ शिक्षा, समुचित प्रेरणा आदि। विकासवादी अर्थशास्त्रियों का यह मानना है कि कम से कम 30 से 40 प्रतिशत मानव संसाधन विकास पर अवश्य व्यय करना चाहिये।भारत की पंचवर्षीय योजनाओं में शिक्षा के विस्तार पर पर्याप्त ध्यान दिया गया है। पढ़ने वाले बच्चों की निरन्तर वृद्धि होती जा रही है। नये प्राथमिक विद्यालय, महाविद्यालय आदि खुलते जा रहे है। मानव संसाधन राष्ट्र के लिये एक सम्पत्ति है। मानव संसाधन जहाँ एक ओर आर्थिक विकास के लिये आवश्यक तत्व है वहाँ दूसरी ओर एक दायित्व भी है।

6.14 शब्दावली

- **मानव संसाधन -** Human Resource
- **भौतिक पूँजी -** Physical Capital
- **प्रशिक्षण -** Training
- **वर्द्धमान प्रतिफल -** Increasing Return
- **पोषण युक्त -** Nutritions
- **तकनीकी संस्थाएं -** Technical Institutions
- **सूक्ष्म पोषक -** Micro Nutrient

6.15 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. घ. उपरोक्त सभी 2. ग. 1993 3. ग. उपरोक्त दोनों

6.16 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

- डॉ. जे.पी. मिश्रा- *संवृद्धि एवं विकास का अर्थशास्त्र* साहित्य भवन पब्लिकेशन्स, आगरा 2012
- दत्त एवं सुन्दरम- *भारतीय अर्थव्यवस्था*, एस. चंद पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली, 2012
- एल.एन. कोली- *भारतीय अर्थव्यवस्था* लक्ष्मी नारायन अग्रवाल, आगरा 2007
- कुमार सर्वेश- *भारतीय अर्थव्यवस्था*, सार्थक प्रकाशन,दिल्ली, 2011
- डा. जे. सी. पन्त एवं जे. पी. मिश्रा - *अर्थशास्त्र*, साहित्य भवन पब्लिकेशन, आगरा

- डा. टी.टी. सेठी - समष्टि अर्थशास्त्र

6.17 सहायक/उपयोग पाठ्य सामग्री

- Arvind Panagariya: The Emerging Giant
- Bimal Jalan : India's Economic Policy : Preparing for the Twenty-First Century *Penguin Books India* , 2000
- Waquar Ahmed, Amitabh Kundu, Richard Peet: India's New Economic Policy: *Taylor &Francis* US, 2010
- Prem Sagar Gupta: Foreign capital in India, People's Pub. House, 1952
- R. K. Uppal: Economic Reforms in India: A Sectoral Analysis
- Hayami, Yujiro, Godo, Yoshihisu, (2004), Development Economics, OxfordUniversity Press India
- Singh, S.P. (2010) Economics of Development & Planing theory & practice, S &Chand Publishing House
- Dhingra, I C., (2009), Development Economics, Sultan Chand & Sons
- Mishra, S.K., and Puri, V.K., (2007), Economics of Development & Planing theory & practice, Himalaya

6.18 निबन्धात्मक प्रश्न

1. मानव पूँजी निर्माण से आप क्या समझते हैं? आर्थिक विकास में मानव पूँजी निर्माण की क्या भूमिका है?
2. "एक विकासशील अर्थव्यवस्था में पूँजी निर्माण की अपेक्षा मानवीय संसाधनों के विकास को उच्चतर प्राथमिकता प्रदान की जानी चाहिये।" क्या आप इस कथन से सहमत है?
3. मानव पूँजी निर्माण की आवश्यकता एवं महत्व को समझाइये?

इकाई 7- अधो संरचना एवं आर्थिक विकास

(Infrastructure and Economic Development)

7.1 प्रस्तावना

7.2 उद्देश्य

7.3 अधोसंरचना सुविधाओं के उपादान

7.4 स्वतंत्रता के पश्चात आधार संरचना का विकास

7.5 ऊर्जा या शक्ति संसाधन

- **7.5.1 परम्परागत साधन**
- **7.5.2 गैर परम्परागत साधन**
- **7.5.3 भारत में ऊर्जा संकट के कारण एवं उनके समाधान हेतु सुझाव**
- **7.5.4 भारत सरकार द्वारा ऊर्जा को विकास करने की नीति**

7.6 भारत में परिवहन साधन

- **7.6.1 आर्थिक विकास में परिवहन का महत्व**
- **7.6.2 सड़क परिवहन के साधन**
- **7.6.3 भारत में रेल परिवहन**
- **7.6.4 जल परिवहन**
- **7.6.5 वायु परिवहन**
- **7.6.6 संचार**
- **7.6.7 बैंक, बीमा एवं वित्त**

7.7 आधार संरचना में निजी निवेश: दृष्टि और भविष्य

7.8 अभ्यास प्रश्न

7.9 सांराश

7.10 शब्दावली

7.11 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

7.12 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

7.13 सहायक/उपयोग पाठ्य सामग्री

7.14 निबन्धात्मक प्रश्न

7.1 प्रस्तावना

पिछली इकाई में मानव संसाधन एवं आर्थिक विकास के परस्पर सम्बंध का अवलोकन किया गया। प्रस्तुत इकाई में आधार संरचना सुविधाओं के अन्तर्गत आर्थिक विकास से सम्बंध को समझाया गया है। कृषि एवं औद्योगिक उत्पादन को बढ़ाने के लिये आधार संरचना का विस्तार करना आवश्यक है। क्योंकि किसी भी देश की समृद्धि एवं विकास उस देश के कृषि एवं उद्योग के विकास पर निर्भर करती है।

जहाँ कृषि उत्पादन के लिये संचालन शक्ति वित्त एवं परिवहन सुविधाओं आदि की आवश्यकता होती है वहीं औद्योगिक उत्पादन के लिये केवल मशीनरी एवं संयंत्र ही नहीं चाहिये बल्कि कुशल श्रम शक्ति, प्रबन्ध, ऊर्जा, बैंकिंग एवं बीमा सुविधाओं की भी जरूरत होती है। साथ ही साथ विपणन सुविधाओं, परिवहन सेवाओं की भी आवश्यकता होती है जिनमें रेलवे, जहाज, संचार सुविधाएँ आदि शामिल की जाती है। ऐसे सभी सुविधाओं एवं सेवाओं को सामूहिक रूप में आधार संरचना अथवा अधोसंरचना कहा जाता है।

औद्योगिक एवं कृषि क्रान्ति के कारण परिवहन एवं संचार क्रान्ति फलीभूत हुयी। जहाँ ऊर्जा का स्त्रोत पहले कोयला, बाद में तेल और विद्युत हुआ वहीं वित्त जुटाने के लिये बैंकिंग, बीमा एवं अन्य वित्त संस्थानों का भी विकास होता गया।

7.2 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन से हम यह ज्ञात कर सकेंगे किः-

- ✓ आधार संरचना में किन उपादानों को सम्मिलित किया जाता है
- ✓ स्वतंत्रता के पश्चात आधार संरचना का कितना विकास हुआ
- ✓ ऊर्जा संसाधन के परम्परागत एवं गैर परम्परागत स्त्रोत क्या है एवं इनको भारत में कितना विकास हुआ
- ✓ परिवहन के अंतर्गत सड़क एवं रेल एवं वायु परिवहन का आर्थिक विकास से सम्बंध
- ✓ अन्य वित्तीय संस्थाओं के विस्तार का भारत के आर्थिक विकास में भूमिका
- ✓ अधोसंरचना का आर्थिक विकास में क्या महत्व है।

7.3 अधोसंरचना सुविधाओं के उपादान

अधोसंरचना सुविधाओं को प्रायः आर्थिक एवं सामाजिक उपरि व्यय भी कहा जाता है।
इनमें निम्नलिखित उपादानों को सम्मिलित किया जाता हैः-

(1) ऊर्जा- कोयला, बिजली, खनिज तेल और अन्य गैर-परम्परागत स्त्रोत-सौर ऊर्जा, अणु शक्ति, वायु एवं गैस आदि।

(2) परिवहन- रेल, सड़के, जहाजरानी और नागरिक उड्डयन

(3) संचार- डाक एवं तार, टेलीफोन, टेली संचार आदि।

(4) सेवाए - बैंकिंग, वित्त एवं बीमा

(5) मानव संसाधन विकास- शिक्षा एवं स्वास्थ्य

7.4 स्वतंत्रता के पश्चात आधार संरचना का विकास

इस कथन से कदापि इंकार नहीं किया जा सकता कि अधोसंरचना के विकास के अभाव में देश का विकास सम्भव नहीं है। इसी कारण भारत की आर्थिक नियोजन की प्रक्रिया में अधोसंरचना के विकास पर बल दिया गया। 62 वर्षों की नियोजन प्रक्रिया में आधार संरचना का अच्छा विकास हुआ। 11 पंचवर्षीय योजनाएं, तीन वार्षिक योजनाएं व तीन वर्ष का अन्तरकाल का नियोजन इस बात की पुष्टि भी करता है।

भारत में अपनी पंचवर्षीय योजनाओं में योजना व्यय का लगभग 50 प्रतिशत आधारभूत संरचना पर व्यय किया है। परिणामस्वरूप भारत का आधारभूत संरचना उपलब्ध हो सका। यह एक विडम्बना ही है कि आधारभूत संरचना की उपलब्धता मात्र शहरों एवं नगरों में ही उपलब्ध है और गाँवों में इनका विकास तुलनात्मक दृष्टि से नहीं हो सका। इसी कारण जनसंख्या का पलायन गाँवों से शहरों की ओर हो रहा है और परिणामस्वरूप शहरों की जनसंख्या बढ़ती जा रहीं है।

निम्नलिखित तालिका से यह स्पष्ट है कि स्वतंत्रता पश्चात भी भारत में आधारभूत संरचना का काफी विकास हुआ है।

विवरण	इकाई	वर्ष	वर्ष
		1950-51	2008-09
1) ऊर्जा या शक्ति			
1.कोयले का उत्पादन	लाख टन में	322	
2.विद्युत का उत्पादन	विलियन KWH में	5	4933
3.कच्चे तेल का उत्पादन	लाख टन में	3	746.6
2) परिवहन			
1.रेलों की लम्बाई	1000 KM में	53.6	335
2.सड़कों की लम्बाई	लाख KM में	4	63.3
3. जहाजों की क्षमता	लाख GRT में	3.7	33.4
3) संचार			
1.डाकखाने	हजार में	3.6	115.3
2.टेलीफोन	करोड़	0.017	30.05
4) बैंक एवं वित्त			
1.बैंक	कार्यालय	2600	76885

अब हम एक करके सभी मदों का विस्तार से उल्लेख करेंगें।

7.5 ऊर्जा या शक्ति संसाधन

जिस देश में सस्ते व पर्याप्त माँग में शक्ति संसाधन उपलब्ध होते है वह देश अपना विकास आसानी से व तीव्र गति से कर सकता है। इसका कारण है कि सभी क्षेत्रों- कृषि, उद्योग, परिवहन आदि में शक्ति संसाधनों की आवश्यकता पड़ती है। इसके विपरीत जिस देश में शक्ति संसाधन अपर्याप्त होते है या अविकसित होते है वह देश

अन्य सभी आवश्यक सुविधाओं के होते हुये भी विकास मन्द गति से कर पाता है। यही कारण है कि प्रत्येक देश अपनी आर्थिक योजनाएं बनाते समय शक्ति संसाधनों के विकास पर विशेष जोर देता है।

यह माना जाता है कि जिस देश में शक्ति संसाधन की प्रति व्यक्ति खपत जितनी अधिक होगी उस देश में प्रति व्यक्ति आय भी उतनी ही अधिक होगी। इस दृष्टि से देखा जाय तो भारत दोनों में ही पीछे है। यहाँ प्रति व्यक्ति शक्ति संसाधनों की खपत भी कम है और प्रति व्यक्ति आय भी कम है।

भारत में विश्व की 16 प्रतिशत जनसंख्या निवास करती है, लेकिन यहाँ पर कुल विश्व खपत की 1.5 प्रतिशत शक्ति ही खर्च होती है। आर्थिक सर्वेक्षण 2008-09 के अनुसार यहाँ प्रति व्यक्ति खपत लगभग 90.4 KWH वार्षिक है जो बहुत कम है।

भारत में शक्ति संसाधन कई है, जैसे मनुष्य, पक्षी, लकड़ी, कोयला, वायु, जल, परमाणु, खनिज तेल, आदि इन संसाधनों को दो प्रकार में विभाजित किया जा सकता है।

(1) परम्परागत साधन

1. कोयला 2. विद्युत 3.खनिज तेल या पेट्रोलियम

(2) गैर परम्परागत साधन

1. परमाणु शक्ति 2.वायु शक्ति 3. सूर्य शक्ति 4. गैस भाप विद्युत गृह आदि।

7.5.1 परम्परागत साधन

1.कोयला-

कोयला को ईंधन का बादशाह माना जाता है। औद्योगिक क्रान्ति की शक्ति का माध्यम कोयला को ही माना जाता है। चाहे मानव सभ्यता का विषय हो या कियी देश के आर्थिक विकास का प्रथम चरण कोयला का स्थान सर्वोपरि है। इसी कारण से इसे काला सोना (Black Gold) या काला हीरा (Black Diamond) का नाम दिया गया है।

कोयले के उपयोग में न मात्र शक्ति उत्पादन बल्कि ईंधन का रूप भी उतना ही महत्व रखता है। इससे निकले कई रासायनिक पदार्थ जैसे- तेल, बेजोल, नेफ्था का प्रयोग रासायनिक उद्योगों में होता है। बिजली उपकरणों के निर्माण में भी कोयले का प्रयोग किया जाता है। कोलतार भी बनाया जाता है जिससे सड़क का निर्माण होता है। इससे डायल भी बनाया जा सकता है जिससे अमोनिया द्रव निकलता है जो खाद बनाने वाले कारखानों के काम आता है।

भारत में कोयले के कुल 264.54 करोड़ टन के भण्डार है। यह विश्व के कुल कोयला भण्डार का 8 प्रतिशत ही है। तीसरे स्थान की श्रेणी में भारत के पास मात्र 2 प्रतिशत ही बढ़िया किस्म का कोयला है जबकि 7 प्रतिशत मध्यम किस्म और 91 प्रतिशत गैर कोंकिंग किस्म का।

भारत में मात्र तीन क्षेत्र ही है जो कोयला उत्पादन क्षेत्र में आते है- पश्चिम बंगाल एवं झारखण्ड, एवं अन्य छुटपुट क्षेत्र। पश्चिम बंगाल एवं झारखण्ड कुल मिलाकर 61 प्रतिशत कोयला का उत्पादन करते है। आज भारत में 22 प्रतिशत कोकिंग कोयला व 78 प्रतिशत गैर कोकिंग कोयला का उत्पादन हो रहा है।

2. विद्युत-

किसी भी देश का आर्थिक विकास विद्युत शक्ति के बिना सम्भव नहीं है। चाहे गाँव हो या शहर, उद्योग हो या खेत, शायद ही कोई ऐसा क्षेत्र है जहाँ विद्युत की आवश्यकता न हो। एक आवश्यक इनपुट के रूप में विद्युत का उपयोग पीने के पानी के लिए, परिवहन साधनों को चलाने के लिये, संचार सुविधाओं के लिये घरों व सड़कों पर रोशनी के लिये किया जाता है। विकसित देशों की तीव्र विकास के पीछे विद्युत का एक अत्यन्त महत्वपूर्ण योगदान है।

विद्युत का उत्पादन पानी, कोयला, डीजल, परमाणु शक्ति से होता है।

ऐतिहासिक दृष्टि से विद्युत का उत्पादन भारत में 1900 से प्रारम्भ हुआ। पहला पन बिजलीघर कर्नाटक राज्य में शिवसमुद्रम में बनाया गया हालाँकि इसके पश्चात अनेक पन बिजलीघर बनाये गये परन्तु यह शहरी क्षेत्र तक ही सीमित थे।

1950-51 में विद्युत की कुल उत्पादन क्षमता 22 लाख टन थी जबकि 2008-09 में बढ़कर 1750 लाख ज़ॅ हो गयी। वहीं 1950-51 में इसकी कुल वास्तविक उत्पादन 7 विलियन KWH थी जो 2008-09 में बढ़कर 842 विलियन KWH हो गयी।

विकसित देशों की तुलना में भारत में विद्युत का प्रति व्यक्ति उत्पादन 55 KW वार्षिक ही है जबकि अमेरिका में 7998 KW है। यहाँ तक कि इटली में 2186 KW है।

विद्युत शक्ति के उत्पादन का 37.6 प्रतिशत भाग उद्योगों द्वारा खपत किया जाता है जबकि 21.7 प्रतिशत भाग कृषि द्वारा खपत किया जाता है। विद्युत शक्ति का विकास सम्पूर्ण भारत में समुचित रूप से हुआ है। हिमाचल प्रदेश, जम्मू व काश्मीर, कर्नाटक, केरल व मेघालय मुख्य रूप से जल विद्युत पर निर्भर है। दिल्ली, बिहार व पश्चिम बंगाल कोयले द्वारा उत्पादित बिजली पर निर्भर है तो वहीं आन्ध्र प्रदेश, असम, हरियाणा, मध्य प्रदेश, महाराष्ट्र, उड़ीसा, पंजाब, राजस्थान, तमिलनाडु व उत्तर प्रदेश को जल विद्युत व कोयला से उत्पादित विद्युत दोनों ही मिलती है।

अब तक भारत के गाँवों का लगभग 84 प्रतिशत विद्युतीकरण हो चुका है।

3. खनिज तेल या पेट्रोलियम

खनिज तेल या पेट्रोलियम, शक्ति साधन के रूप में ही नहीं वरन् बहुत से उद्योगों के लिये आधार भी है।

पेट्रोलियम दो शब्दों से मिलकर बना है- पेट्रो + ओलियम। पेट्रो का अर्थ है-चट्टान एवं ओलियम शब्द का अर्थ है-तेल। अर्थात् चट्टान का तेल (Rock Oil) भूरे या पीले या हरे रंग का यह पदार्थ तरल रूप में होता है एवं गहरे कुएं से निकले अशोधित तेल को (Crude Oil) कहते है।

भारत में खनिज तेल भण्डार 35 करोड़ टन का है। यह भण्डार असम, गुजरात, नाहरकटिया, रवम्भात, अंकलेश्वर, डिगबोई, सूरमाघाटी, कच्छ की खाड़ी, तमिलनाडु, आन्ध्र प्रदेश, उड़ीसा, केरल, बंगाल की खाड़ी, बाम्बे हाई आदि में पाये जाते है।

भारत में तेल के स्त्रोत सर्वप्रथम 1866 में देखे गये थे और 1867 में सर्वप्रथम असम में तेल निकाला गया। डिगबोई क्षेत्र की स्थापना के साथ ही 1895 में असम ऑयल कम्पनी ने इसका कार्य भार सम्भाल लिया। 1956 में तेल एवं प्राकृतिक गैस आयोग की स्थापना की गयी। तत्पश्चात निजी क्षेत्र के लिये भी यह क्षेत्र खोल दिया गया जिसके फलस्वरूप Relience व Easer Group इस ओर अग्रसर हुये। जहाँ 1950-51 में भारत का खनिज तेल का उत्पादन 3 लाख टन था वही, 2008-09 में 335 लाख टन रहा।

इस समय देश में 13 करोड़ 25 लाख टन तेल शोधन क्षमता के 18 तेलशोधक कारखाने है। इनमें मान 1 निजी क्षेत्र में है जो कि Refiners Reliance Industries limited, Jamnagar में स्थित है।

7.5.2 गैर परम्परागत साधन

(1) परमाणु शक्ति-

होमी जहाँगीर भाभा को भारत में परमाणु शक्ति का विकास करने का श्रेय जाता है। इन्होंने 1945 में टाटा आधारभूत अनुसंधान संस्थान (Tata Institute of Fundamental Research- TIFR) की स्थापना की। 1948 में परमाणु ऊर्जा आयोग का गठन किया गया। 1954 में केन्द्र सरकार द्वारा परमाणु ऊर्जा विभाग स्थापित किया गया जिसका नाम **डॉ. भाभा** की मृत्यु के पश्चात् 'भाभा परमाणु अनुसंधान केन्द्र' पर रखा गया। इस केन्द्र में चार अनुसन्धान रिऐक्टर है-1. अप्सरा, 2. साइकस, 3. जरलीना, 4. ध्रूव 5.कामिनी।

आज देश में परमाणु विद्युत केन्द्र तारापुर परमाणु केन्द्र (महाराष्ट्र), रावतमाड़ा परमाणु शक्ति केन्द्र (राजस्थान), कलपक्कम परमाणु केन्द्र (तमिलनाडु), नरौरा परमाणु शक्ति केन्द्र (उत्तर प्रदेश), का करपारा परमाणु शक्ति केन्द्र (गुजरात) तथा कैगा परमाणु केन्द्र (कर्नाटक) में स्थित है।

भारत में परमाणु शक्ति का विकास-

भारत में इस समय 2225 मेगावाट परमाणु शक्ति की उत्पादन क्षमता के परमाणु विद्युत गृह है जो अपनी पूरी क्षमता पर उत्पादन कर रहे हैं।

परमाणु शक्ति के विकास की परम आवश्यकता है क्योंकि देश के आर्थिक विकास के लिये पर्याप्त मात्रा में सस्ती शक्ति की जरूरत होती है। जहाँ पर जल शक्ति अपर्याप्त है वहाँ परमाणु शक्ति इस कमी को पूरा करने में समर्थ है। कोयले के विकल्प के रूप में परमाणु शक्ति का प्रयोग किया जा सकता है क्योंकि कोयले के भण्डार सीमित है। भाखड़ा नागल, चम्बल आदि योजनाओं से भारी जल की आवश्यकता पूरी करके परमाणु शक्ति को उत्पन्न किया जा सकता है।

2. वायु शक्ति

इस शक्ति का भी प्रयोग देश के विकास के लिये किया जा सकता है। नीदरलैण्ड जैसे देशों ने इसका उपयोग पवन चक्कियां लगाकर किया है। हालाँकि भारत के गाँवों में किसानों द्वारा अनाज को भूसे से अलग करने के लिये इस शक्ति का प्रयोग किया जाता है परन्तु अभी तक वृहत रूप से इसका उपयोग नहीं किया गया है।

राष्ट्रीय वैज्ञानिक अनुसंधानशाला बंगलौर के अनुसार भारत में भी वायुशक्ति का उपयोग बिजली उत्पन्न करने के लिये किया जा सकता है।

भारत अपनी 45000 मेंगावाट वायु शक्ति की क्षमता का महज 13000 मेगावाट का ही उपयोग कर पा रहा है। विश्व में इसका स्थान पाँचवा है- जर्मनी, अमेरिका, डेनमार्क व स्पेन।

3. सूर्य शक्ति

सूर्य से प्राप्त शक्ति, शक्ति का ऐसा साधन होगा जो कभी समाप्त नहीं होगा।भारत का प्रथम सौर ऊर्जा बिजलीघर लद्दाख के छोंग्लेश्वर नामक गाँव में स्थापित किया गया जो विश्व में इस प्रकार की बिजली का दूसरा गाँव है। भारत में BHEL कम्पनी की हरिद्वार स्थित कैन्टीन में सूर्य शक्ति का प्रयोग धोने के लिये गर्म पानी के लिये किया जाता है। वहीं आनन्द (गुजरात) स्थित अमूल फैक्टरी में इसका प्रयोग सूखा दूध बनाने के लिये किया जाता है। भावनगर (गुजरात) में पीने का पानी इसी शक्ति से साफ किया जाता है। दिल्ली के सुपर बाजार व उत्तर प्रदेश में भी सूर्य शक्ति के हीटर बेचे जा रहे है।

4. गैस भाप विद्युत गृह-

भारत का पहला गैस भाप विद्युत गृह राजस्थान में कोटा के पास अन्त में बनाया गया है जिसमें गैस से विद्युत बनना प्रारम्भ हो गया है। भारत का इस सम्बंध में यह पहला परीक्षण है।

7.5.3 भारत में ऊर्जा संकट के कारण एवं उनके समाधान हेतु सुझाव

ऊर्जा संकट का अर्थ है ऊर्जा के साधनों का अभाव। देश के आर्थिक विकास में ऊर्जा एक महत्वपूर्ण भूमिका अदा करते है। यह संकट मात्र भारत तक ही सीमित नहीं है वरन् विश्वव्यापी है। हालाँकि भारत में 1950-51 से लेकर वर्तमान तक की अवधि में विद्युत कोयला एवं कच्चे तेल के उत्पादन पर्याप्त वृद्धि हुयी है। फिर भी यह संकट विद्यमान है। बढ़ती हुयी ऊर्जा की माँग हर क्षेत्र में बनी हुयी है, चाहे वह क्षेत्र औद्योगिक हो या कृषि।

संक्षेप में ऊर्जा संकट के मुख्य कारण निम्नलिखित है-

(1) तीव्र गति से होता हुआ औद्योगिक विकास

(2) गाँवों के विद्युतीकरण एवं कृषि का बढ़ता हुआ यन्त्रीकरण

(3) कोयले का समय पर भारी मात्रा में उपलब्ध न होने के कारण रेलों आदि में तेल का उपयोग बढ़ गया। देश में इसका उत्पादन 335 लाख टन वार्षिक है जबकि इसकी खपत 1000 लाख टन वार्षिक पहुँच गयी है। यह आयात द्वारा पूरा किया जाता है।

(4) कोयले का बढ़ता हुआ अभाव जिससे ताप विद्युत गृहों को समय पर उपलब्ध नहीं हो पाता है।

(5) जल विद्युत उत्पादन में कमी के कारण जल विद्युत योजनाओं को कार्यरूप में परिणत होने में देर हो जाती है और उनके निर्धारित लक्ष्य प्राप्त नहीं हो पाते।

(6) आवश्यक पदार्थ, तकनीक आदि होते हुये भी भारत के परमाणु शक्ति का विकास धीमी गति से हो रहा है।

(7) विद्युत उत्पादन की चोरी से वित्त का बहुत नुकसार हो जाता है जिसका उपयोग विद्युत उत्पादन की क्षमता बढ़ाने में किया जा सकता है। भारत में लगभग 1/3 उत्पादन की चोरी हो जाती है जिससे करीब 24000

करोड़ रूपये प्रति वर्ष का नुकसान हो जाता है। यदि यह उत्पादन में लगाया जाय तो 5000 मेगावाट की क्षमता वाली विद्युत उत्पादन क्षमता प्रति वर्ष बढ़ाई जा सकती है।

सुझाव

(1) पेट्रोलियम पदार्थों का उत्पादन बढ़ाना एवं आन्तरिक उपभोग को कम करना।

(2) गैस का उत्पादन बढ़ाना एवं नवीन स्थानों की खोज करना जहाँ इसकी मिलने की सम्भावना हो।

(3) विद्युत उत्पादन के चार साधन- कोयला, तेल, पानी व परमाणु शक्ति में परमाणु शक्ति का विकास होने के समय लग सकता है। कोयले एव तेल की भारी मात्रा में माँग के कारण इसकी उपलब्धता कम होती जा रही है। ऐसे में मात्र जल विद्युत का उपयोग ही सम्भव है जो वर्षा के पानी को रोककर नदियों का पानी प्रयोग कर बनायी जा सकती है।

(4) विद्युत ग्रहों की पूर्ण क्षमता के उपयोग को बढ़ाने की आवश्यकता है।

(5) विद्युत की बरबादी एवं चोरी में कमी से 1/3 उत्पादन का भी समुचित प्रयोग किया जा सकता है।

(6) कोयले के उत्पादन को बढ़ाने का हर सम्भव प्रयास करना चाहिये जिससे तेल के स्थान पर उससे विद्युत उत्पादित हो सके।

(7) गैर परम्परागत ऊर्जा के विकास जैसे परमाणु ऊर्जा, वायु ऊर्जा, सौर ऊर्जा, गोबर गैस ऊर्जा व ज्वारीय ऊर्जा के विकास से तेल एवं कोयले दोनों की ही बचत हो सकती है।

7.5.4 भारत सरकार द्वारा ऊर्जा को विकास करने की नीति

1981 में केन्द्र सरकार द्वारा एक ऊर्जा आयोग का गठन किया गया। इस आयोग के तीन मुख्य कार्य है-

1. ऊर्जा के नये एवं पुराने स्त्रोतों को विकसित करने के लिये विभिनन कार्यक्रम एवं नीतियां बनाएं,
2. इनसे सम्बन्धित अनुसंधान और विकास कार्यो में तीव्रता लाये,
3. ऊर्जा के इन स्त्रोतो के बारे में सरकार की नीति को क्रियान्वित करें।

7.6 भारत में परिवहन साधन

परिवहन को परिभाषित करते हुये अमरीकी विद्वान **फेयर एवं विलियम्स (Fair & Williams)** के अनुसार, ***"परिवहन का अर्थ मनुष्यों अथवा सम्पत्ति का एक स्थान से दूसरे स्थान पर गमनागमन से है।"***

परिवहन मनुष्यों को एक स्थान से दूसरे स्थान पर ले जाने की सुविधा प्रदान करती है। सस्ते और शीघ्रगामी साधन को आधुनिक परिवहन की संज्ञा दी जाती है जिसके अन्तर्गत रेल, मोटर, पानी के जहाज, हवाई जहाज आदि आते है।

परिवहन का देश के आर्थिक विकास में महत्वपूर्ण योगदान देखा जा सकता है। इससे कृषि एवं औद्योगिक क्षेत्र में वृद्धि, विविधकरण एवं विशिष्टीकरण को बढ़ावा मिलता है। इससे व्यापार का ही विस्तार नहीं होता बल्कि मूल्यों में भी स्थिरता आती है। देश की सुरक्षा एवं रक्षा को बढ़ावा मिलता है एवं सरकारी आय भी बढ़ती है।

7.6.1 आर्थिक विकास में परिवहन का महत्व

(1) कृषि क्षेत्र में- परिवहन के माध्यम से किसान अपने उत्पादन को शहरों में बेचने के लिये जा सकते है। ऐसे कई उत्पाद जैसे- तरकारी, फल, डेरी उत्पाद, मछली आदि को शहर में बेचने के लिये परिवहन की सुविधा लाभप्रद होती है। इन साधनों के विकास से कृषि उत्पादन बढ़ता है क्योंकि शहरों से अच्छे बीज रासायनिक खादें व कृषि यन्त्र प्राप्त किये जा सकते है।

(2) औद्योगिक क्षेत्र में- परिवहन साधनों का विकास होने से उन स्थानों पर नये-नये कारखाने स्थापित हो पाते है जो सड़कों, रेलों, बन्दरगाहों आदि से जुड़ जाते है। इसी के कारण खान उद्योग व वन उद्योगों का विकास हुआ है। ये साधन श्रम में गतिशीलता ला देते है। इससे उद्योगों को श्रमिक उचित मात्रा में मिल जाते है।

(3) व्यापारिक क्षेत्र में- परिवहन साधन के विकास से व्यापारिक क्रियाओं में वृद्धि होती है, साथ ही साथ विदेशी व्यापार में भी वृद्धि होती है। मूल्यों के उतार चढ़ावों में कमी हो जाती है।

(4) सामाजिक क्षेत्र में- परिवहन साधन की सुविधा से विभिन्न क्षेत्र के लोग एक दूसरे के सम्पर्क में आते है जिससे संस्कृतियों के सम्बन्ध में ज्ञान की वृद्धि होती है। इससे अन्धविश्वास व रूढ़िवादिता को कम करने में अपना महत्वपूर्ण योगदान दिया है एवं भाईचारे की भावना पनपती है।

(5) राजनीतिक क्षेत्र में- देश में शान्ति व सुरक्षा के लिये द्रुतगामी परिवहन साधनों की आवश्यकता होती है। सीमा क्षेत्र व विदेशों से रक्षा के लिये भी परिवहन साधन चाहिये।

अन्त में यह कहा जा सकता है कि परिवहन साधनों के विकास से देश का आर्थिक विकास प्रभावित होता है। सभी देशों के विकास के लिये परिवहन साधन का विकास महत्वपूर्ण है।

परिवहन साधन को निम्न वर्गों में वर्गीकृत किया जा सकता है-

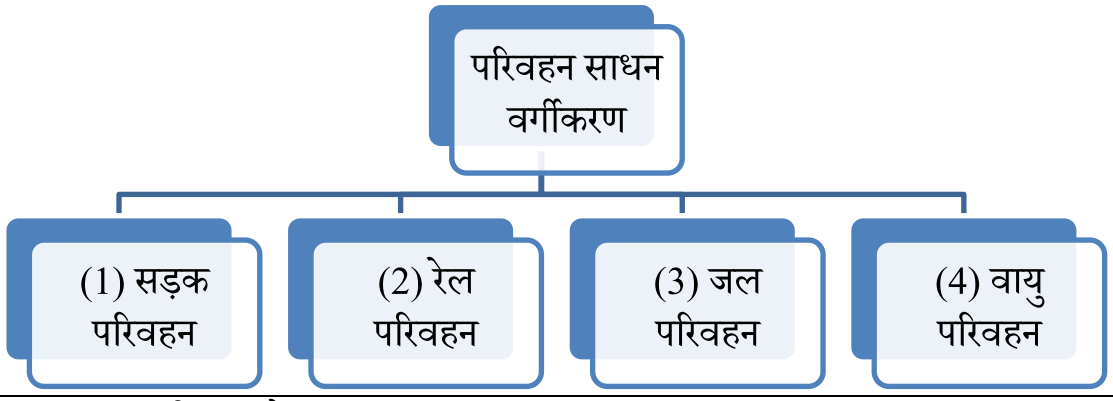

7.6.2 सड़क परिवहन के साधन

सिर पर बोझालट्ट पशु

बैलगाड़ी

मोटर ट्रक

नल- नलों का प्रयोग खनिज तेलों व गैस उत्पादन केन्द्रों से वितरण केन्द्रों तक पहुँचाने के लिये किया जाने लगा है।

भारत में सड़को का विकास

स्वतंत्रता पश्चात् भारत में सड़कों के विकास पर काफी ध्यान दिया गया।

योजना	करोड़ रूपये का व्यय
1-3 वर्षीय योजना	1135
4-6 वर्षीय योजना	9295
7 वर्षीय योजना	6180
8 वर्षीय योजना	15843
9 वर्षीय योजना	17748.82
10 वर्षीय योजना	62124.94

पिछले 58 वर्षों में सड़कों की लम्बाई आठ गुनी से अधिक हो गयी है परन्तु गम्भीर बात यह है कि आज भी भारत में सड़कें अन्य देशों की तुलना में कम है। करीब 54 प्रतिशत के लगभग सड़कें कच्ची ही है। 25 दिसम्बर, 2000 से केन्द्रीय सरकार में प्रधानमंत्री सड़क योजना की शुरूआत की है जिसके अन्तर्गत 60,000 करोड़ रूपये व्यय होने का अनुमान है। इस योजना का लक्ष्य अगले तीन वर्षों में एक हजार की आबादी वाले सभी गाँवों को अगले तथा 500 की आबादी वाले हर गाँव को सात वर्षों के भीतर पक्की सड़कों से जोड़ दिया जायेगा।

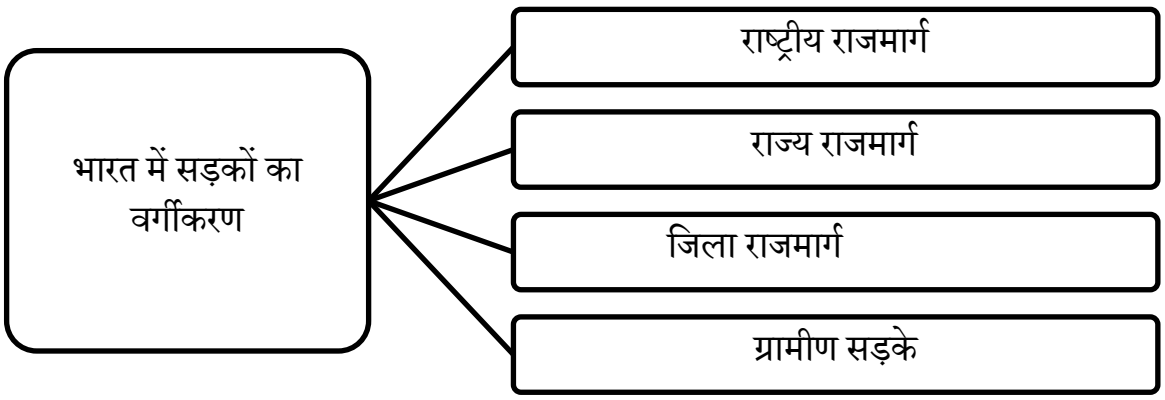

भारत में सड़क परिवहन का विकास

भारत में सड़क परिवहन के प्रमुख साधनों में बैलगाड़ियों, साइकिल तथा मोटन गाड़ियों को सम्मिलित किया जाता है। जहाँ भारत में 1947-48 में 3.61 लाख साइकिलें थी वहीं आज देश में प्रतिवर्ष 197 लाख साइकिलें बनती है।

भारत में प्रथम मोटनगाड़ी 1898 में आयात की गयी जहाँ 1920-21 में 37 हजार मोटरगाड़ियाँ थी, वहीं वर्तमान में 858.96 लाख हो गयी है। 1991 के बाद उदारीकरण के साथ ही आटोमोबाइल्स क्षेत्र में उत्पादकों की संख्या बढ़ी है। पैसेन्जर कारों का बहुउपयोगी वाहनों का, वाणिज्यिक वाहनों का दुपहिया व तिपहिया वाहनों का उत्पादन करने वाली कम्पनियां यहाँ तक की ट्रैक्टर का उत्पादन करने वाली कम्पनियां विकसित होती गयी है।

1950-51 में सड़क यातायात कुल यातायात का 11 प्रतिशत माल ढोता था जो वर्तमान में बढ़कर 60 प्रतिशत हो गया। इसी प्रकार 2 यात्री यातायात में 1950-51 में यह 20 प्रतिशत यात्री ले जाता था जो वर्तमान में बढ़कर 80 प्रतिशत हो गया।

7.6.3 भारत में रेल परिवहन

पहली रेल सेवा भारत में 1853 में बम्बई से थाना तक 21 मील मार्ग का सफर तय किया था। 1 अप्रैल 1951 के प्रथम पंचवर्षीय योजना से अब तक रेल के क्षेत्र में भी काफी विकास हो गया है। तब से अब तक यात्रियों की संख्या 128 करोड़ प्रतिवर्ष से 572 करोड़ प्रतिवर्ष के ऊपर चली गयी। मालगाड़ी द्वारा ढोये जाने वाले की मात्रा 9.3 करोड़ टन से 74.5 करोड़ टन हो गयी है। लगभग 58145 करोड़ रूप्ये से अधिक की पूँजी की मात्रा भी लगायी जा चुकी है। विद्युत रेलमार्ग 388 कि.मी. से बढ़कर 17,786 कि0मी0 हो गया।

रेलवे विकास के संदर्भ में कुछ महत्वपूर्ण तथ्य

(1) विद्युतीकरण- वर्तमान में विद्युत रेलमार्ग की दृष्टि से, भारत का एशिया में दूसरा व विश्व में ग्यारहवां स्थान है। कुछ ही वर्षों में देश के प्रमुख सात मुख्य मार्गों पर विद्युतीकरण का कार्य भी पूरा हो जायेगा।

(2) इंजन- वर्तमान में रेलवे के पास 44 भाप इंजन, 4793 डीजल इंजन व 3188 बिजली के इंजन है

(3) संदेशवाहन व्यवस्था- रेलवे ने Super high frequency & Channelling System पर आधारित सूक्ष्म तरंग पद्धति (Microwave System) लागू की है जो वर्तमान में 16,000 कि.मी. रेलमार्ग पर अपनायी जा रही है।

(4) सिग्नल व्यवस्था में सुधार- पहले के यन्त्रीकृत सिग्नल की अपेक्षा अब बिजली सिग्नलो के प्रयोग में लाया जा रहा है जो अधिक विश्वसनीय है।

(5) रेलों की गति में वृद्धि- सुपर एक्सप्रेस राजधानी एक्सप्रेस जैसे सुपरफास्ट एकसप्रेस रेलगाड़ियों के चलाने से रेलों को गति मिल गयी है। अब कई हजार किलोमीटर की यात्रा भी चन्द घण्टों में पूरी की जा सकती है। 20 रेलगाड़ियाँ शताब्दी एक्सप्रेस के नाम से चलायी जा रही है। 16 इण्टरसिटी जन शताब्दी एक्सप्रस 1 जुलाई, 2002 से चलाई गयी है।

(6) रेल निर्माणक इकाईयां- रेल परिवहन के उपकरण, इन्जनों व डिब्बों के बनाने के लिये भारत में निम्न चार प्रमुख कारखाने है जिनकी स्थापना स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात ही हुयी है।

१. चितरंजन लोकोमोटिव वर्क्स, कोलकाता- 1950 में स्थापित इस कारखाने में भाप के इंजन बनाये जाते थे परन्तु अब बिजली व डीजल इन्जन बनने लगे है। वर्तमान में इसकी क्षमता लगभग 170 बिजली इन्जन व 81 डीजल इन्जन वार्षिक है।

२. इण्टीग्रल कोच फैक्टरी, पैराम्बूर (तमिलनाडु)- डब्बा बनाने से लेकर सजाने तक का काम भी इस कारखाने के सुपुर्त है। पहला डिब्बा 1955 में तथा पहला सुसज्जित डिब्बा 1975 में बनकर निकला। वर्तमान में इसकी क्षमता 1600 डिब्बे प्रतिवर्ष है।

३. इण्टीग्रल कोच फैक्ट्री कपूरथला

४. डीजल लोकोमोटिव वर्क्स, वाराणसी

(7) माल परिवहन व्यवस्था में उन्नति- इसका भी विकास क्रमशः होता गया। शीघ्रता से माल पहुँचाने के लिये प्रमुख शहरों के मध्य सीधी **'सुपर एक्सप्रेस मालगाड़ियों'** चलायी जा रही है। 1969 में **'फ्रेट फारवर्ड स्कीम'** लागू की गयी है जिसके अन्तर्गत ये छोटे-छोटे सामान को एकत्रित कर रेलवे को वैगन माल के रूप में देता है।

रेल परिवहन का आर्थिक महत्व

(1) कृषि का विकास- रेल परिवहन के विकास से अब किसान अपनी आवश्यकता के फसल के अतिरिक्त उन उत्पादों का भी उपज करता है जिसका वह निर्यात कर सकता है। जैसे- चाय, तम्बाकू, कपास आदि।

(2) नाशवान वस्तुओं की ब्रिकी- ऐसी वस्तुओं जैसे फल, तरकारी दूध, मक्खन, घी, गन्ना, मछलियाँ आदि जो नाशवान प्रकृति की होती है, रेल द्वारा एक स्थान से दूसरे स्थान भेजना आसान हो गया है जिससे इनके उत्पादन एवं बिक्री में भी वृद्धि हुयी है।

(3) अकालों पर नियन्त्रण- रेल विकास ने इस प्राकृतिक आपदा पर नियन्त्रण का कार्य किया है। रेलों द्वारा खाद्यान्न एक स्थान से दूसरे स्थान पर अति शीघ्र भेजना सम्भव हो गया है।

(4) मूल्यों में स्थिरता- मूल्यों की विषमता को रेल का विकास ने बहुत हद तक सीमित कर दिया है। आसानी से सामान एक स्थान से दूसरे स्थान पर भेजने से मूल्यों की अस्थिरता पर नियन्त्रण लग गया है।

(5) उद्योगों का विकास- आज रेले कोयला, लोह-इस्पात, सीमेण्ट, जूट, सूती वस्त्र आदि उद्योगों के विकास में योगदान दे रही। कच्चे माल को एक स्थान से दूसरे स्थान तक पहुँचाने से उद्योगों के विकास में सहायता मिली है।

(6) नगरों में वृद्धि- रेलों की स्थापना एवं इनके विकास से सैकड़ों गाँव व कस्बे नगरों में परिणत हो गये है, समुद्री बन्दरगाहों का विकास हुआ है। एक ज्वलन्त उदाहरण के रूप में कानपुर का नाम लिया जा सकता है जो एक छोटा सा कस्बा था परन्तु जिसकी आबादी 27.17 लाख तक पहुँच गयी। यह रेलों के विकास के कारण ही सम्भव हो सका।

(7) डाक सेवा- डाक सेवा का विकास रेल विकास पर निर्भर करता है। संदेशवाहन एवं संचार व्यवस्था में वृद्धि भी रेलों द्वारा सम्भव हो सका है।

(8) निर्यात संवर्द्धन- रेलों के द्वारा निर्यात होने वाली वस्तुएँ बन्दरगाहों के स्टेशनों तक आसानी से पहुँच जाता है।

(9) पर्यटन को प्रोत्साहन- रेलवे द्वारा सरकुलर टुअर टिकट बेचे जाते है जो अधिकाधिक 90 माह की अवधि के होते है। इससे रमणीक, धार्मिक, ऐतिहासिक व सांस्कृतिक स्थानों का भी विकास हुआ है।

(10) श्रम की गतिशीलता- रेलों के विकास से श्रमों की गतिशीलता भी प्रभावित हुयी है जिससे उनके जीवन पर अच्छा प्रभाव पड़ा है।

7.6.4. जल परिवहन

जल परिवहन अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार का उस समय एक महत्वपूर्ण साधन था जब रेलों का जन्म भी नहीं हुआ था। उस समय वायु परिवहन का कहीं नाम भी न था। और सड़क परिवहन अपनी प्रारम्भिक अवस्था में था।

जल परिवहन का महत्व

(1) परिवहन का सस्ता साधन- यह सस्ता साधन इस कारज है क्योंकि न इसमें सड़क बनानी पड़ती है न ही रेल की पटरी और न ही इन्हें कार्यशील बनाने के लिये कोई व्यय करना पड़ता है। न पहियों की आवश्यकता होती है।

(2) कम पूँजीगत व्यय- रेल मार्ग और सड़क मार्ग बनाने में लाखों का खर्च आता है जबकि जल परिवहन के लिये कोई मार्ग बनाने की आवश्यकता नहीं होती।

(3) अधिक क्षमता- जलयान की भार खीचने की क्षमता रेल या सड़क परिवहन साधनों से अधिक होती है।

(4) अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार की जननी- अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार के विकास का सर्वप्रथम माध्यम जल परिवहन ही बना। क्योंकि अन्य साधनों से लागत तुलनात्मक रूप से अधिक आती है।

(5) राष्ट्रीय सुरक्षा- शत्रु के देश द्वारा पुलों, रेलमार्गों व सड़क मार्गों को नष्ट किया जा सकता है लेकिन जल मार्गों को नष्ट नहीं किया जा सकता।

(6) एकमात्र साधन- पहाड़ी, ढालों, घने वनों आदि स्थानों पर जल परिवहन के अतिरिक्त कोई और साधन नहीं है जिससे माल एवं यात्री एक स्थान से दूसरे स्थान तक जा सके।

(7) थोक ढुलाई के लिये उपयुक्त- सस्ता एवं सुविधाजनक होने के कारण यह थोक ढुलाई के लिये अति उपयुक्त है। इससे समय की बचत भी हो जाती है।

(8) तटीय व्यापार की दृष्टि से महत्वपूर्ण- तटीय जल परिवहन का विकास इस बात से पुष्ट होता है कि भारत का समुद्रतटीय क्षेत्र काफी विशाल है।

(9) आर्थिक विकास- देश से माल बाहर भेजा जा सकता है जिससे देश का आर्थिक विकास सम्भव हो जाता है।

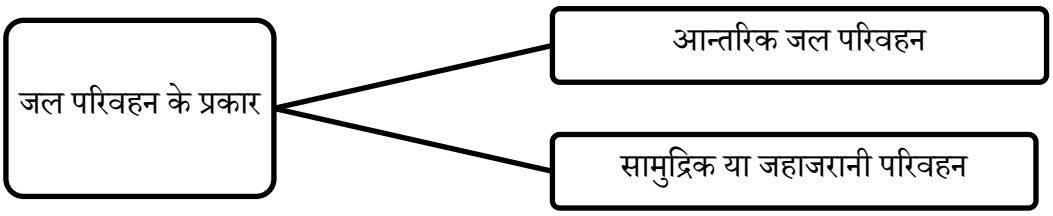

आन्तरिक जल परिवहन का विकास स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात सम्भव हो सका है। वर्तमान समय में भारत 3700 कि0मी0 के लगभग आन्तरिक जल मार्ग का उपयोग करता है। यह सस्ता साधन होने के साथ-साथ कम शक्ति का प्रयोग भी करता है। भारी माल को कम व्यय में एक स्थान से दूसरे स्थान तक पहुँचाया जा सकता है। भारी माल के साथ सामग्री भी आसानी से पहुँचाया जा सकता है। बाढ़ जैसी आपदा में यह कारगर बना रहता है। भारतीय नदियाँ चौड़ी होने के कारण बड़ी-बड़ी नावें चलायी जा सकती है। यहाँ की भूमि समतल होने के कारण नदियाँ भी समतल है।

जहाजरानी परिवहन देश की अर्थव्यवस्था को सुदृढ़ बनाने में प्रमुख भूमिका निभाता है। देश का लगभग 90 प्रतिशत व्यापार समुद्री मार्ग से होता है। जहाँ पहली पंचवर्षीय योजना में देश की जहाजरानी की क्षमता 3.7 लाख GRT थी वहीं आज वर्तमान में यह 82.9 लाख हो गयी। जहाजों की संख्या भी 94 से बढ़कर 707 हो गयी।

भारत के तटवर्ती इलाकों में 12 बन्दरगाह तथा 200 छोटे बन्दरगाह है। बड़े वाले केन्द्र सरकार के और छोटे राज्य सरकार के अंतर्गत आते है।

7.6.5. वायु परिवहन

भारत के लिये वायु परिवहन आर्थिक, सामाजिक, राजनीतिक व सभी दृष्टिकोणें से महत्वपूर्ण एवं लाभकारी है। आधुनिक युग नवीनतम एवं क्रान्तिकारी भेंट है जिससे भौगोलिक कठिन परिस्थितियों में भी कई हजारों कि.मी. का सफर कुछ ही घण्टों में तय किया जा सकता है। वायु परिवहन का आर्थिक विकास से घनिष्ठ सम्बन्ध है।

(1) भौगौलिक बाधाओं से मुक्ति- चाहे समुद्रा हो या रेगिस्तान, बर्फीला देश हो या नदी नाले, आज भी हजारों फुट की ऊँचाई पर भारतीय सेना अपने देश के प्रहरी का कार्य कर रही है।

(2) कृषि के विकास में सहायक- वायु परिवहन के माध्यम से खेतों में कीटनाशक दवाइयों को छिड़ककर टिड्डियों व अन्य कीटाणुओं का नाश करता है। 1954 से भारत इस सेवा का उपयोग कर रहा है।

(3) सुरक्षा एवं शान्ति- देश की सुरक्षा के लिये वायु परिवहन एक अचूक अस्त्र की तरह है। इससे विदेशी आक्रमण रोकने के साथ-साथ दुश्मन देश को सबक भी सिखाया जा सकता है। भारत पाक युद्ध में इस परिवहन ने अपना कौशल दिखा दिया है।

(4) वाणिज्य का विस्तार- बहुत ही अल्प समय में मूल्यवान नाशवान था कलात्मक वस्तुओं को देश से विदेशों में भेजना आसान हो गया है। इससे व्यावसायिक दृष्टि से लाभ प्राप्त होता है।

(5) स्वास्थ्य में सुधार- विमान परिवहन की सहायता से दवाइयों का छिड़काव व जनसाधारण के स्वास्थ्य में सुधार लाया जा सकता है।

(6) वनों की रक्षा- जब कभी वनों में भयंकर आग लग जाय, जिसे किसी भी माध्यम से रोकना कठिन है, ऐसे में वायु परिवहन से बचाव सम्भव हो जाता है।

(7) पर्यटन उद्योग को प्रोत्साहन- इससे सरकार को रूप्ये में विदेशी मुद्रा प्राप्त होती है। अतः वायु परिवहन पर्यटन के माध्यम से भी आर्थिक विकास करने में सहायक है।

फेयर और विलियम्स के अनुसार, ***"मनुष्य को उपलब्ध विभिन्न साधनों में वायु परिवहन सबसे नवीनतम सबसे अधिक विकासशील, सबसे अधिक चुनौती देने वाला और हमारे आर्थिक एवं सांस्कृतिक जीवन में सबसे अधिक क्रान्ति उत्पन्न करने वाला है।"***

भारत में वायु परिवहन का विकास

भारत में प्रयोगात्मक उड़ाने 1919 में प्रारम्भ हुयी थी, लेकिन आधुनिक विमान परिवहन का वास्तविक शुभारम्भ 1927 में हुआ जबकि भारत सरकार ने नागरिक उड्डयन की स्थापना की। 1929 में ब्रिटेन, हॉलैण्ड एवं

फ्रांस में प्रथम बार साम्राज्य वायुसेवा (Empire Air Services) के वायुयान भारत में उतरे। इसी समय इम्पीरियल एअरवेज नामक ब्रिटिश कम्पनी ने कराची व दिल्ली के बीच नियमित हवाई सेवा प्रारम्भ की।

1932- स्वदेशी सेवा, कराची व मद्रास के बीच टाटा बन्धुओं द्वारा शुरू की गयी।

1933- इण्डियन नेशनल ऐअरवेज लिमिटेड नामक एक भारतीय संस्था बनी जिसने करांची व लाहौर तक विमान सेवा प्रारम्भ की।

1935- टाटा ने बम्बई-त्रिवेन्द्रम की हवाई सेवा शुरू की।

1936- एअर सर्विसेज ऑफ इण्डिया लिमिटेड नामक एक तीसरी संस्था भारत में बनी जो 1939 में बन्द हो गयी। द्वितीय युद्ध के पश्चात 1946 में कम्पनियों को अपनी उड़ान भारत में करने के लिये अनुज्ञापन (Licence) लेना अनिवार्य हो गया।

वायु परिवहन लाइसेंस बोर्ड की स्थापना की गयी।

1947- वायुमान सेवा की 27 कम्पनियाँ थी।

1948- विमान चालक प्रशिक्षण केन्द्र इलाहाबाद में स्थापित किया गया।

स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात वायु सेवा के राष्ट्रीकरण पर विचार किया जाने लगा। परिणामस्वरूप् 1953 में इसका राष्ट्रीयकरण कर दिया गया। दो निगमों की स्थापना हुयी-

भारतीय विमान निगम (Indian Airlines Corporation) अन्तर्राष्ट्रीय भारतीय विमान निगम (Air India Intellectual Corporation)

26 जनवरी, 1981 से एक तीसरी सेवा वायुदूत के नाम से प्रारम्भ की गयी।

वर्तमान में वायु सेवा की स्थिति

आज इस क्षेत्र में सार्वजनिक एवं निजी कम्पनियाँ दोनों ही हैं।

(1) सार्वजनिक क्षेत्र की कम्पनियाँ- इण्डियन एअरलाइन्स, एअर इण्डिया के विलय से 'दि नेशनल एवियशन कम्पनी ऑफ इण्डिया लिमिटेड' बनी। मुख्यालय दिल्ली तथा निगमित कार्यालय मुम्बई में है। एअर इण्डिया का शुभंकर 'महाराजा' ही इस विलय कम्पनी का शुभंकर है। इस क्षेत्र की अन्य कम्पनियाँ है- एअर इण्डिया चार्टर्स लिमिटेड (AICL) तथा एलायंस एअर।

(2) निजी क्षेत्र की कम्पनियाँ- जेट एयरवेज, सहारा एयर लाइंस, कम एवियशन, स्पाइसजेट, गो एयरवेज, किंग फिशर एयर लाइंस, पैरामाउण्ड एयरवेज तथा इण्टर ग्लोब एवियेशन (इण्डिगों) आदि। 60 प्रतिशत से अधिक ट्रेफिक अब इनके हाथ में है।

उड़ान क्लब एवं ग्लाइडिंग क्लब- इनकी संख्या 25 है जो अनियमित विमान सेवाएं उपलब्ध कराती है।

भारतीय विमान पतन प्राधिकरण (AAI) - इसका गठन 1 अप्रैल, 1995 को राष्ट्रीय विमान पत्तन प्राधिकरण (ANI) तथा अन्तर्राष्ट्रीय विमान पत्तन प्राधिकरण (IAA) के विलय द्वारा हुआ। हवाई अड्डों के रखरखाव एवं संचालन की जिम्मेदारी इस प्राधिकरण की ही है।

पंचहंस हेलीकाप्टर्स लिमिटेड- देश के दुर्गम क्षेत्रों तथा ओ. एन. जी. सी. की सागर तटीय सेवाओं, राज्य सरकारों की सेवाओं तथा विशेष रूप से उत्तर पूर्व क्षेत्र में नियमित विमान सेवाएं उपलब्ध कराता है।

हवाई अड्डे- देश में 127 हवाई अड्डे है। 15 अन्तर्राष्ट्रीय हवाई अड्डे है।

विमान निर्माण- 1940 में भारत में बालचन्द हरिचन्द ने हिन्दुस्तान एअरक्राफ्ट लिमिटेड के नाम से एक विमान निर्माण करने का कारखाने खोला जिसे बाद में भारत सरकार व कर्नाटक सरकार ने मिलकर ले लिया। अब हवाई जहाज की यही एक कम्पनी है जो वायु सेना एवं नागरिक उड्डयन विभाग के लिये वायुयानों का निर्माण कर रही है।

वायु परिवहन की समस्याएँ एवं सुझाव

अधिक संचालन व्यय एवं पूर्णक्षमता का प्रयोग न होने के कारण वायु परिवहन का किराया अधिक होता है। कर्मचारियों एवं प्रबन्धकों के बीच समय-समय पर संघर्ष होने से हड़ताल होती है। नये विमान विदेशों से क्रय करने पर विदेशी मुद्रा कोष पर दबाव पड़ता है। भारत में अन्वेषण एवं प्रशिक्षण हेतु सुविधाएँ भी सीमित है।

सुझाव के रूप में वायुयान अपनी पूरी क्षमता का प्रयोग करे और मितव्ययिता को अपनाये दुर्घटनाएं कम करने का प्रयास करे एवं अन्वेषण और प्रशिक्षण पर अधिक ध्यान दे। साथ ही साथ वायुयान निर्माण कार्य में तेजी भी लाये।

7.6.6. संचार

भारत में पहली संचार सेवा 1837 में प्रारम्भ हुयी। 1854 में यहाँ 700 डाकखाने थे। इस समय 1,55035 डाकखाने है।

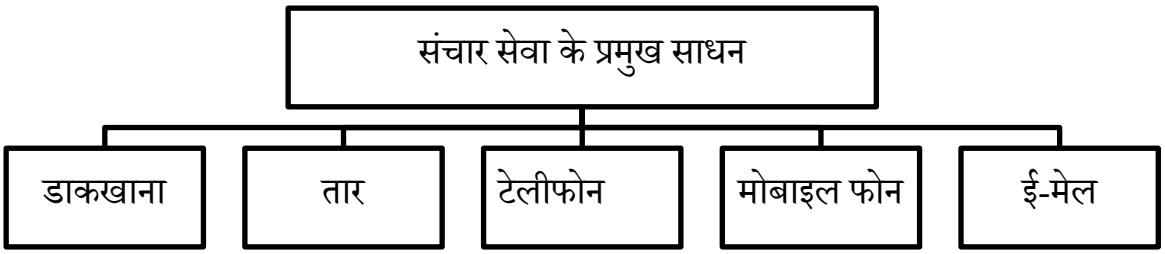

(1) डाकखाना

आम जनता के लिये डाकखाना सेवा एक आधारशिला है। पोस्टकार्ड, लिफाफा, अर्न्तदेशीय रजिस्टर्ड पत्र आदि इसके माध्यम है। प्रतिवर्ष डाकखाने से 1578 करोड़ पत्र एक स्थान से दूसरे स्थान पर पहुँचाता है। इसके अलावा स्पीड पोस्ट, रजिस्टर्ड डाक भी होते है।

डाकखाना पत्र पत्रिकाओं आदि को हवाई जहाज, रेल, व रोडवेज की बसों के माध्यम से एक स्थान से दूसरे स्थान तक पहुँचाया जाता है।

सुविधा व तुरन्त कार्यवाही के लिये बड़े शहरों के लिये विशेष सुविधा देने के उद्देश्य से डाक को निम्न प्रकार में बांटा गया है-

(1) राजधानी चैनल

(2) मेट्रो चैनल

(3) ग्रीन चैनल

(4) व्यापारिक चैनल

(5) बल्क मेल चैनल

(6) पीरिओडीकल चैनल

डाकखाने के माध्यम से अपने पत्र व छोटे-छोटे माल व नमूने के पैकिट भी शीघ्रता से भेजे जा सकते है जिसके लिये डाकखाना सामान्य दर से कहीं अधिक दर वसूल करता है लेकिन साथ ही यह वायदा करता है कि पत्र मात्र 48 घण्टे या निर्धारित समय सीमा मे पहुँचा दिया जायेगा जिसके लिये निम्न सेवाएं प्रदान की रखी है।

1. स्पीड पोस्ट
2. एक्सप्रेस सेवा
3. ई-पोस्ट एवं ई-बिल पोस्ट

2. तार

भारतीय तार विभाग विश्व की सबसे पुरानी सरकारी सार्वजनिक उपयोगिता है। भारत में तारघरों की संख्या जो 1951 में 8500 थी बढ़कर 30,000 हो गयी है। फोनोग्राम सेवा, टेलेक्स सेवा, प्रत्यक्ष ट्रंक डायर्लिंग, जैसे सुविधाएं अब सामान्य जनता को उपलब्ध है।

3. दूरसंचार

वैश्विक प्रतिस्पर्द्धा के लिये दूरसंचार अब एक महत्वपूर्ण आदान है और इससे ही भारत अन्तर्राष्ट्रीय बाजारों में सफलता प्राप्त कर सकता है। इसके द्वारा देश के कोने में संचार के लाभ पहुंचाएं जा सकते है और यह प्रत्यक्ष विदेशी निवेश को आकर्षित करने में भी लाभदायक हो सकती है।

4. टेली संचार नीति

टेली संचार आधार संरचना को उपलब्ध कराने और उसके प्रबन्ध के बारे में काफी अस्पष्टता थी। टेली संचार सेवा (Dept.Telecom Services) और टेलीसंचार क्रियाओं का विभाग दो सेवाएं उपलब्ध कराने वाले विभाग थे। MTNL (Mahanagar Telephone Negain Limited) और भारत संचार निगम लिमिटेड (Bharat Sanchar Negain ltd.BSNL) जो दिल्ली और मुम्बई में बुनियादी टेलीफोन सेवाएं उपलब्ध कराती थी ;MTNL और शेष देश में BSNL यह सेवा उपलब्ध कराती हैं।

BSNL - दूर संचार क्षेत्र के सेवा प्रदान करने वाले दो विभाग का निगमीकरण कर दिया गया है।

5. फैक्स-

यह एक प्रकार से लिखित सन्देश प्राप्त करने या भेजने का साधन है। इसके लिये एक फैक्स मशीन की आवश्यकता होती है। जिसे टेलीफोन नम्बर से जोड़ देते है। यह मशीन सन्देश को कागज पर प्राप्त कर छाप देती है। साथ ही भेजने वाले का टेलीफोन नम्बर, नाम, पता व समय भी लिख देती है। इसमें टेलीफोन का व्यय लिया जाता है।

6. ई-मेल-

कम्प्यूटर युग में ई-मेल के द्वारा संदेश को विश्व में कहीं भी भेजा जा सकता है। इसके लिये इन्टरनेट की सुविधा होनी चाहिये। संचार का यह साधन वर्तमान में अति लोकप्रिय साधन है।

7. इण्टरनेट-

इण्टरनेशनल नेटवर्क का संक्षिप्त नाम इण्टरनेट देश विदेश के लोग के बीच संपर्क स्थापित कर सकता है। विश्व में होने वाली कोई भी घटना को देखा जा सकता है। इण्टरनेट द्वारा विश्वभर के कम्प्यूटर सूचना केन्द्रों से प्राप्त सूचनाओं व आँकड़ों को अपनी भाषा में बड़ी सरलता से प्राप्त किया जा सकता है। इस विधि को इण्टरनेट प्रोटोकोल कहा जाता है।

भारत में इण्टरनेट का प्रवेश वर्ष 1987-88 में हुआ था। इण्टरनेट का उपयोग करने वालों की संख्या की दृष्टि से भारत का विश्व में पाँचवां स्थान है।

7.6.7. बैंक, बीमा एवं वित्त

आधारभूत संरचना के विकास के लिये बैंकों, बीमा कम्पनियों व वित्त संस्थाओं के विकास की भी आवश्यकता होती है। पहले भारत में बैंकों का कार्य सेठ, महाजन आदि के हाथ में था किन्तु ईस्ट इंडिया कम्पनी के आने पर 1809 में Bank of Bengal स्थापित की गयी। तत्पश्चात कई बैंक स्थापित की गयी जो कारखानों एवं व्यावसायों को ऋण देती थी।

बीमा जोखिमों के दुष्परिणामों से सुरक्षा प्रदान करने की एक व्यवस्था है। भारत में इसकी शुरूआत 1710 में कोलकाता में **'सन् इन्शोरेन्स ऑफिस'** के नाम से हुयी थी। यह कम्पनी अंग्रेजों की थी। भारतीयों ने अपना प्रयास में 1850 में किया।

1885 तक भारत में लगभग 50 एजेंसी कार्यालय स्थापित हो चुके थे। बाद में भारत में 1905 में स्वदेशी आन्दोलन के फलस्वरूप अनेक भारतीय कम्पनियाँ स्थापित हुयी। 1938 में बीमा अधिनियम पारित किया गया। 1971 में इनका राष्ट्रीकरण कर दिया गया। 1972 में बना दिया गया। इस निगम की चार सहायक कम्पनियां है-

(1) नेशनल इन्शोरेन्स कम्पनी लि.

(2) न्यू इण्डिया कम्पनी लिमिटेड

(3) ओरिएण्टल इन्शोरेन्स कम्पनी लिमिटेड

(4) यूनाइटेड इंडिया इन्शोरेन्स कम्पनी लि.

अब वर्तमान में नई आर्थिक नीति के तहत निजी कम्पनियों ने भी इस क्षेत्र में प्रवेश कर लिया है। अब तक 13 निजी कम्पनियो को अपना साधारण बीमा करने की अनुमति दे दी गयी है।

7.7 आधार संरचना में निजी निवेश: दृष्टि और भविष्य

भारत सरकार ने यह बात स्वीकार कर ली है कि आधार संरचना को सार्वजनिक क्षेत्र का एकाधिकार बनाने की जरूरत नहीं। आधार संरचना की सुविधा को उपलब्ध कराने का दायित्व सरकार पर था क्योंकि भारी पूँजी निवेश लम्बी परिपाक अवधि, उच्च जोखिम और निवेश पर निम्न प्रत्याय दर सरकार के माध्यम से सम्भव है। किन्तु सरकार के स्वामित्वार्धान आधारसंरचना अत्यन्त अकुशल और भ्रष्ट साबित हुयी।

आधार संरचना की माँग इनके संभरण से कहीं अधिक हैं। इसी कारण आधारसंरचना की क्षमता में दोष और अकुशलताएं व्यापक रूप धारण कर गयी है। सड़कों पर भीड़ पेयजल की असुविधा, पावर की विफलता

रोजमर्रा का अनुभव बन गयी है। आधार संरचना के अभाव का आने वाले वर्षों में देश के अधिक विकास पर प्रभाव पड़ना निश्चित है।

1991 के पश्चात सरकार की रणनीति कुशल आधोसंरचना के विकास को उच्च प्राथमिकता देती है और इसके लिये एक अनुकूल वातावरण तैयार करना चाहती है। इससे निजी क्षेत्रों का सहयोग अधोसंरचना विकास में बढ़ सका।

1997 में सरकार ने भारतीय कम्पनी अधिनियम के आधीन आधारसंरचना विकास वित्त कम्पनी की स्थापना की। ऐसी कम्पनियाँ जो आधार संरचना सुविधाओं के विकास एवं परिचालन का कार्य करती है, को कर अवकाश प्रदान किया गया। संलग्न कम्पनियों को आयकर में छूट भी प्रदान की गयी। सरकार ने आधार संरचना कम्पनियों को हिस्सों एवं ऋणपत्रों को निवेश पर कर कटौती की सीमाएं बढ़ा दी है।

आधार संरचना में निजी निवेश को प्रोत्साहित करने हेतु देशीय पूँजी बाजारों का विकास अनिवार्य हैं। विदेशी निवेश को आकर्षित करने के लिये विदेशी हिस्से पूँजी के सहयोग के लिये 74 प्रतिशत तक स्वचालित स्वीकृति देने की इजाज़त दे दी है।

आधार संरचना के वाणिज्यीकरण पर विशेषज्ञ दल ने प्रत्येक आधार संरचना क्षेत्र के लिये स्टॉक स्क्सचेंज बोर्ड ऑफ इंडिया की भाँति एक स्वायत्त विनियामक संस्था की स्थापना का सुझाव दिया है।

योजना आयोग ने खुले रूप में यह बात स्वीकार कर ली है कि भारत के आर्थिक विकास में आधारसंरचना का अभाव एक मुख्य सीमा बंधन है। औद्योगिक विकास के लिये पावर क्षेत्र अत्यन्त महत्वपूर्ण है और इसकी वास्तविक समस्या वितरण प्रणाली है जो राज्य सरकारों के हाथों में है। सार्वजनिक निजी साझेदारी आधार संरचना के निर्माण और कार्य प्रचालन का बेहतर ढ़ंग माना जाता है। वे निजी पूँजी को सार्वजनिक आधार संरचना और सेवाओं को प्रयोक्ताओं की उपलब्धि में कुशलता प्रोन्नत करने में महत्वपूर्ण लाभ देते है।

7.8 अभ्यास प्रश्न

बहुविकल्पीय प्रश्न

(1) ICICI की स्थापना कब हुयी?

क. 1990 ख. 1995

ग. 1996 घ. 2000

(2) IDBI एवं EXIM बैंक की स्थापना कब हुयी?

क. 1962 - 1980 ख. 1964 - 1982

ग. 1966 - 1984 घ. 1968 - 1986

(3) ऊर्जा आयोग की स्थापनी कब हुयी?

क. 1981 ख. 1982

ग. 1983 घ. 1984

(4) राजधानी एक्सप्रेस कब से चलनी शुरू हुई?

क. जनवरी 1969 ख. फरवरी 1969

ग. मार्च 1969 घ. दिसम्बर 1969

(5) 16 इण्टरसिटी जन शताब्दी एक्सप्रेस किस वर्ष से चलाई गयी है।?

क. 1 जुलाई, 2000 ख. 1 जुलाई, 2002

ग. 1 जुलाई, 2006 घ. 1 जुलाई, 2005

7.9 सारांश

कृषि एवं औद्योगिक उत्पादन को बढ़ाने के लिये आधार संरचना का विस्तार करना आवश्यक है। औद्योगिक एवं कृषि क्रान्ति के कारण परिवहन एवं संचार क्रान्ति फलीभूत हुयी। जहाँ ऊर्जा का स्त्रोत पहले कोयला, बाद में तेल और विद्युत हुआ वहीं वित्त जुटाने के लिये बैंकिंग, बीमा एवं अन्य वित्त संस्थानों का भी विकास होता गया।

आधारभूत संरचना की उपलब्धता मात्र शहरों एवं नगरों में ही उपलब्ध है और गाँवों में इनका विकास तुलनात्मक दृष्टि से नहीं हो सका। इसी कारण जनसंख्या का पलायन गाँवों से शहरों की ओर हो रहा है और परिणामस्वरूप शहरों की जनसंख्या बढ़ती जा रहीं है। प्रत्येक देश अपनी आर्थिक योजनाएं बनाते समय शक्ति संसाधनों के विकास पर विशेष जोर देता है। कोयला को ईंधन का बादशाह माना जाता है। किसी भी देश का आर्थिक विकास विद्युत शक्ति के बिना सम्भव नहीं है। विकसित देशों की तीव्र विकास के पीछे विद्युत का एक अत्यन्त महत्वपूर्ण योगदान है।खनिज तेल एक अत्यंत उपयोगी संसाधन है। किसी भी देश का औद्योगिक विकास, प्रतिरक्षा, व्यवस्था व परिवहन साधनों की उन्नति इस पर निर्भर होती है। परमाणु शक्ति के विकास की परम आवश्यकता है क्योंकि देश के आर्थिक विकास के लिये पर्याप्त मात्रा में सस्ती शक्ति की जरूरत होती है।

परिवहन से कृषि एवं औद्योगिक क्षेत्र में वृद्धि, विविधकरण एवं विशिष्टीकरण को बढ़ावा मिलता है। इससे व्यापार का ही विस्तार नहीं होता बल्कि मूल्यों में भी स्थिरता आती है। देश की सुरक्षा एवं रक्षा को बढ़ावा मिलता है एवं सरकारी आय भी बढ़ती है। डाकखाना पत्र पत्रिकाओं आदि को हवाई जहाज, रेल, व रोडवेज की बसों के माध्यम से एक स्थान से दूसरे स्थान तक पहुँचाया जाता है। इसके अलावा तार, दूरसंचार, टेली संचार नीति, फैक्स, ई-मेल, इण्टरनेट आदि भी संचार के माध्यम है। आधारभूत संरचना के विकास के लिये बैंकों, बीमा कम्पनियों व वित्त संस्थाओं के विकास की भी आवश्यकता होती है।योजना आयोग ने खुले रूप में यह बात स्वीकार कर ली है कि भारत के आर्थिक विकास में आधारसंरचना का अभाव एक मुख्य सीमा बंधन है।

7.10 शब्दावली

- **परम्परागत साधन** - Traditional Source
- **निगम** - Corporation
- **विद्युतीकरण** - Electrification
- **खनिज तेल** - Mineral Oil
- **आवागमन** - Movement

7.11 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

बहुविकल्पीय प्रश्नों के उत्तर

1. ख. 1995, 2. ख. 1964 - 1982,
3. क. 1981 4. ग. मार्च 1969, 5. ख. 20 वां

7.12 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

- डॉ. जे.पी. मिश्रा- *संवृद्धि एवं विकास का अर्थशास्त्र* साहित्य भवन पब्लिकेशन्स, आगरा 2012
- दत्त एवं सुन्दरम- *भारतीय अर्थव्यवस्था*, एस. चंद पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली, 2012
- एल.एन. कोली- *भारतीय अर्थव्यवस्था* लक्ष्मी नारायन अग्रवाल, आगरा 2007
- कुमार सर्वेश- *भारतीय अर्थव्यवस्था*, सार्थक प्रकाशन,दिल्ली, 2011
- डा. जे. सी. पन्त एवं जे. पी. मिश्रा - *अर्थशास्त्र*, साहित्य भवन पब्लिकेशन, आगरा
- डा. टी.टी. सेठी - *समष्टि अर्थशास्त्र*

7.13 सहायक/उपयोग पाठ्य सामग्री

- Arvind Panagariya: The Emerging Giant
- Bimal Jalan : India's Economic Policy : Preparing for the Twenty-First Century *Penguin Books India* , 2000
- Waquar Ahmed, Amitabh Kundu, Richard Peet: India’s New Economic Policy: *Taylor &Francis* US, 2010
- Prem Sagar Gupta: Foreign capital in India, People's Pub. House, 1952
- R. K. Uppal: Economic Reforms in India: A Sectoral Analysis
- Hayami, Yujiro, Godo, Yoshihisu, (2004), Development Economics, OxfordUniversity Press India
- Singh, S.P. (2010) Economics of Development & Planing theory & practice, S &Chand Publishing House
- Dhingra, I C., (2009), Development Economics, Sultan Chand & Sons
- Mishra, S.K., and Puri, V.K., (2007), Economics of Development & Planing theory & practice, Himalaya

7.14 निबन्धात्मक प्रश्न

1. अधोसंरचना से क्या अर्थ है? इसके विकास के बारे में बताइये?
2. भारत के परिवहन संसाधनों की व्याख्या कीजिये?
3. निम्न पर टिप्पणी कीजिये

   क. संचार संसाधन ख. वायु परिवहन संसाधन

इकाई 8- पर्यावरण, पारिस्थितिकी एवं आर्थिक विकास

(Environment, Ecology and Economic Development)

8.1 प्रस्तावना

8.2 उद्देश्य

8.3 पर्यावरण, पारिस्थितिकी एवं पारिस्थितिकी तन्त्र

8.3.1 पर्यावरण का अर्थ

8.3.2 पर्यावरण की प्रमुख विशेषताएँ

8.3.3 पर्यावरण की संरचना तथा प्रकार

8.3.4 पारिस्थितिकी की अवधारणा

8.4 मानव पर्यावरण सम्बन्ध

8.5 पर्यावरण अर्थव्यवस्था सम्बन्ध

8.5.1 आर्थिक विकास के फलस्वरूप पर्यावरणीय समस्याएँ

8.5.2 पर्यावरण-अर्थव्यवस्था सन्तुलन

8.6 पर्यावरण संकट के कारण एवं परिणाम

8.6.1 पर्यावरण संकट के मुख्य कारण

8.7 अभ्यास प्रश्न

8.8 सांराश

8.9 शब्दावली

8.10 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

8.11 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

8.12 उपयोगी / सहायक पाठ्य सामग्री

8.13 निबन्धात्मक प्रश्न

8.1 प्रस्तावना

पिछली इकाईयों में हमने पूँजी का, आधार संरचना का एवं मानव संसाधन का आर्थिक विकास से सम्बंधों का अध्ययन किया। प्रस्तुत इकाई पर्यावरण, पारिस्थितिकी का आर्थिक विकास से घनिष्ठ सम्बन्ध को व्यक्त करती है। इस इकाई में पर्यावरण की प्रमुख विशेषताओं के साथ उसका अर्थव्यवस्था से सम्बन्ध का विस्तृत उल्लेख किया गया है।

पर्यावरण उन दशाओं का योग होता है जो मानव को निश्चित समय में निश्चित स्थानों पर आवृत्त करती है। पर्यावरण में समस्त भौतिक तथा जैविक परिस्थितियां सम्मिलित होती है, अतः पर्यावरण जीवों की क्रियाओं एवं प्रतिक्रियाओं को प्रभावित करने वाली समस्त भौतिक तथा जैविक परिस्थितियों का योग होता है।

मानव अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिये प्रकृति पर निर्भर करते है। इन प्राकृतिक संसाधनों का दोहन करने के फलस्वरूप प्रकृति अपना संतुलन बनाए रखने में स्वयं को असमर्थ अनुभव कर रही है। इस असन्तुलन का प्रत्यक्ष प्रभाव पर्यावरण पर पड़ता है।

8.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन से हम यह जान सकेंगे कि

- ✓ पर्यावरण क्या है
- ✓ इसकी प्रमुख विशेषताएँ क्या है
- ✓ पर्यावरण के विभिन्न तत्व क्या है
- ✓ पर्यावरण का अर्थव्यवस्था से क्या सम्बन्ध है
- ✓ पर्यावरण का आर्थिक विकास पर क्या प्रभाव पड़ता है
- ✓ पर्यावरण अर्थव्यवस्था का क्या संतुलन है?

8.3 पर्यावरण, पारिस्थितिकी एवं पारिस्थितिकी तन्त्र

A.G. Tansley के शब्दों में, ***"प्रभावकारी दशाओं का वह सम्पूर्ण योग जिसमें जीवधारी निवास करते है, पर्यावरण कहलाता है।"***

C.C. Park के शब्दों में, ***"पर्यावरण का अर्थ उन दशाओं के योग से होता है जो मानव को निश्चित समय में निश्चित स्थानों पर आवृत्त करती है।"***

चूँकि पर्यावरण में समस्त भौतिक एवं जैविक परिस्थितियाँ सम्मिलित होती है, अतः पर्यावरण जीवों की क्रियाओं एवं प्रतिक्रियाओं को प्रभावित करने वाली समस्त भौतिक तथा जैविक परिस्थितियों का योग होता है।

8.3.1 पर्यावरण का अर्थ

पर्यावरण दो शब्दो **'परि'** तथा **'आवरण'** से मिलकर बना है जिसमें **परि** शब्द का अर्थ **'चारों ओर से'** तथा **आवरण** शब्द से आशय है **'घेरे या ढके हुये'** से होता है। पर्यावरण से आशय मानव अथवा किसी

जीवधारी के चारों ओर पाये जाने वाले उस आवरण से है जिसमें रहकर वह जीव विशेष रूप से अपना जीवनयापन करता है। दूसरे शब्दों में पर्यावरण से आशय उस समूची भौतिक व जैविक व्यवस्था से है, जिसमें जीवधारी निवास करते है तथा वृद्धि कर अपनी स्वाभाविक प्रवृत्तियों का विकास करते है।

जहाँ तक पर्यावरणविद् का मत है, वे पर्यावरण के स्थान पर Milieu या Habitual शब्द का प्रयोग भी करते है। इसका आशय पारिस्थितिकी (Total set of surroundings) से है। पर्यावरणविद् फिटिंग (Fitting) का कथन है, ***"जीवों के पारिस्थितिकी कारको का योग (The total of Milieu factor of an organism) पर्यावरण है।"***

8.3.2 पर्यावरण की प्रमुख विशेषताएँ

(1) अजैविक या भौतिक व जैविक घटक पर्यावरण के महत्वपूर्ण भाग है तथा पर्यावरण के अजीव व जैव तत्व अपनी विशेषता के अनुसार पर्यावरण का निर्माण करते है।

(2) जीवों के चारों ओर की वस्तुएँ पर्यावरण का निर्माण करती है।

(3) पर्यावरण में जीवों का परस्पर सहवास अनिवार्य लक्षण है।

(4) पर्यावरण सदैव बदलता रहता है। इसका तात्पर्य यह है कि पर्यावरण की प्रकृति गतिशील होती है तथा पर्यावरण की गतिशीलता का प्रमुख कारण सूर्य से प्राप्त ऊर्जा होती है।

(5) पर्यावरण परिवर्तनों के प्रति जीव अनुकूलता उत्पन्न करते रहते है।

(6) पर्यावरण स्व नियंत्रण एवं स्वपोषण पर आधारित है।

(7) पर्यावरण में विशिष्ट भौतिक क्रियाएँ कार्यरत रहती है।

(8) पर्यावरण में पार्थिव एकता विद्यमान रहने के साथ-साथ क्षेत्रीय विविधता भी मिलती है।

(9) पर्यावरण जैव जगत का निवास क्षेत्र होता है।

(10) पर्यावरण में संसाधनों का अपार भण्डार होता है।

हम जीवधारियों तथा वनस्पति के चारों ओर जो आवरण है उसे पर्यावरण कहते है।

सामन्य रूप से पर्यावरण की प्रकृति ;छंजनतमद्ध से समता की जाती है, जिसके अन्तर्गत ग्रहीय पृथवी के भौतिक घटकों (स्थल, वायु, जल, मृदा आदि) को सम्मिलित किया जाता है जो जीवमण्डल में विभिन्न जीवों को आधार प्रस्तुत करते है, उन्हें आश्रय देते है, उनके विकास तथा सम्वर्द्धन हेतु आवश्यक दशाएँ प्रस्तुत करते हैं एवं उन्हें प्रभावित भी करते है।

पर्यावरण एक अविभाज्य समष्टि है तथा भौतिक, जैविक एवं सांस्कृतिक तत्वों वाले पारस्परिक क्रियाशील तंत्रों से इसकी रचना होती है।

8.3.3 पर्यावरण की संरचना तथा प्रकार

पर्यावरण भौतिक एवं जैविक संकल्पना है अतः इसमें पृथ्वी के दोनों अर्थात् अजीवित तथा जीवित संघटकों को सम्मिलित किया जाता है। पर्यावरण की इस आधारभूत संरचना के आधार पर इसको दो प्रमुख प्रकारों में विभक्त किया जाता है-

1. भौतिक पर्यावरण 2. जैविक पर्यावरण

पर्यावरण में प्रमुख चार घटक सम्मिलित होते है-

(1) स्थलमण्डल

(2) जलमण्डल

(3) वायुमण्डल

(4) जैवमण्डल

भौतिक तत्व (स्थान, स्थलरूप, जलीय भाग, जलवायु, मृदा, शैल तथा खनिज) मानव निवास क्षेत्र को परिवर्तनशील विशेषताओं, उसके सुअवसर से तथा प्रतिबन्धक अवस्थितियों को निश्चित करते है। जैविक तत्व (पौधे, जन्तु, सूक्ष्म जीव तथा मानव) जीवमण्डल की रचना करते है।

पर्यावरण के संघटकों ;ब्वउचवदमदजेद्ध को तीन प्रमुख प्रकारों में विभक्त किया जाता है-

(1) भौतिक या अजैविका संघटक

(2) जैविक संघटक

(3) ऊर्जा संघटक

भौतिक संघटक के अन्तर्गत स्थल, वायु तथा जल एवं उनके उपसंघटको को सम्मिलित किया जाता है जबकि जैविक संघटक के अन्तर्गत 3 प्रमुख उपसंघटक आते है- पादप संघटक, मानव समेत जन्तु संघटक तथा सूक्ष्म जीव घटक। ऊर्जा संघटक के अन्तर्गत सौर्यिक ऊर्जा एवं भूतापीय ऊर्जा को सम्मिलित करते है।

उक्त चार घटकों में वायुमण्डल पर्यावरण का सर्वाधिक महत्वपूर्ण एवं गतिशील घटक है, क्योकि वह वायुमण्डल ही है जिसमें निरन्तर मौसमीय परिवर्तन होते रहते है। 78 प्रतिशत नाइट्रोजन तथा 21 प्रतिशत ओक्सीजन के अलावा कार्बन डाई ऑक्साइड, हाइड्रोजन, हीलियम तथा ओजोन आदि वायुमण्डल में अल्प मात्रा में मिलने वाली अन्य गैसे हैं। क्षोभमण्डल, समतामण्डल, मध्यमण्डल तथा बाह्यमण्डल, वायुमण्डल की चार प्रमुख परते हैं।

8.3.4 पारिस्थितिकी की अवधारणा

सर्वप्रथम **अर्नस्ट हेकेल** नामक प्राणी विज्ञान शास्त्री ने 1869 में Ecology शब्द का प्रयोग व्मावसवहपम के रूप में किया। यह दो ग्रीक शब्दों से बना है- Cikas (House) घर और Logos-Study अध्ययन, Ecology को हिन्दी में पारिस्थितिकी कहते है। इसके अंतर्गत जीवधारियों (पौधों एवं जन्तुओं) के वास-स्थानों या उन पर पड़ने वाले वातावरण के प्रभाव का अध्ययन किया जाता है।

पारिस्थितिकी का विस्तृत अध्ययन करने का क्षेत्र जर्मन जीव वैज्ञानिक **अर्नस्ट हेकेल** को ही जाता है। उनके अनुसार ***"वातावरण और जीव समुदाय के पारस्परिक सम्बंधों के अध्ययन को पारिस्थितिकी कहते है।"***

8.4 मानव पर्यावरण सम्बन्ध

जहाँ मानव एक तरफ भौतिक पर्यावरण के जैविक संघटक का एक महत्वपूर्ण घटक है वहीं दूसरी तरफ वह पर्यावरण का एक महत्वपूर्ण कारक भी है। मानव प्राकृतिक पर्यावरण को विभिन्न रूपों में प्रभावित करता है- जीवित या भौतिक मनुष्य, सामाजिक मनुष्य, आर्थिक मनुष्य तथा प्रोद्यौगिक के रूप में। चूँकि मानव अन्य प्राणियों

की तुलना में शारीरिक एवं मानसिक स्तरों तथा प्रौद्योगिक स्तर पर भी सर्वाधिक विकसित प्राणी है, अतः वह प्राकृतिक पर्यावरण को बड़े स्तर पर परिवर्तित करके अपने अनुकूल बनाने की क्षमता रखता है। इस प्रकार देखा जाय तो मानव संस्कृति के विकास के प्रथम चरण में मनुष्य भौतिक पर्यावरण का अन्य कारकों के समान एक कारक मात्र था परन्तु जैसे उसकी संस्कृति के विकास के प्रथम चरण में मनुष्य भौतिक पर्यावरण का अन्य कारकों के समान एक कारक मात्र था परन्तु जैसे-जैसे उसकी संस्कृति के विकास के साथ उसकी बुद्धि, उसका कौशल तथा उसकी प्रौद्योगिकी विकसित होती गयी पर्यावरण के साथ उसकी भूमिका तथा सम्बन्ध में भी उत्तरोत्तर परिवर्तन होता गया।

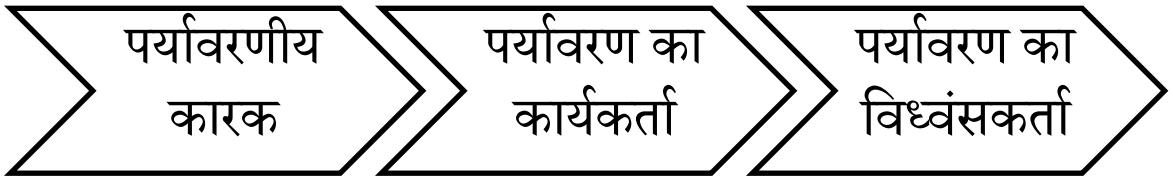

अब मानव प्राकृतिक पर्यावरण का कारक एवं पालक न रहकर उसका विध्वंसक बन गया।

मानव पर्यावरण के मध्य सम्बंध		
काल	मानव स्वरूप	मानव पर्यावरण सम्बंध
आखेट एवं भोजन संग्रहक	जीवीय या भौतिक मनुष्य	कारक
पशुपालन एवं पशुचारण	सामाजिक मनुष्य	रूपान्तरकर्ता
पौधपालन एवं कृषि	आर्थिक मनुष्य	परिवर्तनकर्ता
विज्ञान, प्रौद्योगिकी एवं औद्योगिकीकरण	प्रौद्योगिक मानव	विध्वंसकर्ता

प्राकृतिक पर्यावरण पर मानव के प्रभावों-

प्राकृतिक पर्यावरण पर मानव के प्रभावों को दो प्रमुख वर्गों में विभाजित किया जा सकता है।

(1) प्रत्यक्ष (2) अप्रत्यक्ष

(1) प्रत्यक्ष प्रभाव- भौतिक पर्यावरण को परिवर्तित या रूपान्तरित करने के लिये किसी भी कार्यक्रम से उत्पन्न होने वाले परिणामो से मनुष्य अवगत रहता है। इस तरह के परिवर्तन हैः-

1) **भूमि उपयोग में परिवर्तन-** कृषि में वृद्धि तथा विस्तार, खनिजों का खनन, भूमिगत जल का निष्कासन आदि।
2) **मौसम रूपान्तर कार्यक्रम** - वर्षण को प्रेरित करने के लिये मेघ बीजन, उपल वृष्टि को रोकना तथा नियंत्रित करना आदि।

3) **नाभिकीय कार्यक्रम** - प्राकृतिक पर्यावरण में इस तरह के मानव जनित परिवर्तनों के प्रभाव अल्पकाल में ही परिलक्षित हो जाते है परन्तु ये परिवर्तन भौतिक पर्यावरण को दीर्घकाल तक प्रभावित करते रहते है।

(2) अप्रत्यक्ष प्रभाव- ये प्रभाव न पहले से सोचे गये होते है न ही नियोजित होते है। यह अप्रत्यक्ष प्रभाव आर्थिक विकास की रफ्तार को तेज करने के लिये, खासकर औद्योगिक विकास में विस्तरण, मनुष्य द्वारा किये गये प्रयासों तथा कार्यों के फलस्वरूप उत्पन्न होते है। यद्यपि आर्थिक विकास के लिये किये जाने वाले इस तरह के कार्यकलाप आर्थिक रूप से महत्वपूर्ण होते है परन्तु उनके द्वारा उत्पन्न पश्चप्रभाव निश्चय ही सामाजिक दृष्टि से अवांछनीय होते हैं।

आर्थिक क्रियाकलापों से जनित पर्यावरण पर पड़ने वाले मनुष्य के अप्रत्यक्ष प्रभाव शीघ्र परिलक्षित नहीं होते है। ये मंद गति से होने वाले परिवर्तन दीर्घकाल तक संचयित होते रहते है। यह प्रभाव उत्क्रमणीय नहीं होते है ऐसे प्रभाव पारिस्थितिक तंत्र के एक या अधिक संघटकों या सम्पूर्ण प्राकृतिक तंत्र को परिवर्तित कर देते है जो मानव वर्ग के लिये घातक एवं जानलेवा हो जाता है। मनुष्य के द्वारा प्राकृतिक पर्यावरण पर पड़ने वाले प्रभावों में से अधिकांश पर्यावरण अवनयन तथा प्रदूषण सम्बन्धित होते है।

अप्रत्यक्ष प्रभावों के उदाहरण-कीटनाशक, रासायनिक दवाएं, उर्वरक ;क्ण्क्ण्ज्ण्द्ध जिससे आहार श्रृंखला एवं आहार जाल में परिवर्तन हो जाता है।

8.5 पर्यावरण अर्थव्यवस्था सम्बन्ध

पर्यावरण तथा देश की अर्थव्यवस्था के बीच प्रत्यक्ष, सहजीवी एवं गहन सम्बंध होता है। पर्यावरण अनेक जैविक एवं अजैविक घटकों से मिलकर बना है। जब ये समस्त घटक निश्चित अनुपात में होते है तो एक सुन्दर एवं स्वच्छ पर्यावरण का निर्माण करते है। मनुष्य की भोगकारी प्रवृत्ति से प्रेरित तीव्र आर्थिक विकास की लालसा ने इन घटकों के अनुपात को बिगाड़ दिया है। इसके फलस्वरूप पर्यावरण एवं पारिस्थितिकी को अपूर्णीय क्षति पहुँच रही है और फलस्वरूप पर्यावरण ने विकराल रूप दिखाना शुरू कर दिया।

मानव विकास रिपोर्ट के अनुसार भारत में आर्थिक विकास के फलस्वरूप भारी पर्यावरणीय ह्रास (environmental degradation) हुआ है। भारत में वर्तमान समय में लगभग 10 से 12 मिलियन अमेरिकी डालर के बराबर पर्यावरणीय क्षति का नुकसान किया गया है जो इसके सकल घरेलु उत्पाद का 4.5 से 6 प्रतिशत तक होता है।

आज के दौर में, आर्थिक विकास की प्रक्रिया और संसाधनों का दोहन रोकना उचित नहीं है। आर्थिक विकास देश की प्रगति का सूचक है। परन्तु इस प्रगति को बनाने के लिये पारिस्थितिक तंत्र की ह्रासमान गति पर नियन्त्रण करके सर्वप्रथम पारिस्थितिक विकास की अवधारण को आधार बनाया जाय जिससे आर्थिक विकासात्मक नीतियाँ बनायी जा सके। आर्थिक विकास के फलस्वरूप औद्योगिकीकरण, नगरीकरण वनो का विनाश एवं प्राकृतिक संसाधनों का अन्धाधुंध दोहन होने से मानव एवं प्रकृति के मध्य स्थापित सन्तुलन बिगड़ गया है। इस असन्तुलन से विभिन्न पर्यावरणीय समस्याओं का जन्म हुआ जिनमें पर्यावरणीय प्रदूषण प्रमुख है। मनुष्य की नज़र में आर्थिक सामाजिक विकास के चलते सभ्य समाज द्वारा उठाये गये कदमों से आत्मघाती परिणाम नज़र आ रहे है जिससे पर्यावरण का ह्रास हो रहा है।

8.5.1 आर्थिक विकास के फलस्वरूप पर्यावरणीय समस्याएँ

(1) वन विनाश का पर्यावरण पर प्रभाव - भूमि की बढ़ती आवश्यकता के चलते वनों की अन्धाधुन्ध कटाई होती जा रही है। यह कहना कदापि गलत नहीं होगा कि भारत में वनों के विनाश का क्रम मानवीय क्रियाकलापों के विस्तार से प्रारम्भ हुआ है। आर्थिक विकास करने के लिये मनुष्य वनों को साफ करने में लगा है। जनसंख्या वृद्धि के कारण कृषि भूमि, आवास, उद्योगों की आवश्यकताएं भी बढ़ी है जिससे वनों का विनाश होने लगा है।

(2) उत्खनन का पर्यावरण पर प्रभाव - आर्थिक विकास को गति प्रदान करने के लिये औद्योगिकीकरण की आवश्यकता है और उसकी स्थापना के लिये खनिज पदार्थों का उत्खनन आवश्यक है। खनन संसाधनों को प्राप्त करने के लिये उत्खनन किया जाता है। परन्तु सघन वन क्षेत्रों में उत्खनन करने से अमूल्य वन सम्पदा नष्ट हो जाती है। न सिर्फ वनों का नाश होता है बल्कि वायु एवं ध्वनि प्रदूषण भी अत्यधिक मात्रा में होता है। खानों की जड़ाई से निकले मलबे के ढेर जहाँ डालते है, वहाँ की भूमि बेकार हो जाती है उदाहरण के तौर पर शिवालिक क्षेत्र में चूना पत्थरों की खदानों से पर्यावरण की अपार क्षति हुयी है। ऐसे ही धनबाद, हजारीबाग कोयला क्षेत्रों की भूमि भी अवशिष्ट खनिजों को जल स्त्रोतों में प्रवाह से बेकार हो गयी है।

(3) औद्योगिकीकरण का पर्यावरण पर प्रभाव - औद्योगिक विस्तार एवं औद्योगिकीकरण जहाँ एक ओर आर्थिक विकास के सूचक माने जाते है वहीं उनकी स्थापना से वनों का विनाश तीव्र गति से होने लगती है क्योंकि तभी विस्तृत भूखण्ड की प्राप्ति हो सकती है। वाँछित उत्पादन के अतिरिक्त हानिकारक अवशिष्ट पदार्थ, प्रदूषित जल, जहरीली गैस, रासायनिक अवशेष, धूल, राख, धुँआ आदि भी निकलते है। इन सब से वायु, जल, मिट्टी प्रदूषण बढ़ता है जो पर्यावरण को नुकसान पहुँचाता है।

(4) नगरीकरण का पर्यावरण पर प्रभाव - नगरीकरण आर्थिक विकास के प्रतीक चिह्न माने जाते है। नगरों में जनसंख्या की अधिकता होने से पर्यावरण समस्याएँ उत्पन्न हो जाती है। ऐसे में नगर प्रशासन पर्याप्त नागरिक सुविधायें नहीं जुटा पाता। कई प्रकार की समस्याएँ जैसे आवास की समस्या, परिवहन की समस्या, पेयजल आपूर्ति की समस्या, प्रदूषण की समस्या उत्पन्न होने लगती है जिससे महानगर ग्रसित हो जाते है। आवास की पर्याप्त सुविधा न मिलने से मलिन बस्तियों की संख्या बढ़ती जा रही है अत्यधिक भीड़भाड़ से वातावरण दमघोंट होता जा रहा है। वाहनों के गतिमान होने से ध्वनि एवं वायु प्रदूषण बढ़ता जा रहा है। नगरों में बढ़ते हुये कूड़े करकट, मलमूत्र व ठोस अवशिष्ट का निस्तारण बहुत बड़ी समस्या बनता जा रहा है। यही सब महामारी का कारण बन जाते है।

यह सच है कि आज विश्व का कोई भी आर्थिक विकास के साधनों को बन्द करने की स्थिति में नहीं है। आर्थिक विकास अति आवश्यक है परन्तु आवश्यकता है कि औद्योगिकीकरण, नगरीकरण, विकासात्मक कार्यों, बहुउद्देशीय नदीं परियोजनाओं का क्रियान्वयन पर्यावरणीय दृष्टिकोणों को ध्यान करके किया जाय।

8.5.2 पर्यावरण-अर्थव्यवस्था सन्तुलन

मनुष्य द्वारा बढ़ते क्रिया कलापों ने प्रकृति के विभिन्न घटकों में हस्तक्षेप कर पर्याकरण के सन्तुलन को बिगाड़ दिया है। पूँजी प्रधान औद्योगिकीकरण की क्रिया ने पर्यावरण को क्षतिग्रस्त करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई हैं। पर्यावरण अपघटन का औद्योगिकीकरण नगरीकरण तथा विस्तृत एवं सघन कृषि से बहुत घनिष्ठ सम्बन्ध हैं। औद्योगिकीकरण ने वायु एवंज ल प्रदूषण तथा औद्योगिक अपशिष्ट प्रदूषण को जन्म दिया है। औद्योगिकीकरण से ही नगरीकरण का विस्तार हुआ है जिसके फलस्वरूप आवास की समस्या, परिवहन जन्य वायु एवं ध्वनि प्रदूषण की समस्या एवं मल-मल तथा कूड़ा करकट निस्तारण की समस्या उत्पन्न हो गयी है।

तकनीकी परिवर्तन ने ***'उपयोग करो और फेंको (use and throw)'*** की दशा को जन्म दिया है जिसने प्रदूषण की समस्या को और अधिक गम्भीर बना दिया है। आज यह धारणा बलवती होती जा रही है कि प्रौद्योगिकीकरण प्रगति के माध्यम से मनुष्य द्वारा प्रकृति पर विजय करने की लालसा पृथ्वी से समस्त जीव जन्तुओं को विनष्ट कर सकती हैं।

पर्यावरणीय प्रदूषण तथा आर्थिक क्रियाकलापों के बीच सम्बन्ध को पदार्थ संतुलन मॉडल द्वारा निम्नवत प्रदर्शित किया जा सकता था। पदार्थ संतुलन मॉडल में पर्यावरण को एक बड़े आवरण के रूप में प्रस्तुत किया जाता है जो सम्पूर्ण आर्थिक प्रणाली के चारों ओर से घेरे हुये है। इसका अर्थव्यवस्था से वही सम्बन्ध होता है जो गर्भस्थ शिशु का उसकी माँ से होता है।

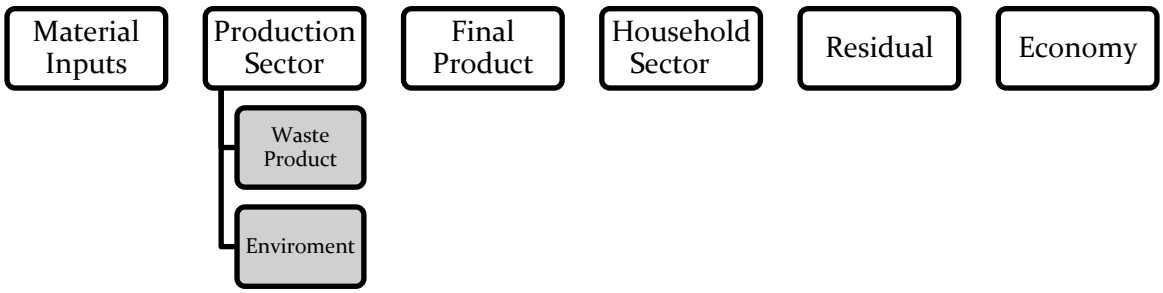

चित्र-8.1. प्रदूषण एवं आर्थिक क्रियाकलाप

चित्र 8.1. में उत्पादन क्षेत्र तथा घरेलु क्षेत्र के बीच पारम्परिक चक्रीय प्रवाह को प्रदर्शित किया गया है। पर्यावरण से प्राकृतिक संसाधनों एवं कच्चे माल का प्रवाह आगतों के रूप में उत्पादन क्षेत्र की ओर होता है। इन क्षेत्रों में इन्हें उपभोक्ता वस्तुओं में परिवर्तित किया जाता है। औद्योगिक क्रिया से उत्पन्न हानिकारक निष्प्रयोज्य पदार्थ प्रदूषित जल, जहरीली गैस, रासायनिक अवशेष, धूल, राख, धुंआ आदि का प्रवाह घरेलु क्षेत्र की ओर होता है। इसके बाद अपशिष्ट के रूप में इसका प्रवाह पुनः पर्यावरण की ओर होता है। यह अपशिष्ट उप-उत्पादन के रूप में होते हैं जो घरेलु क्षेत्र की उपभोग क्रियाओं द्वारा उत्पन्न होते हैं। इस प्रकार से उत्पादन तथा उपभोग क्षेत्र से अपशिष्ट का प्रवाह पर्यावरण की ओर आता है। इस प्रकार के भौतिक प्रवाह पर्यावरण की ओर आता है। इस प्रकार के भौतिक प्रवाह भौतिकी के आधारभूत नियम का पालन करते हैं जहाँ पदार्थों के संरक्षण की बात कही गयी है।

पर्यावरण अर्थव्यवस्था से जुड़े कुछ महत्वपूर्ण बातें

पदार्थ संतुलन सिद्धान्त इस तथ्य की ओर संकेत करता है कि पर्यावरण से अर्थव्यवस्था को प्राप्त होने वाले पदार्थों की मात्रा अपशिष्ट पदार्थों की मात्रा के बराबर होनी चाहिये। आर्थिक विकास की प्रक्रिया तथा मानव निर्मित एवं प्राकृतिक संसाधनों के प्रयोग से सम्बन्धित पर्यावरण अर्थव्यवस्था से जुड़े निम्नलिखित मुद्दे उठाये जा सकते हैं-

(1) क्या बाजार व्यवस्था पर्यावरणीय विवाद का निपटारा कर सकती है?

(2) क्या बाजार व्यवस्था विभिन्न प्रकार के पर्यावरणीय प्रभाव की देखभाल कर सकती है?

(3) क्या बाजार व्यवस्था धन आय का पुर्नवितरण कर सकती है जिससे सामाजिक न्याय की स्थापना की जा सके?

(4) पुनरूत्पादनीय संसाधनों का अनुकूल उपयोग किस तरह किया जाय?

(5) भावी पीढ़ियों की वरीयताओं को किस तरह सम्मिलित किया जाय?

(6) पर्यावरणीय परियोजनाओं के मूल्यांकन हेतु कौन सी समय बाह्य दर उपयुक्त होगी?

(7) बाह्यताओं का मूल्यांकन किस तरह किया जाय?

(8) सामाजिक, आर्थिक ढाँचे तथा सांस्कृतिक विरासत पर प्रदूषण के प्रभाव को कैसे मापा जाय?

(9) क्षतिपूर्ति दरों का निर्धारण किस प्रकार किया जाय?

संक्षेप में यह कहा जा सकता है कि मानव को सीमित पर्यावरणीय संसाधनों का मितव्ययिता पूर्ण ढ़ंग से प्रयोग करना चाहिये। पर्यावरणीय घटकों का आबंटन विभिन्न उपयोगों में इस तरह किया जाना चाहिये जिससे उनका अपघटन एवं क्षरण कम से कम हो, अन्यथा पर्यावरणीय विघटन से उत्पन्न होने वाले दुष्प्रभावों से मानव सहित समस्त जीव जन्तुओं व वनस्पतियों का जीवन संकट में पड़ जायेगा।

8.6 पर्यावरण संकट के कारण एवं परिणाम

पर्यावरण संकट पारिस्थितिकी असन्तुलन का परिणाम है। यह असंतुलन मानवीय क्रियाकलापों का प्रकृति के विभिन्न घटकों में हस्तक्षेप कर बिगाड़ दिया गया है। इससे मानव एवं प्रकृति में दूरी बढ़ती जा रही है और मानव की जीवन को भी खतरा होता जा रहा है। पर्यावरण से पर्याप्त लाभ न पाने की दृष्टि में मानव निर्धन होता जा रहा है।

निर्धनता का अर्थ- दो शब्द है निर्धनता और असमानता दोनों के अर्थ भिन्न है। यह नहीं कह सकते कि निर्धनता असमानता है। अमर्त्य सेन, नोबेल पुरस्कार विजेता ने निर्धनता का अर्थ व्यक्त करते हुये कहा कि निर्धनता का अर्थ यह नहीं है कि समाज का एक वर्ग अन्य वर्गों की तुलना में सापेक्ष रूप से निर्धन है, बल्कि भौतिक कल्याण के मूल अवसरों की न होना है, न्यूनतम सामर्थ्य को प्राप्त करने में असफल होना है। निर्धनता न्यूनतम जीवन स्तर को प्राप्त करने की अक्षमता है।

न्यूनतम भौतिक सामर्थ्य के निरपेक्ष स्तर को प्राप्त करने के लिये मानव के चतुर्दिक व्याप्त पर्यावरण शुद्ध एवं गुणवत्ता वाला होना चाहिये। पर्यावरण की शुद्धता एवं उसकी गुणवत्ता से तात्पर्य पर्यावरण के तत्व जैसे- जल, वायु, मृदा आदि अपने नैसर्गिक गुणों से युक्त हो। जैसे-जैसे पर्यावरण के तत्व अपनी नैसर्गिक गुणवत्ता को खोते

जायेंगे पर्यावरण प्रदूषित होता जायेगा और पृथ्वी के समस्त जीवधारियों का जीवन संकट में पड़ जायेगा। मानव को विभिन्न प्रकार की बीमारियाँ घेर लेंगी और मानव शारीरिक एवं आर्थिक दृष्टि से कमजोर होता जायेगा। अतः पर्यावरण संकट के कारण ही देश में निर्धनता बढ़ती जाती है।

8.6.1 पर्यावरण संकट के मुख्य कारण

(1) तीव्र जनसंख्या वृद्धि - विश्व की बढ़ती जनसंख्या के कारण प्रकृति पर दबाव गहराता जा रहा है। मानव के भीतर भौतिक सुख का मोह प्रकृति को जर्जर बनाने का सबसे बड़ा कारण बनता जा रहा है। यदि जनसंख्या वृद्धि पर अंकुश नहीं लगा तो यह पृथ्वी मानव के जीने लायक नहीं रह पायेगी।

1950 के बाद जनसंख्या वृद्धि तीव्र गति से हुयी। यह वृद्धि अविकसित और विकासशील देशों में अधिक है। 3/4 जनसंख्या विकासशील देशों में तथा एक चौथाई जनसंख्या विकसित देशों में निवास करती है। संसाधनों की कमी तथा जनसंख्या आधिक्या के कारण ऐसे देशों में गरीबी, अशिक्षा, असन्तोष आदि भी पर्यावरण् संकट के कारण बन गये है।

निर्धन देश प्राकृतिक संसाधनों का उचित प्रकार से दोहन नहीं कर पाते जिसका कुप्रभाव वहाँ के वातावरण (पर्यावरण) पर पड़ता है। जनसंख्या के लिये आवश्यकताओं की पूर्ति करने हेतु विकसित देशों के निर्देश पर संसाधनों का दोहन करना पड़ता है जिससे पर्यावरण संकट और गहराता जा रहा है। उदाहरण के लिये ब्राजील बढ़ते वनों का विनाश के लिये बाध्य है, वहीं भारत अपने व्यापार सन्तुलन को सन्तुलित बनाये रखने के लिये खनिजों का दोहन करके उसका निर्यात करता है। भूटान की आर्थिक पिछड़ेपन के कारण लकड़ी निर्यात के लिये बाध्य है। दक्षिण अमेरिकी अफ्रीका एवं एशिया की भूमि बंजर होती जा रही है।

अर्द्धविकसित देशों की स्थिति अत्यन्त दयनीय है। वहाँ के देशों की अज्ञानता और प्रकृति के प्रति उपेक्षापूर्ण व्यवहार से पर्यावरण अवनयन और अधिक हो गया। जनसंख्या वृद्धि के कारण भूमि, जल, खनिज, जल आदि प्राकृतिक संसाधनों की प्रति व्यक्ति उपलब्धता निरन्तर घटती जा रही है। कुपोषण, भुखमरी, बेकारी, गरीबी, आवास की कमी आदि समस्याएँ जनसंख्या वृद्धि के कारण ही उत्पन्न हुयी है।

(2) तीव्र नगरीकरण - नगरीकरण एक विश्वव्यापी प्रक्रिया है। औद्योगिकी क्रान्ति के पश्चात विश्व में नगरीकरण की गति तीव्र हुयी है।

तीव्र नगरीकरण के कारण कृषि क्षेत्र पर अतिक्रमण, प्रदूषण, गन्दी बस्तियों, अवशिष्ट, कूड़ा करकट का एकत्रीकरण जल संकट, जन सुविधाओं पर दबाव आदि समस्याएँ उत्पन्न हुयी है। नगरों में बढ़ता वायु प्रदूषण, ध्वनि प्रदूषण और जल प्रदूषण लोगों में तपेदिक, कैंसर, दमा, पेचिस, आँख के रोग उत्पन्न कर रहा है नगरों में भीड़ भाड़ बढ़ती जा रही है। बीसवीं शताब्दी में महानगरों की जनसंख्या में भी अत्यधिक वृद्धि हुयी है। भारत में 2001 की जनगणनानुसार 10 लाख से अधिक जनसंख्या वाले 35 महानगर है।

(3) तीव्र औद्योगिक विकास - आर्थिक सामाजिक व्यवस्था को नया आयाम देने के लिये औद्योगिक विकास में तीव्रता लाई गयी है। ये सभी जानते है कि औद्योगिक उन्नति से ही आर्थिक सामाजिक विकास सम्भव है। उद्योगों के लिये कच्चे माल की आपूर्ति के लिये प्राकृतिक संसाधनों का तीव्र गति से दोहन होने लगा है। जीवन स्तर को बढ़ाने का आकर्षण पर्यावरण में विकृति उत्पन्न कर रहा है। पर्यावरण को अत्यधिक हानि होती जा रही है।

वनों का विनाश, हानिकारक पदार्थों से प्रदूषण, जल संकट, अति नगरीकरण आदि समस्याएं उत्पन्न हुयी। कागज, रेयान, प्लाईवुड आदि उद्योगों में कच्चे माल की आपूर्ति के लिये बड़ी मात्रा में पेड़ों की कटाई होती जा रही है। फलस्वरूप वन क्षेत्र सिमटते जा रहे हैं।

नगर परिवहन, गृह निर्माण और कच्चे माल के लिये भी वनों का विनाश बड़े पैमाने पर होता जा रहा है। विकास की अन्धीदौड़ में यह विस्मित होता जा रहा है कि मनुष्य प्रकृति का उपादान है। उसे नैसर्गिक सुविधाओं की भी आवश्यकता पड़ती है। अतः आज विश्व के अनेक मंचों से उनके द्वारा पर्यावरण सुधार पर बल दिये जाने की बात की जा रही है।

औद्योगिक विकास के सौ वर्ष पूरे होने के बाद विकसित राष्ट्रों को आभास होने लगा है कि उनके क्रिया कलाप से लगातार पर्यावरण दूषित होते जा रहा है। क्योंकि औद्योगिक संस्थानों से निकलने वाला कचरा, दूषित जल, विषैली गैस, आदि हवा, जल मृदा और जीवों को प्रदूषित कर पर्यावरण को असन्तुलित बना रहे है।

यह एक विडम्बना है कि आर्थिक दृष्टि से सम्पन्न राष्ट्र प्राकृतिक सम्पदा में निर्धन हो गये है।

(4) तीव्र तकनीकी विकास - मानव में तकनीकी क्षेत्र में जो प्रगति किया है उसे तकनीकी प्रगति कहते है। औद्योगिक विकास के कारण विज्ञान और तकनीकी विकास में भी तेजी हुयी। इसका लाभ उद्योग, कृषि, परिवहन, चिकित्सा, आदि विभिन्न क्षेत्रों को प्राप्त हुआ है।

दुर्भाग्य की इस नयी तकनीक से निर्मित उपभोक्ता वस्तुएँ मावन स्वास्थ्य तथा पर्यावरण पर बुरा प्रभाव डालते है। तकनीकी विकास के फलस्वरूप प्लास्टिक, कृत्रिम रेशा, कृत्रिम रबर, कृत्रिम उर्वरक आदि अनेक संशलिष्ट पदार्थ दैनिक जीवन में प्रयुक्त किये जाते है। हालाँकि इससे प्राकृतिक संसाधनों पर दबाव कम हुआ है पर वहीं अनेक पर्यावरणीय समस्याएँ उत्पन्न हो गयी है। आज मानव के लिये प्लास्टिक कचरे का निपटान एक समस्या बन गयी है। इससे मानव के स्वास्थ्य पर भी बुरा असर पड़ता है। आणविक विस्फोटी व घातक हथियारों से विश्व पर्यावरण को सर्वाधिक खतरा है।

(5) अनियोजित विकास - ऐसा विकास जो नियोजित नहीं होता, पर्यावरणीय स्थिति को खतरनाक बना देता है। इससे समाज एक पारिस्थितिकीय संकट के कगार पर खड़ा है।

भारत जैसे विकासशील देशों में जहाँ औद्योगिकीकरण को योजना का प्रमुख अंग बनाया गया है, किन्तु उसका नियन्त्रण कैसे और कौन करे, वह किस कीमत पर उपलब्ध होता है और निकट भविष्य में उसके क्या परिणाम हो सकते है, इस पर कोई विचार नहीं किया जाता। शहरों का अनियन्त्रित विकास, शहरों में आबादी का संकेन्द्रण शहरों को बढ़ती भीड़, आदि कारकों से पारिस्थितिकीय पक्ष पर बहुत अधिक दबाव पड़ रहा है।

न केवल नगर नियोजन बल्कि नदी घाटी परियोजनाओं के निर्माण में भी पारिस्थितिकीय संकट उत्पन्न हुआ है। इन परियोजनाओं के भूगर्भिक, सामाजिक, सांस्कृतिक जनांकिकीय, वनस्पति, वन्य जीव तथा अन्य पारिस्थितिकीय पक्षों का विस्तृत अध्ययन नहीं किया गया। मात्र आर्थिक पक्ष पर बल दिया गया।

उत्तराखण्ड हिमालय में रामगंगा नदी पर कालागढ़ बाँध बनाने से कार्बेट नेशनल पार्क का 10 प्रतिशत वन क्षेत्र जो कि बहुत सघन था, डूब गया। दक्षिण भारत के केरल राज्य में भी ***'मूक घाटी पनबिजली परियोजना'*** एक विवादास्पद परियोजना सातवें दशक में प्रारम्भ हुयी। इस परियोजना द्वारा निर्मित जलाशय से इस घाटी के दुर्लभ वन्य जीवों, जड़ी बूटियों तथा वनों आदि का विनाश होना था जिसमें 5 करोड़ वर्ष से भी अधिक पुराने वन

है। यहाँ की प्राकृतिक सम्पदा संसार भर में श्रेष्ठतम है। भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण विभाग के अनुसार, ***"इस घाटी में 900 से भी अधिक किस्म की जड़ी बूटियाँ तथा फूलों के पौधे है।"*** भारतीय जीव जन्तु सर्वेक्षण विभाग के अनुसार, ***"इस घाटी के वनों में दुर्लभ जन्तु जैसे- शेर, बन्दर, बाघ आदि मिलते वैसे दुर्लभ है।"***

डॉ. माधव गाडगिल के अनुसार, ***"पश्चिमी घाट की जल विद्युत परियोजनाओं ने यहाँ की विशिष्ट वनस्पतियों को नष्ट कर दिया है।"***

हिमालय क्षेत्र में टिहरी बाँध परियोजना जिस पर कि 1960 से निर्माण कार्य चल रहा है पारिस्थितिकीय असन्तुलन के लिये एक चुनौती है। बाँध के निर्माण कार्य से यहाँ के आसपास के जंगल समाप्त हो चुके है, जिससे भूक्षरण तथा भूस्खलन हो रहा है। इस बाँध के सम्भावित जलमग्न क्षेत्र के 92 गाँवों के 32000 विस्थापितों को बसाने के लिये देहरादून तथा हरिद्वार जिले के पथरी विकास क्षेत्र में हजारों एकड़ वन भूमि को काटना पड़ा जिससे पर्यावरण का दोहरा नुकसान हुआ।

इसके साथ ही इसके शिकार व आदिवासी नदी घाटियों के किसान और पर्वतीय निवासी हो रहे है जिसका अपना जीवन उस पर्यावरण पर निर्भर कर रहा है।

मई 1991 की विश्व बैंक की रिपोर्ट में कहा गया है कि भरत में उभरते हुये पर्यावरणीय संकटों से निपटने के लिये कोई एकीकृत रणनीति अभी तक नहीं उभरी है। भारज के पर्यावरणीय नियन्त्रक ढाँचे में सबसे कमजोर पहलू यह है कि पर्यावरण स्वीकृति को परियोजना स्वीकृति की प्रक्रिया से नहीं जोड़ा गया है।

8.7 अभ्यास प्रश्न

लघु उत्तरीय प्रश्न-

(1) पदार्थ सन्तुलन सिद्धान्त क्या है?

(2) पर्यावरण की प्रमुख विशेषताएँ क्या है?

(3) पर्यावरण के प्रमुख चार घटक क्या है?

(4) पर्यावरण के दो समूहों के नाम बताइये?

(5) पर्यावरण और पारिस्थितिकों के बीच क्या अन्तर हैं?

8.8 सांराश

पर्यावरण में समस्त भौतिक तथा जैविक परिस्थितियां सम्मिलित होती है, अतः पर्यावरण जीवों की क्रियाओं एवं प्रतिक्रियाओं को प्रभावित करने वाली समस्त भौतिक तथा जैविक परिस्थितियों का योग होता है। पर्यावरण की इस आधारभूत संरचना के आधार पर इसको दो प्रमुख प्रकारों में विभक्त किया जाता है-भौतिक पर्यावरण,जैविक पर्यावरण। पर्यावरण में प्रमुख चार घटक सम्मिलित होते है स्थलमण्डल, जलमण्डल, वायुमण्डल, जैवमण्डल। पर्यावरण के संघटकों को तीन प्रमुख प्रकारों में विभक्त किया जाता है- भौतिक या अजैविका संघटक, जैविक संघटक, ऊर्जा संघटक।

पर्यावरण तथा देश की अर्थव्यवस्था के बीच प्रत्यक्ष, सहजीवी एवं गहन सम्बंध होता है। मानव विकास रिपोर्ट के अनुसार भारत में आर्थिक विकास के फलस्वरूप भारी पर्यावरणीय ह्रास हुआ है। आर्थिक विकास देश की प्रगति का सूचक है। आर्थिक विकास के फलस्वरूप औद्योगिकीकरण, नगरीकरण वनो का विनाश एवं

प्राकृतिक संसाधनों का अन्धाधुंध दोहन होने से मानव एवं प्रकृति के मध्य स्थापित सन्तुलन बिगड़ गया है। जनसंख्या वृद्धि के कारण कृषि भूमि, आवास, उद्योगों की आवश्यकताएं भी बढ़ी है जिससे वनों का विनाश होने लगा है। कई प्रकार की समस्याएँ जैसे आवास की समस्या, परिवहन की समस्या, पेयजल आपूर्ति की समस्या, प्रदूषण की समस्या उत्पन्न होने लगती है जिससे महानगर ग्रसित हो जाते है। औद्योगिक विस्तार एवं औद्योगिकीकरण जहाँ एक ओर आर्थिक विकास के सूचक माने जाते है वहीं उनकी स्थापना से वनों का विनाश तीव्र गति से होने लगती है क्योंकि तभी विस्तृत भूखण्ड की प्राप्ति हो सकती है।यद्यपि आर्थिक विकास के लिये किये जाने वाले इस तरह के कार्यकलाप आर्थिक रूप से महत्वपूर्ण होते है परन्तु उनके द्वारा उत्पन्न पश्चप्रभाव निश्चय ही सामाजिक दृष्टि से अवांछनीय होते हैं।

मनुष्य के द्वारा प्राकृतिक पर्यावरण पर पड़ने वाले प्रभावों में से अधिकांश पर्यावरण अवनयन तथा प्रदूषण सम्बन्धित होते है। पदार्थ संतुलन सिद्धान्त इस तथ्य की ओर संकेत करता है कि पर्यावरण से अर्थव्यवस्था को प्राप्त होने वाले पदार्थों की मात्रा अपशिष्ट पदार्थों की मात्रा के बराबर होनी चाहिये। पर्यावरण संकट पारिस्थितिकी असन्तुलन का परिणाम है। यह असंतुलन मानवीय क्रियाकलापों का प्रकृति के विभिन्न घटकों में हस्तक्षेप कर बिगाड़ दिया गया है। इससे मानव एवं प्रकृति में दूरी बढ़ती जा रही है और मानव की जीवन को भी खतरा होता जा रहा है। पर्यावरण से पर्याप्त लाभ न पाने की दृष्टि में मानव निर्धन होता जा रहा है। तकनीकी विकास के फलस्वरूप प्लास्टिक, कृत्रिम रेशा, कृत्रिम रबर, कृत्रिम उर्वरक आदि अनेक संशलिष्ट पदार्थ दैनिक जीवन में प्रयुक्त किये जाते है। हालाँकि इससे प्राकृतिक संसाधनों पर दबाव कम हुआ है पर वहीं अनेक पर्यावरणीय समस्याएँ उत्पन्न हो गयी है।

8.9 शब्दावली

- **पारिस्थितिकी** - Ecology
- **अपशिष्ट** - Residual
- **निष्प्रयोज्य पदार्थ** - Waste Material
- **नगरीकरण** - Urbanisation
- **प्राकृतिक संसाधन** - Natural Resources
- **विलासिता** - Luxury

8.10 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

8.11 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

- डॉ. जे.पी. मिश्रा- *संवृद्धि एवं विकास का अर्थशास्त्र* साहित्य भवन पब्लिकेशन्स, आगरा 2012
- दत्त एवं सुन्दरम- *भारतीय अर्थव्यवस्था*, एस. चंद पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली, 2012
- एल.एन. कोली- *भारतीय अर्थव्यवस्था* लक्ष्मी नारायन अग्रवाल, आगरा 2007

- कुमार सर्वेश- *भारतीय अर्थव्यवस्था*, सार्थक प्रकाशन,दिल्ली, 2011
- डा. जे. सी. पन्त एवं जे. पी. मिश्रा - *अर्थशास्त्र*, साहित्य भवन पब्लिकेशन, आगरा
- डा. टी.टी. सेठी - *समष्टि अर्थशास्त्र*

8.12 सहायक/उपयोग पाठ्य सामग्री

- Arvind Panagariya: The Emerging Giant
- Bimal Jalan : India's Economic Policy : Preparing for the Twenty-First Century *Penguin Books India* , 2000
- Waquar Ahmed, Amitabh Kundu, Richard Peet: India's New Economic Policy: *Taylor &Francis* US, 2010
- Prem Sagar Gupta: Foreign capital in India, People's Pub. House, 1952
- R. K. Uppal: Economic Reforms in India: A Sectoral Analysis
- Hayami, Yujiro, Godo, Yoshihisu, (2004), Development Economics, OxfordUniversity Press India
- Singh, S.P. (2010) Economics of Development & Planing theory & practice, S & Chand Publishing House
- Dhingra, I C., (2009), Development Economics, Sultan Chand & Sons
- Mishra, S.K., and Puri, V.K., (2007), Economics of Development & Planing theory & practice, Himalaya

8.13 निबन्धात्मक प्रश्न

1. आर्थिक विकास का पर्यावरण पर पड़ने वाले प्रभावों की संक्षिप्त विवेचना कीजिये?
2. पर्यावरण एवं अर्थव्यवस्था के बीच सम्बन्ध को स्पष्ट कीजिये? आर्थिक विकास पर्यावरण को किस प्रकार प्रभावित करता है?

इकाई 9- कृषि क्षेत्र एवं आर्थिक विकास

(Agricultural Sector and Economic Development)

9.1 प्रस्तावना

9.2 उद्देश्य

9.3 कृषि क्षेत्र एवं आर्थिक विकास

9.4 आर्थिक विकास

9.5 आर्थिक विकास में कृषि की भूमिका

9.6. कृषि: एक पद्दलित क्षेत्र (विकासशील देशों के सन्दर्भ में)

9.7 कृषि क्षेत्र विकास बनाम औद्योगिक क्षेत्र विकास

9.8 अभ्यास प्रश्न

9.9 सांराश

9.10 शब्दावली

9.11 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

9.12 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

9.13 सहायक/उपयोग पाठ्य सामग्री

9.14 निबन्धात्मक प्रश्न

9.1 प्रस्तावना

इससे पूर्व के खण्ड के अध्ययन से आप संसाधन की आर्थिक विकास में भूमिका को जान गये है। इस इकाई में कृषि क्षेत्र एवं आर्थिक विकास की पूर्ण जानकारी प्रस्तुत की जा रही है। इस इकाई के अध्ययन से आप को आर्थिक विकास में कृषि क्षेत्र के योगदान की विस्तृत जानकारी प्राप्त हो जायेगी।

9.2 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन से आप:-

- ✓ अर्थव्यवस्था में कृषि क्षेत्र की भूमिका को समझ सकेंगे।
- ✓ आर्थिक विकास में कृषि क्षेत्र के महत्व की विस्तृत जानकारी प्राप्त कर लेगें।
- ✓ विकासशील देशों के सन्दर्भ में कृषि के महत्व को समझ सकेगें।
- ✓ आर्थिक विकास की प्रक्रिया में कृषि के विकास बनाम औद्योगिक विकास को प्राथमिकता प्रदान की जाए।

9.3 कृषि क्षेत्र एवं आर्थिक विकास

कृषि मानव सभ्यता के विकास के आरम्भ से ही लोगों की आजीविका का प्रमुख साधन रही है। आज भी कृषि विश्व की अधिकांश जनंसख्या का प्रमुख व्यवसाय तथा आय का सबसे बड़ा स्रोत है। कृषि प्रमुख व्यवसाय के साथ-साथ राष्ट्रीय आय का बड़ो स्रोत, रोजगार औद्योगिक विकास, वाणिज्य एवं विदेशी व्यापार का आधार है। कृषि विकासशील देशों की अर्थव्यवस्था की रीढ़ तथा विकास की कुंजी है। कृषि विकास की पूर्णता के बाद ही विश्व के देश विकसित राष्ट्र के पथ पर अग्रसर होते है। अमेरिका, इंग्लैण्ड, जर्मनी, रूस तथा जापान जैसे अनेक देशों के विास में कृषि ने महत्वपूर्ण भूमिका निभाई तथा तीव्र औद्योगिक विकास के लिए सुदृढ़ व मजबूत आधार प्रदान किया। इसीलिए विकास के प्रत्येक चरण में कृषि विकास पर विचारकों ने पर्याप्त बल दिया है।

भूमि और कृषि प्राचीन आर्य संस्कृति के आधार स्तम्भ रहे है। भारतीय संस्कृति में पृथ्वी (भूमि) को माता के समान माना गया है। यहां कृषि कर्म को प्रथम, वाणिज्य को द्वितीय, सेवा कार्य को तृतीय तथा मांगने को चतुर्थ स्थान प्रदान किया गया है। प्राचीन यूनानी विचारकों ने भी कृषि व्यवसाय को विषेश महत्व प्रदान किया था। प्रसिद्ध विचारक अरस्तु कृषि व पशुपालन द्वारा ही द्रव्य उपार्जन को प्राकृतिक मानते थे। सुकरांत के प्रमुख शिष्य जीनोफन के कृषि को विशेष महत्व प्रदान किया। यूनानी विचारकों की तरह ही रोमन विचारकों ने भी कृषि को विशेष महत्व प्रदान किया। प्रसिद्ध रोमन विचारक सिसेरों, केटो, वारो तथा कोलूमेला आदि ने भी कृषि कार्य को ही महत्व प्रदान करते हुए समस्त प्राप्तियों को आधार माना है। परम्परावादी वाणिकवादी अर्थशास्त्रीयों ने भी खाद्यान्न में आत्मनिर्भर होने की बात कही और मत्स्य उद्योग के विस्तार पर बल दिया।

प्रकृतिवादियों ने भी अनेक ऐसे सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया जिनके द्वारा कृषि की महत्ता और बढ़ गई। उनका विश्वास था कि केवल कृषि ही समाज की सम्पत्ति सृजन का आधार है। केने के अनुसार, कृषि राज्य की समस्त सम्पत्ति तथा समस्त नागरिकों के धन की स्रोत है, अतः कृषि का लाभप्रद होना सरकार एवं राष्ट्र के लिए अनुकूल बात होगी। केने का कहना है कि उद्योग तथा वाणिज्य दोनों कृषि के ही अधीन है। क्योंकि दोनों क्षेत्र कृषि

क्षेत्र से ही कच्चामाल प्राप्त करते है। प्रकृतिवादियों का मानना था कि केवल **'कृषक-राष्ट्र'** की सुदृढ़ व टिकाऊ साम्राज्य स्थापित कर सकता है।

परम्परावादी अर्थशास्त्री तथा अर्थशास्त्र के जनक एडमस्थित ने प्रकृतिवादियों की इस विचारधारा का खण्डन किया कि केवल कृषि ही उत्पादक है, फिर भी उन्होंने सम्पत्ति उत्पादन क्रिया में कृषि का मुख्य स्थान दिया। उन्होंने निर्माण के दूसरा व व्यापार को तीसरे स्थान पर रखा। मार्शल और कई अनेक अर्थशास्त्रीयों ने भी कृषि के महत्व के स्वीकार किया। **श्री युगो पापी** के अनुसार ***''कृषि आय में वृद्धि आर्थिक विकास की कुंजी है और यदि कोई राष्ट्र सर्वप्रथम उसे प्राप्त करने में असफल रहता है तो समस्त विकार-प्रक्रिया अवरूद्ध हो सकती है।"*** प्रो. लुइस, कोले, हूवर, वाईनर तथा किण्डलबर्जर जैसे अर्थशास्त्रीयों का मत है, कि विकास-प्रक्रिया में कृषि विकास को प्राथमिक स्थान दिया जाना चाहिए, क्योंकि घरेलू मांग की आपूर्ति, आत्मनिर्भरता एवं निर्यात-वृद्धि जैसे आधारभूत समस्याएं कृषिगत विकास से ही हल की जा सकती है। प्रो0 शुल्टज के अनुसार कोई भी अल्प विकसित राष्ट्र खाद्यान्नों में आत्म-निर्भरता प्राप्त किये बिना आर्थिक विकास की कल्पना नहीं कर सकता।

डेविस ने इस धारणा के विपरीत मत व्यक्त करते हुए कहा है कि ***''कृषि कोई असाधारण रूप से मौलिक क्रिया नहीं है तथा किसी राष्ट्र की समृद्धि मुख्य रूप से अन्य घटकों जो कि कृषि कार्य करने के अतिरिक्त है, पर निर्भर करती है।''*** यद्यपि कृषि के महत्व के सन्दर्भ में विभिन्न विचारकों ने भिन्न-भिन्न मत दिये, परन्तु इस बात से सभी सहमत थे कि कृषि विकास के बिना अन्य क्षेत्रों को विकास असम्भव है। क्योंकि कृषि क्षेत्र द्वारा ही राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था में वस्तुओं ओर सेवाओं का प्रवाह होता है। कोई राष्ट्र आर्थिक विकास के किसी भी स्तर पर पहुँच जाये कृषि की उपेक्षा नहीं कर सकता क्योंकि बुनियादी आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु कृषि क्षेत्र पर ही निर्भरता बनी रहती है।

9.4 आर्थिक विकास

आज पूंजीवादी तथा समाजवादी समस्त अर्थव्यवस्थाओं का मुख्य उद्देश्य अर्थव्यवस्था को समृद्धिशाली बनाते हुए आर्थिक विकास को गति प्रदान करना है। अल्पविकसित तथा विकासशील देश जहां अपनी सामान्य गरीबी, बेरोजगारी, आर्थिक विषमता तथा पिछड़ेपन से छुटकारा प्राप्त करना चाहते है और अपने उपलब्ध संसाधनों का अधिकतम विदोहन कर उत्पादन एवं उत्पादकता बढ़ाने हेतु प्रयासरत है, वहीं विकसित देश अपने विकास को निरन्तर गतिशील बनाए रखना चाहते हैं।

आर्थिक विकास वह प्रक्रिया है जिसके अन्तर्गत मानवीय प्रयत्नों द्वारा कोई देश अर्थव्यवस्था के सभी क्षेत्रों में उत्पादन एवं उत्पादकता में वृद्धि कर अपनी वास्तविक प्रति व्यक्ति आय में वृद्धि करते हुए देश में गरीबी और आर्थिक विषमता को समाप्त कर नागरिकों के जीवन स्तर से सुधार लाने का पयास करता है। आर्थिक विकास की कुछ प्रमुख परिभाषाएं निम्नलिखित हैं:

मायर एवं बाल्डविन के अनुसार, ***''आर्थिक विकास एक ऐसी प्रक्रिया है जिसमें दीर्घकाल में किसी अर्थव्यवस्था की वास्तविक राष्ट्रीय आय में वृद्धि होती है।"***

प्रो. लुईस के शब्दों में - आर्थिक विकास का अर्थ, प्रति व्यक्ति उत्पादन के वृद्धि से लगाया जाता है।

प्रो. यंगसन के विचारानुसार - आर्थिक प्रगति से आशय किसी समाज से सम्बन्धित आर्थिक उद्देश्यों को प्राप्त करने की शक्ति में वृद्धि करना है।

विलियमसन एवं बट्रिक के अनुसार, ***''आर्थिक विकास अथवा संवृद्धि से तात्पर्य उस प्रक्रिया से है जिसमें किसी देश अथवा क्षेत्र के निवासी उपलब्ध संसाधनों का उपयोग प्रति व्यक्ति वस्तुओं एवं सेवाओं के उत्पादन में निरन्तर वृद्धि के लिए करते हैं।"***

प्रो. रोस्टोव के अनुसार, ***''आर्थिक विकास एक तरफ पूँजी व कार्यशील शक्ति में वृद्धि की दरों के मध्य और दूसरी तरफ जनसंख्या वृद्धि की दर के मध्य एक ऐसा सम्बन्ध है जिससे कि प्रति व्यक्ति उत्पादन में वृद्धि होती है।"***

क्राउज के शब्दों में, ***''आर्थिक विकास किसी अर्थव्यवस्था के अन्तर्गत आर्थिक संवृद्धि की प्रक्रिया को बताता है। इस पक्रिया का केन्द्रीय उद्देश्य अर्थव्यवस्था के लिए प्रति व्यक्ति वास्तविक आय का ऊँचा और बढ़ता स्तर प्राप्त करना होता है।"***

डी. ब्राइट सिंह के अनुसार, ***''यह (आर्थिक विकास) एक बहुआयामी घटना है जिसके अन्तर्गत केवल मौद्रिक आय में होने वाली वृद्धि ही शामिल नहीं होती बल्कि वास्तविक आदतें, शिक्षा, सार्वजनिक स्वास्थ्य, अधिक आराम के साथ-साथ एक पूर्ण एवं सुखी जीवन का निर्माण करने वाले समस्त सामाजिक एवं आर्थिक सुधार भी सम्मिलित होते हैं।"***

संयुक्त राष्ट्र संघ (UNO) की एक रिपोर्ट के अनुसार, ***''विकास, मानव की केवल भौतिक आवश्यकताओं से ही नहीं, बल्कि उसके जीवन की सामाजिक दशाओं की उन्नति से भी सम्बन्धित होना चाहिए। इस तरह, विकास में सामाजिक, सांस्कृतिक, संस्थागत तथा आर्थिक परिवर्तन भी शामिल होने चाहिए।"***

उपरोक्त परिभाषाओं की मूल धारणाओं के अनुरूप आर्थिक विकास की एक उपयुक्त परिभाषा इस प्रकार दी जा सकती है - ***''आर्थिक विकास वह सतत प्रक्रिया है जिसके अन्तर्गत देश में उपलब्ध समस्त संसाधनों का कुशलतापूर्वक विदोहन होता है, जिसके परिणामस्वरूप राष्ट्रीय आय एवं प्रति व्यक्ति आय में निरन्तर एवं दीर्घकालीन वृद्धि होती है, आर्थिक विषमता में कमी आती है, सामान्य जनता के जीवन स्तर एंव कल्याण में बढ़ोत्तरी होती है।"***

किसी भी क्षेत्र विशेष के लिए कृषि विकास के लक्ष्य निर्धारित करने तथा कृषिगत विकास की रणनीति तैयार करने के लिए अर्थव्यवस्था में कृषि महत्व तथा उसके आर्थिक विकास के साथ सम्बन्ध में समझना विशेष महत्व रखता है। इस तथ्य के परिप्रेक्ष्य में आर्थिक विकास में कृषि की भूमिका का अध्ययन करना उचित होगा।

9.5 आर्थिक विकास में कृषि की भूमिका

कृषि सभी उद्योगों की जननी और मानव जीवन की पोषक रही है। यह सभी विज्ञानों और कलाओं की सिरमौर, सभ्यता का प्रतीक और प्रगति का सूचकांक मानी जाती है। इसे आर्थिक विकास की कुंजी भी कहा जाता है क्योंकि औद्योगीकरण मूलरूप से कृषिगत-विकास की ही देन है। प्रमाण के रूप में इंगलैण्ड, जर्मनी, रूस तथा जापान में विकास ने तीव्र औद्योगीकरण के लिये सुदृढ़ आधार प्रदान किया है। विशेष रूप से अल्प-विकास राष्ट्र,

जिनका प्रमुख व्यवसाय कृषि है अपने सीमित साधनों द्वारा आथिक विकास की ऊँची दर तब तक प्राप्त नहीं कर सकते जब तक कि वे अपने आधारभूत कृषि उद्योग को उन्नत न कर लें।

कृषि विकास के महत्व को स्पष्ट करते हुए **कोल एवं हूबर** ने कहा है कि ***"सम्पूर्ण अर्थव्यवस्था के विकास के लिए कृषि विकास पहले होना चाहिए और यदि किसी क्षेत्र के अविकसित होने से दूसरे क्षेत्र के आर्थिक विकास में बाधा पड़ती है तो वह अविकसित क्षेत्र कृषि ही होगा जो अन्य क्षेत्रों के विकास को बाधिक करेगा।"*** कृषि की बढ़ती हुई उत्पादकता से औद्योगिक विकास में अनेक तरह से सफलता प्राप्त होती है।

कृषि विकास का अर्थ होता है कृषि आधारित वस्तुओं का अधिक उत्पादन, अधिक आय, अधिक रोजगार तथा कृषकों के लिए बेहतर जीवन-स्तर। जब कृषि का विकास होता है तब क्षेत्र विशेष की सम्पूर्ण आर्थिक प्रगति को त्वरित करता है।

यूरोपीय अर्थशास्त्री के अनुसार, ***"कृषि-आय में वृद्धि आर्थिक विकास की कुंजी है और यदि कोई राष्ट्र सर्वप्रथम उसे प्राप्त करने में असफल रहताहै तो समस्त विकास-प्रक्रिया अवरूद्ध हो सकती है।"***

प्रमुख अर्थशास्त्री किण्डलवर्जर ने छः महत्वपूर्ण कारक बताए है जिनके द्वारा कृषि क्षेत्र आर्थिक विकास में मदद पहुँचाता है - **प्रथम**, यह उद्योगों को श्रमिक प्रदान करता है, **द्वितीय**, यह औद्योगिक उत्पादन के लिए कच्चा माल उत्पन्न करता है; **तृतीय**, यह उ़द्योगों तथा सरकार के लिए बचत प्रदान करता है, **चतुर्थ**, यह क्षेत्र कर प्रदान कर सकता है; **पंचम**, कृषि द्वारा विदेशी विनियम प्राप्त हो सकता है; **षष्टम**, यह मुख्य क्षेत्रों को महत्वपूर्ण पूंजीगत उपकरण और कच्चा माल प्रदान कर सकता है।

साइमन कुजनेट्स ने आर्थिक विकास में कृषि की भूमिका को तीन भागों में बांटा है:

1. खाद्यानों एवं अन्य कृषिगत उत्पादों में वृद्धि द्वारा कृषि क्षेत्र उत्पादकीय भूमिका निभाता है।
2. यह अन्य क्षेत्रों से व्यापार सम्बन्धों द्वारा बाजारीय भूमिका निभाता है।
3. अन्य क्षेत्रों को श्रम शक्ति की पूर्ति करने में कृषि क्षेत्र महत्वपूर्ण भूमिका अदा करता है।

कृषि क्षेत्र का आर्थिक विकास में मुख्य भूमिका को निम्न बातों से परिलक्षित होती है –

1. **खाद्य पदार्थों की बढ़ती मांग को पूरा करना -** मानव की मूल आवश्यकता भोजन की है। जिसका मुख्य स्रोत कृषि है। अल्पविकसित देशों में खाद्य उत्पादन का कृषि क्षेत्र में प्रभुत्व होता है। जब बढ़ती हुई उत्पादकता के साथ उत्पादन बढ़ता है तो वह किसानों की आय में वृद्धि करता है। उनकी प्रति व्यक्ति आय में वृद्धि से खाद्यों के लिए मांग में काफी वृद्धि होती है। ऐसे देशों में खाद्यों के लिए मांग की आय लोच बहुत ऊँची होती है। यह अक्सर 0.6 तथा 0.8 प्रतिशत के बीच में होती है। फिर, मृत्यु-दर में तीव्र कमी तथा जन्म-दर में धीमी गिरावट से जनसंख्या की वृद्धि दर में बढोत्तरी होती है। जिससे खाद्यों की माँग और बढ़ती है। इसके अतिरिक्त, शहरों एवं औद्योगिक क्षेत्रों में जनसंख्या के प्रसार से खाद्यों की मांग बढ़ती है। इन सभी तत्वों को दृष्टिगोचर रखते हुए फार्म उत्पादन में बढ़ौतरी की दर खाद्य मांग से अधिक होनी चाहिए।

कृषि का सर्वाधिक महत्वपूर्ण योगदान बढ़ती हुई जनसंख्या के लिये पर्याप्त मात्रा में खाद्य-सामग्री उपलब्ध कराना है। विशेष रूप से अल्प-विकसित देशों में कृषि महत्व निम्न दो बातों के कारण और भी अधिक है। प्रथम, इन देशों में जनसंख्या की वृद्धि दर 2.5 से 3 प्रतिशत वार्षिक होने के कारण खाद्यान्न की मांग तेजी के साथ बढ़ती है। दूसरा, उन्नत देशों की अपेक्षा इन देशों में खाद्य-सामग्री की मांग की आय-लोच काफी ऊँची होती है एक अनुमान के अनुसार मांग की यह ऊँची आय-लोच खाद्यान्नों की मांग से लगभग 3 प्रतिशत वार्षिक वृद्धि कर देती है। जो किसी भी अल्प-विकसित देश की कृषि के लिये एक खुली चुनौती है। अतः इन देशों के आर्थिक विकास के परिवेश में जब कृषि वस्तुओं की तेजी के साथ बढ़ती हुई मांग के तदनुरूप खाद्यान सामाग्री की आपूर्ति को नहीं बढ़ाया जा पाता तो आर्थिक विकास का ढाँचा चर-मरा उठता है, स्फीतिक दबाव बढ़ने लगते हैं और जीवन-स्तर गिर जाता है।

2. औद्योगिक विकास का आधार - बढ़े हुए कृषि अतिरेक के कारण ग्रामीण क्रय-शक्ति में वृद्धि होती है, जो औद्योगिक विकास के बहुत प्रोत्साहित करती है। कृषि औद्योगिक कच्चे-माल की आपूर्ति का मुख्य स्रोत है।यदि कृषि क्षेत्र पिछड़ा हुआ है तो औद्योगिक कच्चे माल की पर्याप्त पूर्ति न हो पाने के कारण उद्योगों का विकास मन्द होगा और आर्थिक विकास की दर नीची बनी रहेगी। **प्रो. रोस्टोव** के अनुसार, ***"कृषि औद्योगिक विकास की आधारशिला है और कृषि-उपादन औद्योगीकरण के लिये मूलभूत चालू पूँजी है।"***

विकासशील देशों में निर्मित वस्तुओं की मार्केट बहुत छोटी होती हैं, क्योंकि कृषक, फार्म श्रमिक, तथा उनके परिवार जो ग्रामीण जनसंख्या का दो-तिहाई अथवा तीन-चौथाई होते हैं, इतने गरीब होते हैं कि वे फैक्टरी वस्तुए नहीं खरीद सकते। नर्क्से के अनुसार, वास्तविक क्रय-शक्ति का अभाव होता है जो कृषि में कम उत्पादकता को व्यक्त करती हैं। इसलिए मूल समस्या, मार्केट के छोटे आकार के कारण निवेश में कम आय प्राप्ति की हैं जब कृषि-उत्पादन एवं उत्पादकता बढ़ने से ग्रामीण क्रय-शक्ति (आय) में वृद्धि होगी तो निर्मित वस्तुओं की मांग बढ़ेगी जिससे मार्केट का आकार भी बढ़ेगा जिससे औद्योगिक क्षेत्र का प्रसार होगा। फिर, उर्वरक, अच्छे यंत्र, औजार, ट्रैक्टर, सिंचाई के साधन आदि आगतों की कृषि क्षेत्र में मांग बढ़ने से औद्योगिक क्षेत्र का और प्रसार होगा। इन सब के कारण औद्योगिक विकास होगा।

3. तृतीयक (सेवा) क्षेत्र का प्रसार - जब बढ़ रहे विक्रेय अतिरेक को शहरी क्षेत्रों में बेचने हेतु मंडियों में ले जाना पड़ता है तो उससे परिवहन एवं संचार के साधनों का प्रसार होता है। इसी प्रकार, ग्रामीण क्षेत्रों की मांग पूरा करने के लिए जब निर्मित वस्तुएं शहरों से गांवों में लाई जाती हैं तो इन साधनों का विकास होता है। साथ में बैकिंग एवं वित्तीय संस्थाओं का भी ग्रामीण क्षेत्रों में प्रसार होता है।

द्वितीयक एवं तृतीयक क्षेत्रों के प्रसार के दीर्घकालीन प्रभाव उनमें लाभ बढ़ाने की ओर होते हैं चाहे वे निजी या सार्वजनिक क्षेत्र में चल रहे हों। ये लाभ उनके पुर्ननिवेश द्वारा पूँजी निर्माण की दर बढ़ाते हैं।

4. पूँजी निर्माण में सहायक - अल्पविकसित देशों में पूँजी की न्यूनता रहती है। जबकि इन देशों को आधारभूत संरचना का विकास करने तथा विनिर्माणी उद्योगों की स्थापना के लिए भारी मात्रा में पूँजी निवेश कृषि उत्पादकता में वृद्धि के फलस्वरूप कृषि क्षेत्र की आय बढ़ जाने से बचत करने की क्षमता का

विस्तार होता है। इस तरह, ऐच्छिक तथा अनिवार्य बचतों (अर्थात् करारोपण) के रूप में आसानी में पूँजी उपलब्ध हो जाती है। दूसरा, कृषि में **'कम पूँजी प्रधान उपायों'** अथवा **'पूँजी -बचत उपायों'** का प्रयोग करके उत्पादकता में वृद्धि की जा सकती है।

अतः कृषि क्षेत्र में जीवन-स्तर को कम किए बिना ही पूँजी निर्माण के लिए साधन प्राप्त किए जा सकते हैं। तीसरें, कृषि कीमतों को कम करके भी पूँजी निर्माण किया जा सकता है लेकिन कृषि कीमतों का कम करना संभव नहीं होता जबकि उनका बढ़ना आवश्यक हे। केवल दीर्घकाल में ही कृषि कीमतों को कम किया जा सकता है। इसलिए अधिक उपयुक्त नीति फार्म पदार्थों की कीमतों को इस ढंग से स्थिर करना है जिससे किसानों को उत्पादन करने में प्रोत्साहन भी मिले। चौथे, पूँजी निर्माण के लिए सबसे बढ़िया तरीका फार्म प्राप्तियों को बढ़ाने का है। ऐसा बढ़ी हुई फार्म आमदनियों को, कृषि कराधान, भूमिकरों, कृषि सेवाओं पर फीस लगाकर, जुटाया जा सकता है। इस प्रकार, उन देशों में जहां कृषि प्रधान है, सिकी भी रूप में कृषि पर कर लगाना कृषि अतिरेक को जुटाने के लिए आवश्यक है ताकि आर्थिक विकास की गति तीव्र की जा सकें। कुजनेट्स इसे कृषि का **'घटक योगदान'** कहता है जब संसाधनों का अन्य क्षेत्रों में हस्तांतरण होता है, क्योंकि वे संसाधन उत्पादकीय घटक होते है।

5. **औद्योगिक माल के लिए बाजार की व्यवस्था -** कृषि औद्योगिक क्षेत्र द्वारा निर्मित वस्तुओं के लिए बाजार प्रदान करती है। जब कृषि का विकास होता है तथा कृषि उत्पादन में वृद्धि होती है तब कृषकों की आय बढ़ती है। ग्रामीण जनंसख्या की आय बढ़ने से औद्योगिक वस्तुओं की मांग बढ़ती है जिससे फलस्वरूप औद्योगिक क्षेत्र का विस्तार होता है। इस तरह, कृषि विकास, औद्योगिक क्षेत्र के विकास को गति प्रदान करते हुए आर्थिक विकास को स्फूर्ति प्रदान करता है।
6. **औद्योगिक क्षेत्र के लिए श्रम-शक्ति उपलब्ध कराना -** कृषि क्षेत्र का एक अन्य योगदान पूंजीवादी क्षेत्रों के लिये आवश्यक श्रम-शक्ति को उपलब्ध कराना है। कृषिगत विकास के कारण जब उत्पादकता बढ़ती है तो वर्तमन जनसंख्या को खाद्य-सामग्री उपलब्ध कराने के लिए कृषि-क्षेत्र से पहले ही अपेक्षा कम लोगों की आवश्यकता होती है। फलस्वरूप कृषि क्षेत्र में संलग्न श्रम-शक्ति का एक बड़ा भाग अन्य व्यवसायों के लिये मुक्त हो जाता है। विशेष रूप से, विकास की प्रारम्भिक अवस्था में गैर-कृषि क्षेत्रों के लिये श्रम-शक्ति का अधिकांश भाग कृषि-क्षेत्र द्वारा ही उपलब्ध कराया जाता है क्योंकि अन्य क्षेत्र बहुत कम-विकसित होते हैं।
7. **रोजगार के योगदान -** कृषि क्षेत्र आर्थिक विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभाने के साथ-साथ प्रत्यक्ष एवं परोक्ष रूप से अधिकांश जनसंख्या के लिए रोजगार के अवसरों का सृजन भी करता है। विकासशील अर्थव्यवस्थाओं में जनंसख्या का एक बहुत बड़ा भाग कृषि क्षेत्र में कार्य करता है। जनसंख्या में वृद्धि होने के साथ-साथ तद्रुरूप औद्योगिक क्षेत्र में रोजगार के अवसरों में समानान्तर वृद्धि न होने के कारण कृषि क्षेत्र को उत्तरोत्तर अधिक जनसंख्या के लिए रोजगार के अवसर जुटाने होते हैं। उद्योग एवं सेवा क्षेत्र में रोजगार के अवसरों की सृजन हेतु अधिक पूँजी की आवश्यकता होती है जो विकासशील अर्थव्यस्थाओं के लिए सुलभ नहीं है। इसके विपरीत, कृषि क्षेत्र में विकास कार्यों एवं रोजगार के अवसरों

के सृजन हेतु कम पूँजी की आवश्यकता पड़ती है। इस प्रकार वही दूसरी ओर आगामी जनसंख्या के लिए कृषि एवं सम्बद्ध क्षेत्रों में रोजगार के अवसरों के सृजन की अधिक सम्भावना रहती है।

8. **विदेशी विनियम का स्रोत -** अल्पविकसित देश अधिकतर निर्यातों के लिए कुछ कृषि पदार्थों के उत्पादन में विशिटीकरण करते हैं। जब निर्यात योग्य वस्तुओं का उत्पादन और उत्पादकता बढ़ते हैं तो उनके निर्यातों में वृद्धि होती है जिससे वे अधिक विदेशी विनियम कमाते हैं। इस प्रकार कृषि अतिरेक से पूँजी निर्माण होता है। जब इस कमाई गई विदेशी विनिमय में पूँजी पदार्थ आयातित किए जाते हैं। ज्यों-ज्यों औद्योगीकरण से विकास की गति तेज होती है तो देश की कुल निर्यातों में कृषि निर्यातों का अनुपात कम होता जाता है क्योंकि उनकी आयात योग्य वस्तुओं के घरेलू उत्पादन के लिए अधिक मात्राओं में आवश्यकता पड़ती है। ऐसी वस्तुएं आयात स्थानापन्न होती हैं जो विदेशी विनियम को बचाती हैं। इसी प्रकार जब अर्थव्यवस्था खाद्य उत्पादन में आत्म-निर्भरता के लक्ष्य को प्राप्त करने का प्रयास करती है तो खाद्यान्नों के के बढ़े हुए विक्रीत अतिरेक से विदेशी विनिमय में बचत होती है।

   खाद्य तथा निर्यात योग्य फसलों के अधिक उत्पादन से न केवल विदेशी विनिमय की बचत तथा कमाई भी होती है बल्कि अर्थव्यवस्था के अन्य क्षेत्रों का विकास भी होता है। विदेशी विनिमय अर्जनों का प्रयोग दुर्लभ कच्चे माल, मशीने, पूँजी उपकरण तथा तकनीकी ज्ञान का आयात करके, नए उद्योगों की स्थापना करने और अन्य उद्योगों की क्षमता बढ़ाने में किया जा सकता है। कुजनेट्स इसे कृषि का **'पदार्थ योगदान'** कहता है जो पहले, अर्थव्यवस्था के शुद्ध उत्पादन की वृद्धि करता है और दूसरे, प्रति व्यक्ति उत्पादन की वृद्धि।

9. **ग्रामीण कल्याण में सुधार -** ग्रामीण आमदनियों में वृद्धि जो विक्रेय अतिरेक के कारण होती है उससे ग्रामीण कल्याण में सुधार होता है। ग्रामीण उच्च पौष्टिकता वाले पदार्थ जैसे अण्डे, घी, दूध, मछली, फल, बढ़िया किस्म के अनाज आदि का अधिक मात्रा में उपभोग करना प्रारम्भ करते हैं। वे पक्के और अच्छे घरों को निर्माण करते हैं जिनमें वे सभी प्रकार की आधुनिक सुविधाएं जैसे बिजली, फर्नीचर, पंखे, टी. वी., फ्रिज, ट्रांजिस्टर, आदि लगाते हैं। वे स्वयं और अपने परिवार के लिए साईकल, मोटर साईकल अथवा स्कूटर, घड़ियां, बने-बनाए वस्त्र, शूज आदि भी प्रदान करते हैं। वे गांव में अनेक प्रकार की सेवाओं एवं सुविधाओं जैसे स्कूल, स्वास्थ्य केन्द्र, सिंचाई, बैंकिंग, परिवहन, संचार आदि के लिए इंतजाम करके प्रत्यक्ष संतुष्टि प्राप्त करते हैं। इस प्रकार, कृषि अतिरेक के बढ़ने का प्रभाव ग्रामीणों के रहन-सहन के स्तर को ऊँचा करना होता है।

9.6 कृषि: एक पद्लित क्षेत्र (विकासशील देशों के सन्दर्भ में)

कृषि अल्पविकसित देशों का प्रमुख व्यवसाय है फिर भी विकसित राष्ट्रों की अपेक्षा यह व्यवसाय यहां अत्यन्त पिछड़ी हुई अवस्था में हैं। उदाहरण के लिए, अमेरिका और फ्रांस की क्रमशः 8 प्रतिशत तथा 24 प्रतिशत जनसंख्या कृषि कार्य में संलग्न है जबकि अल्पविकसित देशों में 60-70 प्रतिशत लोग इस व्यवसाय से जुड़े हुए हैं। इन देशों में जनाधिक्य के कारण प्रति व्यक्ति तथा प्रति-हेक्टेयर उत्पादन भी अपेक्षाकृत कम है। यही कारण है कि यहां कृषि जीवन-निर्वाह का साधन बनी हुई है तथा यहां के निवासी निर्धनता का जीवन व्यतीत कर रहे हैं।

उल्लेखनीय है कि कृषि क्षेत्र में विकसित देशों की तुलना में विकासशील देशों में प्रति हेक्टेयर उत्पादन काफी कम है। वर्ष 2004-05 में भारत में चावल की पैदावार प्रति हेक्टेअर 2,900 किग्रा थी जबकि चावल का उत्पादन कोरिया में 6,730 किग्रा प्रति हेक्टेअर, अमेरिका में 7,830 किग्रा प्रति हेक्टेअर तथा जापान में 6,420 किग्रा प्रति हेक्टेअर है। इसी तरह गेहूं की प्रति हेक्टेअर औसत उपज यू0के0 में 7,770 किग्रा, फ्रांस में 7,580 किग्रा, चीन मे 4,240 किग्रा तथा भारत में 2,710 किग्रा थी। विश्व के कुछ देशों में प्रति हेक्टेअर औसत उपज के निम्न सारणी में देखा जा सकता है।

सारणी 1, कुछ चुने हुए देशों में प्रति हेक्टेअर उत्पादन (किग्रा), 2004-05

देश	चावल	देश	गेहूं
भारत	2,900	भारत	2,710
कोरिया	6,730	चीन	4,240
मिस्र	9,800	फ्रांस	7,580
जापान	6,420	पाकिस्तान	2,370
यू0एस0ए0	7,830	यू0के0	7,770

स्रोत: आर्थिक समीक्षा, 2006-07

कृषि में नीची उत्पादकता के कारण इन देशों में ग्रामीण जनसंख्या की आय काफी कम है जिससे लोगों का रहन-सहन निम्न-स्तरीय है। फिर, बजत करने के कम क्षमता कृषि में निवेश की दर को सीमित बनाए हुए है। कृषि कार्य पुराने और पिछड़े तरीकों द्वारा किया जाता है जो निम्न-उत्पादकता और निर्धनता के लिए उत्तरदायी है। इस प्रकार अल्प-विकसित देशों में निम्न कृषि-उत्पादकता एक तरफ ग्रामीण जनसंख्या को दरिद्र बनाती है तो दूसरी ओर आर्थिक विकास को सीमित करती है। अतः ऐसे देशों में विकास नीति का प्रमुख उद्देश्य कृषि-उत्पादकता में वृद्धि करके विपणन योग्य अतिरेक को बढ़ाने का होना चाहिये। चूँकि इन देशों का प्रतिकूल सामाजिक तथा संस्थानिक ढाँचा कृषि उत्पादकता की सबसे बड़ी बाधा है इसलिये हमारा पहला प्रयास वर्तमान ग्रामीण-ढाँचे में बदलाव लाने और उसे विकासेन्नमुख बनाने का होना चाहिए।

भू-व्यवस्था, भूमि सुधार और आर्थिक विकास -

भूव्यवस्था तथा भूमि सुधारों का उद्देश्य उत्पादन के सामाजिक सम्बन्धों को ऐसा स्वरूप प्रदान करता है, जिसके फलस्वरूप कृषि उत्पादन को अधिकतम किया जा सकें।किसी देश का कृषिगत विकास काफी हद तक भूमि सम्बन्धी व्यवस्था पर निर्भर करता है। भूमि व्यवस्था से अभिप्राय भू-धारण की पद्धति, भू-स्वामित्व सम्बन्धी कानून, काश्त का स्वरूप, जोतों का आकार, लगान सम्बन्धी नियम, कृषि साख की व्यवस्था, कृषि उत्पादन तथा विपणन आदि बातों से लगाया जाता है। इस प्रकार भू-व्यवस्था एक अत्यन्त विस्तृत शब्द है जिसके अन्तर्गत ग्रामीण जीवन को प्रभावित करने वाल सभी बातें आ जाती है। भू-व्यवस्था का कृषिगत विकास से निकटतम सम्बन्ध है और इसलिये इसका प्रभाव आर्थिक विकास को बढ़ाने या अवरूद्ध करने का हो सकता है। दोषपूर्ण भूमि-व्यवस्था कृषि उत्पादकता को घटाकर आर्थिक विकास को धीमा करती है जबकि सुदृढ़ कृषि-व्यवस्था और भूमि सुधार कार्यक्रम उत्पादकता-वृद्धि और निवेश-प्रेरणा के रूप में आर्थिक विकास का बढ़ावा देते हैं।

सभी देशों में कृषि क्षेत्र में उत्पादन के सामन्ती सम्बन्ध आर्थिक विकास में बाधक सिद्ध हुए है। यही कारण है कि यूरोप में औद्योगिक क्रान्ति के दौरान भूमि सुधारों के द्वारा सामन्ती व्यवस्था को समाप्त कर दिया गया था। इसी प्रकार संयुक्त राज्य अमेरिका, जापान, ताईवान, मैक्सिको तथा भारत में भी भूमि सुधारों के द्वारा आर्थिक विकास के लिए रास्ता खोला गया है।

संयुक्त राष्ट्र संघ के एक प्रतिवेदन के अनुसार, ***''अल्पविकसित देशों की दोषपूर्ण काश्तकारी व्यवस्था इनके कृषिगत विकास की सबसे बड़ी बाधा है तथा भूमि-सुधार के प्रति जागरूकता व क्षमता की कमी निम्न उत्पादकता का कारण है। इसके परिणामस्वरूप पिछड़ी हुई कृषि-व्यवस्था, पिछड़े आर्थिक विकास का स्वरूप् ग्रहण कर लेती है।''***

प्रतिवेदन के अनुसार अल्पविकसित देशों की दोषपूर्ण भूमि-व्यवस्था के दुष्परिणाम इस प्रकार सामने आते हैं:

1. असुरक्षित काश्त के कारण कृषकों में उत्पादकता की प्रेरणा नहीं रहती।
2. उपज का एक बड़ा भाग अनुपर्जित आय के रूप में भू-स्वामी को प्राप्त होता है जबकि कृषक को मात्र न्यूनत जीवन-निर्वाह भर ही उपलब्ध हो पाता है। इसके परिणामस्वरूप एक तरफ भूमि पर निवेश की क्षमता व प्रेरणा घटती है तो दूसरी तरफ समाज में वर्ग-भेद का जन्म होता है जो सामाजिक तनाव को बढ़ाता है तथा सामाजिक क्रान्ति का मार्ग प्रशस्त करता है।

भूमि व्यवस्था में सुधार का कृषि विकास पर प्रत्यक्ष प्रभाव पड़ता है, क्योंकि भू-व्यवस्था किसानों के हित में हो जाती है और किसान कृषि उत्पादन बढ़ाने हेतु सभी सकारात्मक प्रयास करते है जो कृषि विकास में सहायक होता है मुख्य रूप से भूमि सुधार कृषि विकास पर निम्न प्रकार प्रभावित करता है।

1. भूमि सुधार कार्यक्रम काश्त की सुरक्षा प्रदान करके भूमि में विनियोग तथा स्थायी सुधार लाने की सम्भावना को बढ़ाते हैं।
2. चकबन्दी द्वारा अनार्थिक जोतों पर रोक लगाने से कृषि के यन्त्रीकरण को बढ़ावा मिलता है।
3. भूमि सुधार से खेती के तरीकों और श्रमिकों की कार्यकुशलता में सुधार होता है जिससे कृषि-उत्पादकता बढ़ जाती है।
4. भूमि सुधार कार्यक्रमों से किसानों की आर्थिक स्थिति में सुधार होता है और
5. सरकारी राजस्व में भी वृद्धि होती है।
6. भू-सुधार द्वारा किसानों तथा सरकार में सीधा सम्बन्ध स्थापित हो जाता है। जिससे सरकार द्वारा दी जानी वाली विभिन्न सहायताओं का वह आसानी से लाभ उठा सकते है।
7. भू-सुधार के दौरान प्राप्त अतिरिक्त जमीन भूमिहीन किसानों में बाँटना।

वास्तव में, इन देशों के सन्तुलित आर्थिक विकास एवं सामाजिक न्याय सहित विकास के लिए भूमि व्यवस्था में सुधार की प्रक्रिया को अपनाना आवश्यक है। विकास की ओर उन्मुख धनी आबादी वाले ये देश, जहां व्यापक बेरोजगारी, अर्ध-बेरोजगारी विद्यमान है, कृषि विकास की अवहेलना नहीं कर सकते। खाद्यान्नों में आत्म निर्भरता प्राप्त करना तथा कुल उत्पादन एवं उत्पादकता में वृद्धि करके विपणन योग्य आधिक्य का सृजन करना इन देशों की आर्थिक प्रगति के लिए आवश्यक है। सत्य तो यह है कि कृषि क्षेत्र में पर्याप्त उन्नति किए बिना तीव्र

आर्थिक विकास की कोई भी योजना फलीभूत नहीं हो सकती। सन्तोष का विषय है कि आज विश्व के अधिकांश अल्पविकसित देश कृषि विकास की दिशा में सकारात्मक रूख अपनाए हुए हैं तथा देश के आर्थिक विकास की आवश्यकता के अनुरूप कृषिगत विकास हेतु सतत प्रयासरत है।

9.7 कृषि क्षेत्र विकास बनाम औद्योगिक क्षेत्र विकास

अल्पविकसित देशों के आर्थिक विकास की प्रक्रिया में कृषि के विकास को प्राथमिकता प्रदान की जाए अथवा औद्योगीकरण की नीति को अपनाया जाए, यह वाद-विवाद का विषय रहा है। अन्य शब्दों में, यह जानना आवश्यक है कि कृषि विकास तथा औद्योगीकरण एक-दूसरे के पूरक हैं अथवा प्रतियोगी ? वास्तविकता में तो यह है कि कृषि विकास तथा औद्योगीकरण परस्पर विरोधी धारणा न होकर एक-दूसरे के पूरक हैं। विकासशील देशों में आर्थिक विकास को गति प्रदान करने के लिए दोनों क्षेत्रों का साथ-साथ विकास होना आवश्यक है। ये एक-दूसरे से घनिष्ठ रूप से सम्बन्धित तथा आर्थिक विकास की दो संयुक्त एवं प्रेरक शक्तियां हैं। इस कथन में सत्यता का पर्याप्त अंश होने के बावजूद कुछ अर्थशास्त्री केवल कृषिगत विकास के पक्षपाती हैं तो कुछ औद्योगीकरण के समर्थक हैं तो कुछ विचारक ऐसे भी हैं जो दोनों क्षेत्रों में सामंजस्य बनाए रखने के पक्षधर हैं। उपरोक्त विचारधाराओं के सन्दर्भ में इनका तुलनात्मक अध्ययन आवश्यक है।

प्रथम मत: कृषि औद्योगीकरण की जननी है -

इस मत के समर्थकों का कथन है कि कृषि औद्योगीकरण का आधार तथा आर्थिक विकास की कुंजी है। यदि विकसित देशों के आर्थिक इतिहास पर दृष्टि डाली जाए तो यह ज्ञात होता है कि कृषि विकास के सोपान पर चढ़कर ही ये देश औद्योगिक विकास के शिखर पर पहुँचे हैं। अन्य शब्दों में, कृषि विकास के अनुसार, ***"आर्थिक इतिहास के अध्ययन से यह स्पष्ट हो चुका है कि लगभग प्रत्येक औद्योगिक देश की प्रारम्भिक अवस्था में उद्योगों का विकास कृषकों की शक्ति पर निर्भर रहा है।"***

बावर एवं यामे के अनुसार, "***वर्तमान में औद्योगिक दृष्टि से विकसित कहे जाने वाले देश अतीत में मूलरूप से कृषि प्रधान देश रहे हैं। इतिहासकारों द्वारा की गई खोज से पता चलता है कि इन देशों में प्रगतिशील एवं विकासयुक्त कृषि ने विनिर्माणी उद्योगों की स्थापना एवं विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है।"***

संयुक्त राष्ट्र संघ के एक प्रतिवेदन में भी इस तथ्य को स्वीकार करते हुए कहा गया है कि ***"कृषि क्षेत्र में पूरक परिवर्तन किए बिना औद्योगिक क्षेत्र का असन्तुलित एवं तीव्र विकास, अर्थव्यवस्था में ऐसी दशाएं उत्पन्न कर सकता है जिससे कि आर्थिक विकास पूर्णतया अवरूद्ध हो जाए, जैसे - भुगतान सन्तुलन की कठिनाईयां, मुद्रास्फीति, अत्यधिक नगरीकरण तथा सामाजिक ढांचे का विकृत होनपा आदि।"***

इस सम्बन्ध में अपने मत व्यक्त करतेम हुए **प्रो. रोस्टोव** ने लिखा है कि ***"कृषि उत्पादन औद्योगीकरण के लिए मूलभूत कार्यशील पूँजी है।"***

श्री एच. मिन्ट के मतानुसार, ***"विनिर्माणी उद्योगों का निरन्तर विकास, कृषि क्षेत्र के विकास के बिना अधिक समय तक सम्भव नहीं है क्योंकि अर्थव्यवस्था के विकास की दर अंततः कृषि के विकास की दर पर निर्भर करती है।"***

संक्षेप में, आर्थिक विकास की दृष्टि से कृषि के विकास को निम्नलिखित कारणों से महत्वपूर्ण समझा जा सकता है:

1. कृषि विकास से निरन्तर बढ़ती हुई जनसंख्या के खाद्य-सामग्री सुलभ होती है।
2. अनेक विनिर्माणी उद्योगों को कच्चा माल कृषि से ही प्राप्त होता है। सूती वस्त्र, चीनी, पटसन, चाय, कॉफी, रबड़, वनस्पति घी, तेल, आदि अनेक उद्योग अपने कच्चे माल के लिए मुख्य रूप् से कृषि पर ही निर्भर है। इसके अतिरिक्त अन्य लघु उद्योगों को भी कच्चा माल कृषि से प्राप्त होता है।
3. कृषि क्षेत्र, उद्योगों को पूँजी प्रदान करने के साथ-साथ नई औद्योगिक वस्तुओं के लिए बाजार तैयार करता है।
4. कृषिगत उपज का निर्यात करके औद्योगीकरण के लिए आवश्यक मशीनें एवं उपकरण आयात किए जा सकता है।
5. इससे विनियम-अर्थव्यवस्था का विकास होता है, साहसिक तथा प्रशासकीय योग्यता को बल मिलता है और यह आधुनिक औद्योगिक अर्थव्यवस्था के सफल संचालन को सम्भव बनाता है।

कृषि के विकास के महत्व को स्पष्ट करते हुए प्रसिद्ध अर्थशास्त्री **कोल एवं हूबर** ने लिखा है कि ***"सम्पूर्ण अर्थव्यवस्था के लिए कृषि का विकास पहले होना चाहिए।"***

दूसरा मत: औद्योगीकरण आर्थिक विकास की कसौटी है -

आर्थिक विकास में कृषि विकास महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है फिर भी अर्थशास्त्रियों ने औद्योगीकरण को तीव्र आर्थिक विकास की कसौटी माना है। उनका तर्क है कि विकासशील देशों के तीव्र आर्थिक विकास के लिए औद्योगीकरण परम आवश्यक एवं महत्वपूर्ण है। विभिन्न प्रकार के उद्योगों के अभाव में देश का समुचित विकास होना अधूरा ही रहेगा। विश्व की विकसित अर्थव्यवस्थाएं औद्योगीकरण के माध्यम से ही आज आर्थिक विकास के उन्नत शिखर पर पहुंच सकी हैं। अधिकांशतया कृषि की अपेक्षा उद्योगों में प्रति व्यक्ति आय एवं उत्पादन अधिक होता है। आन्तरिक व बाह्य बचतें आसानी से प्राप्त की जा सकती हैं। औद्योगीकरण के फलस्वरूप तकनीकी ज्ञान, बाजार का क्षेत्र तथा आय आदि में वृद्धि की प्रवृत्ति बढ़ती है जिसके फलस्वरूप अर्थव्यवस्था के विभिन्न क्षेत्रों में विकास के लक्षण परिलक्षित होने लगते हैं। कुछ लोगों का तो यहां तक कहना है कि अल्पविकसित देशों को कृषि की अपेक्षा औद्योगीक विकास पर अधिक बल देना चाहिए क्योंकि कृषि एवं आर्थिक विकास अतंतः देश के औद्योगीकरण के ढांचे पर निर्भर करता है। आर्थिक विकास हेतु औद्योगीकरण की आवश्यकता एवं महत्व को निम्नवत् प्रस्तुत किया जा सकता है।

1. देश के आर्थिक विकास के लिए कुछ राष्ट्रीय उत्पादन एवं उत्पादकता में वृद्धि आवश्यक है। उद्योग-धन्धों के विकास से इस उद्देश्य की पूर्ति की जा सकती है। उद्योगों में कृषि की अपेक्षा प्रति व्यक्ति उत्पादन अधिक होता है। अर्थात् उद्योगों में विकास की दर ऊँची होती है।
2. अल्पविकसित देशों में कृषि एक अनिश्चित व्यवसाय होता है। इसमें क्रमागत उत्पत्ति ह्रास नियम शीघ्र ही क्रियाशील होने लगता है।
3. औद्योगीकरण से देश में पूँजी निर्माण की दर को अधिक बल मिलता है। पूँजी निर्माण में वृद्धि तभी सम्भव है जब देश में बचतें अधिक मात्रा में हों तथा उसे लाभप्रद उत्पादन में लगाने के लिए क्षेत्र और अवसर अधिक हों। औद्योगीकरण से आय में वृद्धि होती है। आय में वृद्धि के साथ-साथ सीमान्त बचत प्रवृत्ति में भी वृद्धि होती है, साथ ही उद्योग-धन्धों में पूँजी लगाने के लिए क्षेत्र और अवसर में वृद्धि होती है। इस तरह, औद्योगीकरण पूँजी निर्माण में सहायक है।
4. प्रति व्यक्ति आय एवं जीवन-स्तर में वृद्धि की सम्भावना कृषि की अपेक्षा औद्योगीकरण में अधिक होती है। ऐसा विकसित देशों के आर्थिक इतिहास से स्पष्ट होता है।
5. कृषि में उत्पादन एवं उत्पादकता बढ़ाने के लिए आवश्यक रासायनिक खादों, कीटनाशकों, कृषि संयन्त्रों, उपकरणों तथा बिजली आदि महत्वपूर्ण सुविधाएं औद्योगीक विकास से ही सुलभ हो सकेंगी।
6. उत्पादन एवं तकनीक प्रगति मुख्य रूप से औद्योगीकरण की ही देन है।

समन्वित दृष्टिकोण: दोनों का विकास साथ-साथ हो!

उपर्युक्त अध्ययन से स्पष्ट है कि कृषि-विकास तथा औद्योगीकरण की नीति के बीच किसी प्रकार का चुनाव करना न्यायसंगत न होना क्योंकि ये दोनों क्षेत्र न केवल परस्पर पूरक हैं बल्कि आर्थिक विकास की दो ऐसी समानान्तर शक्तियाँ हैं जिन्हें एक ही धरातल पर बनाये रखना आवश्यक है। यूजीन स्टेनले ने इन दोनों क्षेत्रों की पूरकता सिद्ध करते हुए कहा है कि ***"कृषि उत्पादकता में सुधार औद्योगीकरण को प्रोन्नत करने का एक ठोस साधन है। जब तक कृषि का आधुनिकीकरण नहीं हो जाता जब तक अल्प-विकसित देशों में, जनंसख्या के एक बड़े भाग के पास निम्न क्रय-शक्ति के रूप में बाजारों का अभाव औद्योगिक विस्तार को सीमित कर देगा। इसी प्रकार कृषिगत विकास भी तब तक सम्भव नहीं है जब तक जन-शक्ति को रोजगार दिलाने और आधुनिक कृषि के लिये आवश्यक सम्भार, यन्त्र तथा सेवाओं को ठोस तकनीकी आधार प्रदान करने के लिये तीव्र औद्योगिक विकास न हो जाये"*** भारत में भी कृषि तथा औद्योगीकरण के सह-अस्तित्व अर्थात् समन्वित विकास को स्वीकार कर लिया गया है।

पी. काँग. चाँग के मतानुसार ***"कोई भी देश औद्योगीक दृष्टि से कितना ही उन्नतशील क्यों न हो, वह कृषि तथा उद्योगों के बीच एक वांछित सन्तुलन स्थापित किये बिना न तो अपनी आर्थिक क्रियाओं को जारी रख सकता है और न ही दीर्घकालीन विकास कर सकता है।"***

अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष की एक विज्ञप्ति के अनुसार, ***"यह नहीं मान लेना चाहिए कि विकास के क्षेत्र में उद्योगों का अत्यधिक संकेन्द्रण अल्प-विकसित देशों के हित में होगा। परन्तु इसका यह अभिप्राय भी***

नहीं कि इस प्रकार के देशों में औद्योगीकरण की नितान्त उपेक्षा की जाए, वरन् कृषि तथा औद्योगिक दोनों क्षेत्रों में उत्पादन को बढ़ाकर सन्तुलित विकास की नीति अपनाई जानी चाहिए।"

श्री मुर्रे का कहना है कि ***"इन दोनों क्षेत्रों का विकास घनिष्ठ रूप से अन्तर्सम्बन्धित है और इनमें से प्रत्येक क्षेत्र दूसरे पर निर्भर करता है। अतः आर्थिक विकास की नीति, कृषि तथा उद्योग दोनों में उत्पादन को बढ़ाने की दृष्टि से संतुलित विकास पर आधारित होनी चाहिए?"***

इस प्रकार कृषि और औद्योगिक उत्पादन परस्पर सम्बन्धित हैं और प्रत्येक दूसरे की वृद्धि को ऊपर वर्णित तरीकों से प्रभावित करता है। इसलिए अल्पविकसित देशों को अर्थव्यवस्था की सतत वृद्धि के लिए कृषि और उद्योग का सुसंगत ढंग से विकास करना चाहिए।

9.8 अभ्यास प्रश्न

रिक्त स्थान भरों:-

1. आज भी ..... विश्व की अधिकांश जनंसख्या का प्रमुख व्यवसाय तथा आय का सबसे बड़ा स्रोत है।
2. भारतीय संस्कृति में पृथ्वी (भूमि) को ..... के समान माना गया है।
3. प्रसिद्ध विचारक अरस्तु..... द्वारा ही द्रव्य उपार्जन को प्राकृतिक मानते थे।
4. प्रकृतिवादियों का मानना था कि केवल..... की सुदृढ़ व टिकाऊ साम्राज्य स्थापित कर सकता है।
5. विकास-प्रक्रिया में कृषि विकास को ..... स्थान दिया जाना चाहिए।
6. प्रो0 शुल्टज के अनुसार कोई भी अल्प विकसित राष्ट्र..... में आत्म-निर्भरता प्राप्त किये बिना आर्थिक विकास की कल्पना नहीं कर सकता।
7. आर्थिक विकास वह प्रक्रिया है जिसके अन्तर्गत मानवीय प्रयत्नों द्वारा कोई देश अर्थव्यवस्था के सभी क्षेत्रों में ..... में वृद्धि कर अपनी वास्तविक..... आय में वृद्धि करते है।
8. .....के शब्दों में - आर्थिक विकास का अर्थ, प्रति व्यक्ति उत्पादन के वृद्धि से लगाया जाता है।
9. आर्थिक विकास वह..... प्रक्रिया है।
10. .....सभी उद्योगों की जननी और मानव जीवन की पोषक रही है।
11. प्रमुख अर्थशास्त्री किण्डलवर्जर ने ..... महत्वपूर्ण कारक बताए है जिनके द्वारा कृषि क्षेत्र आर्थिक विकास में मदद पहुँचाता है।
12. साइमन कुजनेट्स ने आर्थिक विकास में कृषि की भूमिका को ..... भागों में बांटा है।
13. नर्क्से के अनुसार, वास्तविक क्रय-शक्ति का अभाव होता है जो कृषि में ..... उत्पादकता को व्यक्त करती हैं।
14. कुजनेट्स इसे कृषि का..... कहता है जो पहले, अर्थव्यवस्था के शुद्ध उत्पादन की वृद्धि करता है और दूसरे, प्रति व्यक्ति उत्पादन की वृद्धि।

15. कुजनेट्स इसे कृषि का ..... कहता है जब संसाधनों का अन्य क्षेत्रों में हस्तांतरण होता है, क्योंकि वे संसाधन उत्पादकीय घटक होते है।
16. भू-व्यवस्था एक ..... शब्द है जिसके अन्तर्गत ग्रामीण जीवन को प्रभावित करने वाल सभी बातें आ जाती है।

9.9 सांराश

इस इकाई के अध्ययन से आप समझ गये होंगे कि कृषि और आर्थिक विकास का सम्बन्ध मानव सभ्यता के प्रारम्भ से ही रहा है। प्राचीन आर्य संस्कृति, यूरोपियन तथा प्रकृतिवादों ने भी कृषि के महत्व को स्वीकार किया। यद्यपि आर्थिक विकास का अभिप्राय उत्पादन, आय वृद्धि, प्रतिव्यक्ति आय वृद्धि तथा सामाजिक कल्याण से लगाया जाता है। लेकिन कृषि विकास ही किसी अर्थव्यवस्था की नींव मजबूत होती है। कृषि के द्वारा ही खाद्य पदार्थों की आपूर्ति होती है, उद्योगों के लिए कच्चेमाल की आपूर्ति होती है, पूँजी निर्माण में सहायक, रोजगार का मुख्य आधार है। विदेशी मुद्रा की प्राप्ति तथा ग्रामीण कल्याण को बढ़ावा मिलता है।

आर्थिक विकास हेतु भू-व्यवस्था तथा भूमि सुधार एक महत्वपूर्ण शर्त है। क्योंकि भूमि सुधार द्वारा कृषि विकास सम्भव है और कृषि विकास द्वारा आर्थिक विकास होता है। संस्थागत स्रोत- जिनकी कार्यप्रणाली निश्चित नियमों पर आधारित होती है। अल्पविकसित देशों के आर्थिक विकास की प्रक्रिया में कृषि के विकास को प्राथमिकता प्रदान की जाए अथवा औद्योगीकरण की नीति को अपनाया जाए। इन दोनों क्षेत्रों का विकास घनिष्ठ रूप से अन्तर्सम्बन्धित है और इनमें से प्रत्येक क्षेत्र दूसरे पर निर्भर करता है। अतः आर्थिक विकास की नीति, कृषि तथा उद्योग दोनों में उत्पादन को बढ़ाने की दृष्टि से संतुलित विकास पर आधारित होनी चाहिए।

9.10 शब्दावली

- **प्राथमिक क्षेत्र -** कृषि, खनन व मत्स्य उद्योग
- **कृषि का व्यवसायीकरण -** लाभ प्राप्ती के उद्देश्यों से कृषि करना।
- **वाणिज्य बैंक-** व्यापारिक बैंक जो लाभ प्राप्ति के लिए धन का लेने-देन करते हैं।
- **काश्तकार-** जो लोग किसी दूसरे की भूमि पर ठेके पर कृषि करता है।
- **अनुदान/रियायत -** सरकार द्वारा दी जाने वाली आर्थिक सहायता का रूप जो किसी वस्तु या सेवा के उपयोग पर प्राप्त हो।
- **कृषि विपणन-** कृषि उत्पादन की विक्रय/बिक्री व्यवस्था।

9.11 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

(1) कृषि (2) माता (3) कृषि व पशुपालन (4) कृषक-राष्ट्र
(5) प्राथमिक (6) खाद्यान्नों (7) उत्पादन एवं उत्पादकता; प्रति व्यक्ति आय
(8) प्रो. लुईस (9) सतत प्रक्रिया (10) कृषि (11) छः महत्वपूर्ण कारक
(12) तीन भागों (13) कम उत्पादकता (14) पदार्थ योगदान (15) घटक योगदान
(16) अत्यन्त विस्तृत

9.12 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

- माथुर बी0 एल0; (2011) *कृषि अर्थशास्त्र*; अर्जुन पब्लिशिंग हाऊस, नई दिल्ली।
- गुप्त डॉ0 शिव भूषण'; (2010) *कृषि अर्थशास्त्र* साहित्य भवन आगरा
- Singh, S.P. (2010), *Economics of Development and Planning and Practices* Sultan Chand Publishing House.
- Mishra, S.K. and Puri, V. K.(2007), *Economics of Development and Planning Theory and Practice* Himalaya Publishing House.
- Dhingra, I. C. (2009), *Development Economics* Sultan Chand and Sons.

9.13 सहायक/उपयोग पाठ्य सामग्री

- Taylor, H.C., (1949),'*Outlines of Agricultural Economic's*, MacMillan
- Ghatak, S and K. Ingerscant (1984), '*Agriculture and Economic Development*'; Select books, New Delhi.
- Sandh A. N., Singh, Amarjit (2009), 'Fundamentals *Agricultural Economics*', Himalaya Publishing House.
- Desai, R.G. (2009), '*Agricultural Economics*', Himalaya Publishing House.
- Dantawala, M.L. et al. (1991): '*Indian Agricultural Development since Independence*', Oxford & IBH, New Delhi.
- Hayami, Yujiro, Godo, Yoshihisu, (2004), "*Development Economics*" Oxford University Press India.

9.14 निबन्धात्मक प्रश्न

1. आर्थिक विकास से आप क्या समझते है? कृषि तथा आर्थिक विकास में क्या सम्बन्ध है ?
2. कृषि क्षेत्र की आर्थिक विकास में भूमिका पर प्रकाश डालिए।
3. कृषि क्षेत्र भू-व्यवस्था का आर्थिक विकास पर क्या प्रभाव पड़ता है?
4. अल्पविकसित देशों के आर्थिक विकास की प्रक्रिया में कृषि के विकास को अथवा औद्योगीकरण को प्राथमिकता प्रदान की जाए व्याख्या करो।

इकाई 10- औद्योगिक क्षेत्र और आर्थिक विकास

(Industrial Sector and Economic Development)

10.1 प्रस्तावना

10.2 उद्देश्य

10.3 औद्योगिक क्षेत्र और आर्थिक विकास

10.4 आयात स्थानापन्नता तर्क - आयात स्थानापन्नता और आर्थिक विकास

10.5 शिशु उद्योग तर्क - शिशु उद्योग और आर्थिक विकास

10.6 अभ्यास प्रश्न

10.7 सांराश

10.8 शब्दावली

10.9 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

10.10 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

10.11 सहायक/उपयोग पाठ्य सामग्री

10.12 निबन्धात्मक प्रश्न

10.1 प्रस्तावना

इस इकाई से पहले आप आर्थिक विकास में कृषि क्षेत्र के योगदान की विस्तृत जानकारी प्राप्त कर चुके है। इस इकाई में आर्थिक विकास में औद्योगिक क्षेत्र के योगदान की विस्तृत जानकारी प्रस्तुत की जा रही है। इस इकाई के अध्ययन से आप को औद्योगीकरण के दो महत्वपूर्ण तर्कों - आयात स्थानापन्नता तर्क और शिशु उद्योग तर्क की जानकारी प्राप्त हो जायेगी।

10.2 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन से आप:-

- ✓ आर्थिक विकास में औद्योगिक क्षेत्र की भूमिका को जान सकेंगे।
- ✓ तीव्र औद्योगिक विकास हेतु आयात स्थानापन्नता तर्क और शिशु उद्योग तर्क की जानकारी प्राप्त हो जायेगी।
- ✓ औद्योगीकरण में शिशु उद्योग तर्क की विस्तृत जानकारी प्राप्त कर लेगें।

10.3 औद्योगिक क्षेत्र और आर्थिक विकास

औद्योगिक प्रगति तीव्र आर्थिक विकास की एक आवश्यक शर्त है। विकसित देश औद्योगिक विकास के उच्च स्तर के बलबूते पर ही अपना तीव्र विकास कर सके है। जबकि इसके विपरित अल्पविकसित देशों की अथाह गरीबी काफी हद तक उनके औद्योगिक पिछड़ेपन का परिणाम है। इन देशों में वैज्ञानिक ज्ञान और आधुनिक तकनीकी की ने केवल कमी है, बल्कि औद्योगिक प्रगति करने की उत्कण्ठा, तकनीकी परिवर्तन लाने की पहल और उसके लिए उपयुक्त आधारभूत ढाँचे का अभाव भी होना है। इसमें कोई सन्देह नहीं, कि अल्पविकसित देशों को आर्थिक विकास के लिए तीव्र औद्योगिक विकास को अपनाना होगा, जिससे वह भी विकास के पथ पर अग्रसर हो सके।

औद्योगिक विकास हेतु बड़ी मात्रा में उद्योगों की स्थापना की जाती है। उद्योगों का कार्य वस्तुओं और सेवाओं को मानव-प्रयास द्वारा वाणिज्यक उत्पादन में परिवर्तन करना है। उद्योग शब्द लैटिन भाषा के शब्द Industria से बना है, जिसका अर्थ हैं - कुछ प्रयोजन के लिए गतिविधि को निर्देशित करना। प्राचीन फ्रांसीसी Industrie शब्द का प्रयोग मूलरूप से **'कौशल'**, **'एक युक्ति'** और **'परिश्रम'** के लिए किया जाता था। औद्योगिक क्रान्ति के दौरान अधिक से अधिक मानव प्रयास वस्तुओं और सेवाओं के उत्पादन में शामिल हो गयें। किसी देश में श्रम शक्ति को रोजगार उपलब्ध कराने तथा राष्ट्रीय आय में योगदान के आधार पर अर्थव्यवस्था कृषि, उद्योग व सेवा क्षेत्र का प्रतिनिधित्व करती है। उद्योग आधारित अर्थव्यवस्था में वस्तुओं और सेवाओं का उत्पादन होता है। औद्योगिक क्रान्ति के दौरान यूरोपीय व अमेरिकी देश में विनिर्माण उद्योग वस्तु-सेवा उत्पादन व श्रम का प्रमुख क्षेत्र बन गयें है। जिससे औद्योगिक क्षेत्र में तीव्र प्रगति हुई है। औद्योगिक क्रान्ति के बाद दुनिया के आर्थिक उत्पादन का लगभग एक तिहाई विनिर्माण उद्योगों से प्राप्त होता है। कई विकसित व विकासशील देश की अर्थव्यवस्था का मुख्य आधार उद्योग ही है।

औद्योगिक क्षेत्र के विकास के लिए उद्योगों को विभिन्न प्रकार से वर्गीकृत किया जा सकता है। प्राथमिक या कृषि उद्योग, माध्यमिक, द्वितीयक या विनिर्माण तथा तृतीय या सेवाएं। कुछ विचारक इसमें ज्ञान, संस्कृति तथा अनुसंधान को भी शामिल करते है। प्राथमिक क्षेत्र में पृथ्वी से सम्बन्धित संसाधनों-कृषि, खनन तथ मत्स्य उद्योग को शामिल किया जाता है। द्वितीयक क्षेत्र में प्राथमिक उद्योगों के प्रसंस्करण उत्पादों को शामिल किया जाता है, जिसमें निर्माण, विनिर्माण तथा प्रसंस्करण उद्योग आते है। तृतीयक क्षेत्र में सेवायें - शिक्षा, प्रबन्धन व व्यापार सम्बन्धी सेवाओं को शामिल किया जाता है। उद्योग के कई अन्य प्रकार भी होते है जैसे - बाजार आधारित उद्योग के कई अन्य प्रकार भी होते है जैसे - आजार आधारित उद्योग, ग्लोबल उद्योग, वित्तीय उद्योग व व्यापारिक सम्बन्धी उद्योग/ बाजार व सम्बन्धित उत्पादों के हिसाब से उद्योग को पहचाना जाता है, जैसे - रासायनिक उद्योग, पेट्रोलियम, मोटर वाहन, इलेक्ट्रॉनिक, खाद्य, मछली, कागज, मनोरंजन तथा संस्कृतिक उद्योग आदि।

आर्थिक विकास में उद्योग की बहुत महत्वपूर्ण भूमिका है। अल्पविकसित देश कृषि प्रधान होतें हैं जिनमें केवल उपभोक्ता वस्तुओं से सम्बन्धित कुछ उद्योग पाए जाते हैं। ऐसे देशों में बिना औद्योगीकरण के कृषि, परिवहन, संचार, निर्यात, रोजगार आदि में वृद्धि संभव नहीं है। औद्योगीकरण के पक्ष में निम्नलिखित तर्क दिए जाते हैं:

औद्योगीकरण उपभोक्ता वस्तुओं तथा पूँजी पदार्थों एवं सामाजिक उपरि पूँजी (social overhead capital) के निर्माण की प्रक्रिया है। जिससे व्यक्तियों और व्यवसायों को वस्तुएँ एवं सेवाएं प्रदान की जाती हैं। इस प्रकार औद्योगीकरण विभिन्न देशों के आर्थिक विकास में निम्नलिखित कारणों से मुख्य भूमिका निभाता है:

1. **कृषि में आगतों की पूर्ति:-** अधिक जनसंख्या वाले अल्पविकसित देशों में भूमि पर अत्यधिक दबाव होता है जिससे जोतें उपविभाजित और टुकड़े-टुकड़े होती हैं तथा किसान परंपरागत खेती करते हैं। वे तीव्र आर्थिक विकास के लिए कृषि तरीकों में परिवर्तन आने तक इंतजार नहीं कर सकते। इसलिए उन्हें खेतों पर उत्पादकता बढ़ाने के लिए उर्वरक, मशीनरी तथा अन्य लागतों की पूर्ति हेतु औद्योगिक विकास प्रांरभ करना आवश्यक है।
2. **कृषि का व्यापारीकरण:-** औद्योगीकरण से कृषि का व्यापारीकरण होता है। कृषि के व्यापारीकरण से अभिप्राय है कि कृषि को उतना लाभदायक बनाना जितना कि उद्योग, जिससे कृषि घरेलू और विदेशी मार्केट की माँग पूरी करने की क्षमता रखती हो। ऐसा औद्योगीकरण द्वारा कृषि में मूल परिवर्तनों से होता है जब कृषि के आधुनिकीकरण से निर्वाह खेती की बजाय व्यापारिक खेती प्रारम्भ होती है। परिवहन और संचार के साधनों का विकास होता है। किसान सहायक धंधे जैसे दूध, घी मक्खन, आदि का उत्पादन, फूल, फल, सब्जी आदि उगाना; मुर्गी, मछली आदि का पालन करते हैं। इससे रोजगार का विविधीकरण होता है। कृषि-उत्पादन बढ़ता है। ग्रामीण जनंसख्या की प्रति व्यक्ति आय में वृद्धि होती है।
3. **शहरों और रोजगार और आय में वृद्धि:-** औद्योगीकरण से शहरों में रोजगार के साधनों में वृद्धि होती है जिससे आय बढ़ती है। औद्योगिक क्षेत्रों में नयी तकनीकों तथा नयी और विविध कुशलताओं से उद्योगों के लाभ बढ़ते हैं जिससे बचतें अधिक होती हैं तथा वस्तुओं एवं सेवाओं के लिए मांग में वृद्धि होती है और आगे निवेश प्रोत्साहित होता है।

4. रोजगार प्रदान करना:- कृषि क्षेत्र में बेरोजगार तथा अल्परोजगार को रोजगारा प्रदान करने के लिए औद्योगीकरण आवश्यक है। ऐसे व्यक्तियों का सीमांत उत्पाद शून्य या नगण्य होता है और उन्हें कृषि उत्पादन में बिना किसी कमी अथवा नुकसान के कृषि से उद्योग में स्थानांतरित किया जा सकता है। क्योंकि कृषि की अपेक्षा उद्योग में श्रम का सीमांत उत्पाद अधिक होता है, इसलिए ऐसे वर्करों को औद्योगिक क्षेत्र में स्थानान्तरण करने से कुल उत्पादन बढ़ेगा। इसलिए अतिजसंख्या वाले अल्पविकसित देशों के लिए औद्योगीकरण के अलावा और कोई विकल्प नहीं है।

5. व्यापार की शर्तें सुधारना:- ऐसे देशों की प्राथमिक वस्तुओं के अन्तर्राष्ट्रीय मार्केट में उतार-बढ़ाव के कारण उनकी व्यापार शर्तों में ह्रास हो जाता है, जिनमें सुधार करने के लिए औद्योगीकरण आवश्यक है। वे मुख्य तौर से प्राथमिक वस्तुएं निर्यात करते हैं तथ निर्मित वस्तुएं आयात करते हैं। विकसित देशों की संरक्षणात्मक नीतियों के कारण प्राथमिक वस्तुओं की कीमतें गिरती जा रही हैं जबकि निर्मित वस्तुओं की कीमतें बढ़ती जा रही हैं। इससे उनकी व्यापार की शर्तों में मूल्यह्रास (depreciation) होता जा रहा है। इस कारण आर्थिक विकास के लिए इन देशों को प्राथमिक वस्तुओं पर निर्भरता कम करनी चाहिए, जिसका एकमात्र उपाय औद्योगीकरण है ताकि वे आयात स्थानापन्न तथा निर्यात प्रधान उद्योग स्थापित कर सकें।

6. शहरीकण:- औद्योगीकरण से शहरीकरण की प्रक्रिया प्रारम्भ हो जाती है। यह प्रक्रिया ग्रामीण लोगों और क्षेत्रों में अनेक परिवर्तन लाती है।

1. शहरीकरण से ग्रामीणों का शहरों की ओर प्रस्थान होता है जहाँ उन्हें रोजगार के अनेक सुअवसर प्राप्त होते हैं। वे शहरों से गांवों में अने कुटुम्बों को पैसा भेजते हैं।

2. इससे ग्रामीणों की आय में वृद्धि होती है।

3. वे बढी हुई आय का खेती के लिए आगतें खरीदने, पशुपालन, मुर्गी पालन, मछली पालन, तथा अन्य घरेलू उद्योग धंधे चालू करने पर व्यय करते हैं।

4. औद्योगीकरण से सुधरे हुए यातायात के साधनों से मार्केट का प्रसार होता है जिससे कृषि पदार्थों जैसे फल, सब्जियाँ, अनाज तथा व्यापारिक फसलों को शहरी मण्डियों में लाभकारी कीमतों पर बेचने की सुविधा हो जाती है।

5. जो ग्रामीण शहरों के पास के गाँवों से नौकरी अथवा व्यवसाय करने के लिए शहरों में जाते हैं, वे अपने घरों में अंशकालिक काम करके अपनी आय को बढ़ाते हैं।

6. शहरीकरण में ग्रामीणों का शिक्षा, यात्रा तथा नये लोगों, नये विचारों एवं नयी वस्तुओं द्वारा उनके ज्ञान में वृद्धि होती है जिससे उनका दृष्टिकोण विस्तृत होता है तथा उनकी जीवन के प्रति प्रवृत्ति में परिवर्तन होता है और वे आधुनिकीकरण की ओर अग्रसर होते हैं।

7. पूँजी में वृद्धि - अल्पविकसित देशों के लिए औद्योगीकरण आवश्यक है क्योंकि इससे बढ़ते प्रतिफल तथा पैमाने की किफायतें प्राप्त होती हैं जिनसे पूँजी मे वृद्धि होती है। इससे न केवल छोटे, मध्य और बढ़े उद्योग स्थापित होते हैं बल्कि इससे कृषि का आधुनिकीकरण होता है जिससे फार्म उत्पादन में वृद्धि होती

है। कृषि में अनुसंधान और तकनीकी सुधार जिनसे सभी साधनों की उत्पादकता में वृद्धि होती है, औद्योगीकरण द्वारा ही संभव है।

8. **विविध वस्तुओं एवं सेवाओं का उपभोग:-** औद्योगीकरण से लोग विविध प्रकार की वस्तुओं एवं सेवाओं के उपभोग से आधुनिकीकरण के लाभों का आनन्द प्राप्त करते हैं। इनका प्रदर्शनकारी प्रभाव द्वारा ग्रामीणों को भी लाभ होता है। इस प्रकार, औद्योगीकरण रहन-सहन के स्तरों को बढ़ाता है तथा सामाजिक कल्याण को प्रोत्साहित करता है।
9. **शीघ्र आर्थिक विकास:-** शीघ्र आर्थिक विकास के लिए औद्योगीकरण एक पूर्व-शर्त है जैसा कि विकसित देशों का अनुभव बताता है। विकास के लिए, राष्ट्रीय आय में औद्योगिक क्षेत्र का भाग बढ़ाना चाहिए तथा कृषि क्षेत्र का कम होना चाहिए। ऐसा केवल, आयोजित औद्योगीकरण की नीति द्वारा ही संभव है। इसके परिणामस्वरूप, कृषि और सेवा क्षेत्रों के विकास के रूप में औद्योगीकरण के लाभ अर्थव्यवस्था के अन्य क्षेत्रों में धीरे-धीरें पहुँच जाते हैं।
10. **सामाजिक कल्याण:-** आर्थिक विकास की प्रक्रिया में औद्योगीकरण सामाजिक, रूपान्तरण, सामाजिक समानता, आय का अधिक न्यायसंगत वितरण तथा संतुलित क्षेत्रीय विकास लाता है।

विकास की प्रारंभिक प्रावस्था में अल्पविकसित देशों द्वारा अपनाई गई औद्योगीकरण के नीति से उन्हें संभावित आर्थिक एवं सामाजिक लाभ नही हुए हैं। यह आय और धन की असमानताएं, बेरोजगारी, और क्षेत्रीय असंतुलन कम करने में असमर्थ रही है। अन्य क्षेत्रों जैसे कृषि के विकास की उपेक्षा होने के कारण विकास के रूप में औद्योगीकरण के लाभ अर्थव्यवस्था के अन्य क्षेत्रों में धीरे-धीरे पहुँच जाते हैं।

विकास की प्रारंभिक प्रावस्था में अल्पविकसित देशों द्वारा अपनाई गई औद्योगीकरण की नीति से उन्हें संभावित आर्थिक एवं सामाजिक लाभ नहीं हुए हैं। यह आय और धन की असमानताएं, बेरोजगारी, और क्षेत्रीय असंतुलन कम करने में असमर्थ रही है। अन्य क्षेत्रों जैसे कृषि के विकास की उपेक्षा होने के कारण विकास की गति समरूप नहीं हुई है। इनके अतिरिक्त, औद्योगीकरण ने ऐसी गंभीर समस्याओं को पैदा किया है जैसे कि:

(1) ग्रामीण गतिहीनता,

(2) शहरी निम्न वर्ग की आकस्मिक वृद्धि,

(3) विकास आवश्यकताओं के साथ अभावपूर्ण ढंग से जुड़ी हुई शिक्षा,

(4) सरकारी नौकारशाही में संगठनात्मक ''अधिकतर विफलताएँ'' तथा

(5) श्रम-शक्ति और जनसंख्या की अत्यधिक ऊँची वृद्धि दरें।

इसलिए, अर्थशास्त्री इस मत की ओर परिवर्तित हो गए हैं कि इस तर्क का कोई आधार नहीं कि औद्योगीकरण से विकास प्रारंभ करना चाहिए। बल्कि, विकास की प्रक्रिया कृषि और उद्योग की सुव्यवस्थित वृद्धि के साथ जुड़ी हुई है। वास्तव में, अधिकतर अल्पविकसित देशों में सफल औद्योगीकरण सतत् कृषि विकास द्वारा समर्थित किया गया है।

औद्योगीकरण के पक्ष में दो महत्वपूर्ण तर्कों की व्याख्या की जाती हैं आयात स्थानापन्नता तर्क और शिशु उद्योग तर्क।

10.4 आयात स्थानापन्नता तर्क - आयात स्थानापन्नता और आर्थिक विकास

विकास के आयोजित लक्ष्यों को पूरा करने के लिए अल्पविकसित देश भुगतान-शेष की गंभीर कठिनाईयों में फँस जाते हैं। आयातों तथा निर्यातों में असंतुलन उत्पन्न हो जाता है, जो विकास के साथ-साथ बढ़ता जाता है। ऐसा आयातों में वृद्धि और निर्यातों में कमी के कारण होता है। विद्युत, सिंचाई, परिवहन आदि परियोजनाओं जैसे आर्थिक आधारिक संरचना तथा प्रत्यक्षतः उत्पादक क्रियाओं जैसे लोहा और इस्पात, सीमेंट, बिजली का सामान आदि को स्थापित करने के लिए अल्पविकसित देशों को पूँजी उपकरण, मशीनरी, कच्चे माल, पुर्जे, आदि बड़ी मात्रा में आयात करने पड़ते हैं, जिससे उनके विदेशी व्यापार का आयात अंश बढ़ जाता है। आयातों के बढ़ने का एक अन्य कारण शीघ्रता से बढ़ रही जनसंख्या के लिए खाद्यान्नों की वृद्धिशील माँग होता है। अतः खुराक के आयात अल्पविकसित देशों में भुगतान-शेष में असंतुलन उत्पन्न करने का एक महत्वपूर्ण तत्व होते हैं।

खाद्यान्नों के अतिरिक्त, बहुत-सी आवश्यक उपभोक्ता वस्तुओं की घरेलू माँग को पूरा करने के लिए उन्हें आयातित किया जाता है क्योंकि देशी उत्पादन से उस माँग को पर्याप्त रूप से पूरा नहीं किया जा सकता। ऐसी नीति अपने आप में, ऐसे उद्योगों को स्थापित और चालू करने के लिए बड़ी मात्राओं में मशीनरी, पूँजी उपकरण, पूर्जे, कच्चे माल आदि की आयातों की आयातों की आवश्यकताओं पर जोर देती है। निर्यात आयातों के पीछे रह जाते हैं। अल्पविकसित देशों के निर्यातों में विविधता और लोचशीलता का अभाव पाया जाता है। ये देश मुख्यतः कच्चे माल और कृषि पदार्थों जैसे प्राथमिक वस्तुओं का उत्पादन करते हैं। इसलिए उनके सीमित और बहुत प्रतियोगी बाजार होते हैं। फिर वे, बढ़ रही आय और उपभोक्ता वस्तुओं के लिए माँग की आय लोच बढ़ने से निर्यात-योग्य वस्तुओं के बढ़े हुए उपभोग के कारण अधिक निर्यात करने में असमर्थ होते हैं।

एक अन्य समस्या स्फीति के दबावों के कारण उनकी ऊँची उत्पादन लागत होती है। अत्यन्त प्रतियोगी अन्तर्राष्ट्रीय मार्केटों के होते हुए ऊँची लागत निर्यातों के रास्ते में बड़ी बाधा होती है। फिर प्रशुल्क प्रतिरोध, कोटा प्रतिबन्ध और प्रादेशिक आर्थिक संगठन भी अल्पविकसित देशों के निर्यातों को निम्न रखते हैं। अन्तिम, निर्यात योग्य वस्तुओं की घटिया किस्म और विदेशों में वस्तुएं बेचने के लिए उपयुक्त साख सुविधाओं का अभाव उनकी निर्यातों को निम्न रखने का कारण है। इस प्रकार ऊपर चचिर्त तत्वों के कारण अल्पविकसित देशों के निर्यात को निम्न रखने का कारण है। इस प्रकार ऊपर चचिर्त तत्वों के कारण अल्पविकसित देशों के निर्यात कम और आयात ऊँची रहने की प्रवृत्ति पाई जाती है, जिससे उनमें भुगतान शेष की समस्या चिरस्थाई बन गई है।

भुगतान-शेष की कठिनाईयों को दूर करने का अन्य महत्वपूर्ण तरीका आयात स्थानापन्नता है। इसकी कूटनीति यह है कि कि उपभोक्ता वस्तुओं के आयात में कटौती करें और उन्हें देश में ही उत्पादित करें। जैसा कि **मिर्डल** ने संकेत किया है, ***''विदेशी विनिमय के समक्ष खतरे ऐसी वस्तुओं के उत्पादन की ओर उद्योगों में निवेश को निर्देशित करने का कारण प्रदान करते हैं, जो आयतों के स्थानापन्न होते हैं।''***

हर्षमैन के अनुसार, आयात स्थानापन्न औद्योगीकरण के चार आवेग होते हैं। वे है: भुगतान-शेष की कठिनाइयां, युद्ध, आय में धीरे-धीरे वृद्धि और आयोजित विकास नीति। पहला आवश्यक उद्योगों के पक्ष में झुकावा लाता है और अन्तिम पूर्णतया विपरीत झुकाव पैदा करता है।

आयात स्थानापन्नता द्वार औद्योगीकरण के लिए विकासशील देशों में भुगतान शेष की कठिनाईयों और आयोजित विकास नीति दो प्रेरणात्मक शक्तियां है। औद्योगीकरण की इस नीति के पालन में जो तरीके अपनाए जाते हैं, वे कीमत-संरक्षण विधियों के रूप में आयात प्रशुल्क, कोटा, आयात या विनिमय, अधि-प्रभार और बहु विनिमय दरें हैं। जबकि आयात प्रतियोग उद्योगों में लागतें कम करने के लिए कर-छूटें और सहायिकी प्रयोग किए जाते हैं।

आयात स्थानापन्नता अनिवार्यतः उत्पादन के अन्तिम चरणों में टिकाऊ उपभोक्ता वस्तुओं के निर्माण में प्रारम्भ होती है। देश बहुत में परिवर्तन, एकीकरण और मिश्रित करने वाले प्लांटों की आयात करता है और पहले आयातित की जाने वाली तैयार उपभोक्ता वस्तुओं का उत्पादन करता है और फिर प्रायः शीघ्रता और सफलता के साथ, उत्पादन की ऊँची स्टेजों पर और पश्यवर्ती अनुबंधन प्रभावों द्वारा मध्यवर्ती वस्तुओं की ओर चला जाता है।

आयात स्थानापन्नता के पक्ष में तर्क –

आयात स्थानापन्नता के पक्ष में तर्क इस तथ्य पर आधारित है कि ऐतिहासिक तौर से व्यापार अन्तर्राष्ट्रीय असमानता यन्त्र के रूप में पिछड़े हुए देशों के अहित में चालित रहा है। इसलिए वह दीर्घकाल में आत्म-निर्भरता और आयात को घरेलू उत्पादन द्वारा स्थानापन्न करके विदेशी मुद्रा बचाने के उद्देश्य से आयात स्थानापन्नता द्वारा औद्योगीकरण की कूटनीति को अपनाने में उचित है।

1. **विकसित देशों का अनुभव:-** आयात स्थानापन्नता के पक्ष में विकसित देशों के अनुभव को भी दिया जाता है। कुछ देशों के ऐतिहासिक अध्ययनों के आधार पर **चेनरी** ने यह दिखाया है कि विकास के साथ केवल औद्योगिक उत्पादन का भाग ही नहीं बढ़ता बल्कि औद्योगिक उत्पादन में कुल वृद्धि का एक बड़ा अनुपात, आयात स्थानापन्नता पर आधारित उद्योगों की वृद्धि का कारण होता है।
2. **घरेलू माँग पूरा करने हेतु:-** एक अन्य तर्क इस आधार पर आधारित है कि एक विकासशील देश की औद्योगिक आयातों के लिए माँग इसके निर्यातों के लिए विदेशी माँग की अपेक्षा बहुत तेजी से बढ़ती है। ऐसे देश प्राथमिक वस्तुओं का निर्यात करते हैं जिनकी विदेशी माँग मन्द होती है तथा इसलिए वे निर्यातों के बदले में पर्याप्त औद्योगिक वस्तुएं आयात नहीं कर पाते। अतः घरेलू माँग को पूरा करने के लिए देश में औद्योगिक वस्तुओं के उत्पादन की आवश्यकता पड़ती है।
3. **रोजगार बढ़ाने के लिए:-** औद्योगीकरण द्वारा आयात स्थानापन्नता के पक्ष में रोजगार का तर्क भी दिया जाता है। जनसंख्या वृद्धि के साथ बढ़ रही श्रम-शक्ति को काम पर लगाने के लिए, आधुनिक श्रम-बचत तकनीकों के प्रयोग द्वारा कृषि उत्पादकता से बढ़ रही अतिरेक मानव शक्ति को खपाने के लिए, और वर्तमान अल्प-रोजगार में लगे लोगों को लाभदायक रोजगार के साधन प्रदान करने के लिए आयात स्थानापन्न औद्योगीकरण आवश्यक है।

4. **घरेलू बचत और निवेश दर बढ़ानें के लिए:-** फिर, यह भी तर्क दिया जाता है कि आयात स्थानापन्न औद्योगीकरण घरेलू बचत और निवेश की दर को बढ़ाता है। जब राज्य विदेशी प्रतियोगिता से आयात स्थानापन्न उद्योगों की रक्षा करने के लिए प्रशुल्क, लाइसैंस, कोटा आदि प्रतिबन्धात्मक विधियां अपनाता है, तो उत्पादक अपनी वस्तुओं की कीमतें बढ़ा लेते हैं और इस प्रकार ऊँचे लाभ कमाते हैं। जब यह लाभ बचाकर पुनर्विनियोजित किए जाते हैं, तो विकास की गति तेज होती है। फिर, यह भी तर्क दिया जाता है कि आयात स्थानापन्न उद्योगों की शर्तें संरक्षण व्यापार की शर्तों को असंरक्षित क्षेत्रों के विरूद्ध कर देंगे और आय वितरण को इस ढंग से परिवर्तित करेंगे कि बचतें और निवेश अर्थव्यवस्था में प्रोत्साहित हो जाते हैं।

5. **मार्केट ढूँढने की आवश्यकता नहीं:-** आयात स्थानापन्नता की नीति के पक्ष में एक प्रमुख तर्क यह है कि यह आयात स्थानापन्नता उद्योगों की लिए मार्केट ढूँढने की अनिश्चितताओं और जोखिम से दूर रहती है क्योंकि जब आयातों को रोक दिया जाता है, तो नए उद्योगों को पहले से ही स्थापित मार्केट प्राप्त की जाती है।
6. **आर्थिक कल्याण के दृष्टिकोण से:-** आयात-स्थानापन्न औद्योगीकरण के पक्ष में एक तर्क अल्पविकसित देश में दीर्घकालीन आर्थिक कल्याण के दृष्टिकोण से है। यदि आयात स्थानापन्नता की नीति प्रत्यक्ष विदेशी निवेशों द्वारा चलाई जाती है, जैसे कि साधारणतया होता है, तो आधुनिक औद्योगी तकनीकों और ज्ञान से देश लाभ उठाता है। उन्नत देशों के प्रौद्योगिकीय ज्ञान में प्रत्यक्षतः भाग लेकर यह अपनी पूँजी-संचय की दर को तीव्र करने में समर्थ हो जाता है।
7. **उत्पादन में आत्म-निर्भरता प्राप्त करना:-** आयात स्थानापन्नता द्वारा औद्योगीकरण का अन्तिम उद्देश्य दो तरह का है - तैयार उपभोक्ता वस्तुओं, मध्यवर्ती वस्तुओं और मशीनरी के उत्पादन में आत्म-निर्भरता प्राप्त करना, और उन्हें विकासशील और विकसित देशों में निर्यात करना।

आयात स्थानापन्नता के विपक्ष में तर्क

भारत, पाकिस्तान और बहुत से लेटिन अमरीकी देशों में आयात स्थानापन्नता की नीति सही ढंग से नहीं चल रही है बल्कि इसने अल्पविकसित देशों की अर्थव्यवस्थाओं में गड़बड़ पैदा कर दी है जिससे उनकी औद्योगीकरण की प्रक्रिया महँगी हो गई है। अब हम इस नीति के गुणों के संदर्भ में आयात स्थानापन्नता के विपक्ष में तर्कों का विवेचन करते हैं।

1. **उत्पादन में वृद्धि आयातों में वृद्धि से नहीं:-** आयात स्थनापन्नता द्वारा औद्योगीकरण के पक्ष में चेनरी द्वारा दिया गया ऐतिहासिक प्रमाण सभा विकासशील देशों पर लागू नहीं हो सकता। यह दलील दी जाती है कि औद्योगिक उत्पादन में वृद्धि आयातों में वृद्धि से हुई है। कच्चे माल, मध्यवर्ती वस्तुएं और पूँजी उपकरणों का आयात, अल्पविकसित देश में घरेलू उद्योग स्थापित करने में सहायक होते हैं। वास्तव में, निर्यात अर्थव्यवस्था के भीतर उद्यमीय क्रियाओं को प्रोत्साहित करने माँग पैदा करने, और अल्प रोजगार

में लगे साधनों को उत्पादकीय तौर से प्रयोग करने में सहायक होते हैं। ये आयातें ही हैं, जो अन्ततः उनके लिए आधार बनाकर, आयात स्थानापन्नता उद्योगों के लिए मार्ग दिखाती है।

2. **विदेश मुद्रा बचाने में विफल:-** आयात स्थानापन्नता की नीति का विदेशी मुद्रा बचाने का मुख्य उद्देश्य विफल रहा है। ऐसे उद्योग स्थापित नहीं किए गए, जिन्होंने विदेशी मद्रा की बचत की है। वास्तव में, स्थापित उद्योग किसी प्रकार की वास्तविक बचतें करने में असफल रहे हैं बल्कि उनसे विदेशी मुद्रा निर्वाचित हुई है। अल्पविकसित देशों में आयात स्थानापन्नता उद्योग प्रारम्भ करने के लिए कच्चे माल, मध्यवर्ती वस्तुओं और पूंजीगत उपकरणों का अभाव होता है। इसलिए इस नीति में आयातों की अधिक आवश्यकता पड़ती है, अपेक्षा किसी और नीति के।
3. **रोजगार उत्पन्न करने में असफल:-** यह तर्क कि अल्पविकसित देशों में आयात स्थानापन्नता उद्योगों की स्थापना से अतिरेक श्रम खप जाता है, इससे कोई सन्देह नहीं कि आयात स्थानापन्नता निर्माणकारी क्षेत्र में उत्पादन बढ़ाता है परन्तु यह ऐसे देशों में बढ़ रही श्रम-शक्ति के लिए नौकरियाँ उत्पन्न करने में असफल रहा है। ग्रिफिन और एनोज ने यह व्यक्त किया है कि निर्माणकारी उद्योगों में रोजगार की वृद्धि किसी भी तरह उत्पादन में वृद्धि के साथ तुलना योग्य नहीं है। वास्तव में, रोजगार में वृद्धि उतनी देर तक नहीं होती, जब तक कि निर्माणकारी उत्पादन 4 प्रतिशत प्रतिवर्ष की दर से नहीं बढ़ता है।
4. **बचत और निवेश पर कुप्रभाव:- जॉन पावर** ने यह तर्क दिया है कि तैयार उपभोक्ता वस्तुओं की आयात स्थानापन्नता घरेलू बचतों और निवेश को बढ़ाने की अपेक्षा कम करती है। घरेलू प्रयोग के लिए उपभोक्ता वस्तुओं के उत्पादन पर बल उनके उपभोग को बढ़ाने की प्रवृत्ति रखता है और इस प्रकार उनके निर्यात को आद्यात पहुँचाता है। ऐसी नीति आर्थिक और तकनीकी दक्षता पर बुरा प्रभाव डालती है जिससे आय, लाभ और बचत कम होते हैं। इसलिए, और विकास के लिए राष्ट्रीय आय, बचत और निवेश की दरें बढ़ाने के लिए, जॉन पावर उपभोक्ता वस्तु क्षेत्र की अपेक्षा पूँजी पदार्थ और निर्यात क्षेत्रों में निवेश का पक्षपात करता है।
5. **संसाधनों का विवरण:-** औद्योगिक उत्पादन में आत्म-निर्भरता प्राप्त करने के साधन के रूप में आयात स्थानापन्नता की कटूनीति के प्रयोग से संसाधनों का कुवितरण और औद्योगिक उत्पादकता पर बहुत बुरा प्रभाव हुआ है। आत्म-निर्भरता प्राप्त करने के जोश में अल्पविकसित देशों ने अदक्ष और निम्न प्राथमिकता वाले उद्योगों को अभेदपूर्ण संरक्षण प्रदान किया है। परिणामस्वरूप, ऊँची लागत पर प्राप्त किए गए कच्चे माल, मध्यवर्ती पदार्थ और पूंजीगत उपकरणों का दुरूपयोग हुआ है। अतः इस नीति से अति संरक्षण के अन्तर्गत ऊँची उत्पादन लागतों के साथ अदक्ष उद्योगों की स्थापना हुई है। आयात स्थानापन्नता के क्षेत्र में भारत का यही अनुभव रहा है।
6. **अति-संरक्षण को अपनाना:- रॉल प्रेबिश** के अनुसार, ऐसे देशों में अति-संरक्षण के साधार तौर से राष्ट्रीय मार्केटों को विदेशी प्रतियोगिताओं से अलग कर दिया है। इसने उसकी वस्तुओं की किस्म को सुधारने और लागतें कम करने की प्रेरणा को कमजोर नहीं किया बल्कि समाप्त भी कर दिया है। ऊँची उत्पादन लागत न अति संरक्षण को अपनाना आवश्यक बना दिया है। आगे इसने औद्योगिक ढांचे पर

कुप्रभाव डाला है क्योंकि इसने छोटी अनार्थिक इकाइयों की स्थापना को प्रोत्साहित किया है, आधुनिक तकनीकों को प्रारम्भ करने की प्रेरणा को कमजोर किया है और उत्पादकता में वृद्धि को धीमा किया है।

निष्कर्ष में, ऐसा प्रतीत होता है कि आयात स्थानापन्नता की नीति न केवल विदेशी मुद्रा को बचाने में असफल रही है बल्कि कई देशों में इसने कमी को बढ़ाया है। उपभोक्ता वस्तुओं की आयात स्थानापन्नता पर बल उत्पादन, बचत और निवेश को बढ़ाने में सफल नहीं रहा है। यह औद्योगिक उत्पादन में अर्थव्यवस्था को कहीं भी आत्म-निर्भरता के उद्देश्य के पास लाने में भी असफल रही है। ना तो यह बढ़ रही श्रम-शक्ति को खपाने के लिए पर्याप्त रोजगार के अवसर पैदा करने में सफल रही है और ना ही निर्यात क्षेत्र में उत्तरोत्तर वृद्धि हुई है।

परन्तु भारत जैसे देशों ने जो व्यवहार-कुशल मशीनरी और उपकरण बनाने के लिए उद्योग स्थापित किए हैं, उन्होंने आयात स्थानापन्नता में महत्वपूर्ण प्रगति की है। इसने भावी निवेश प्रोग्रामों और सुरक्षा सामर्थ्य सम्बन्धी आत्म-निर्भरता के लिए काफी अच्छी नींव रखने में देश की सहायता की है। बाईसिकल, पंखे, सिलाई मशीनें आदि अनेक टिकाऊ उपभोक्ता वस्तुएं-जो यह देश निर्यात करता है - के इलावा कई प्रकार की मशीनरी, लोहा और इस्पात, कच्चा पेट्रोल और पेट्रोल वस्तुओं, रासायनिक खाद, भारी रसायन आदि आधारभूत उद्योगों के बारे में महत्वपूर्ण सफलता प्राप्त हुई है। आयात स्थानापन्नता की नीति द्वारा भारत अपने विकास प्रोग्रामों के लिए अब तीन-चौथाई पूँजी उपकरण उत्पादित करता है।

10.5 शिशु उद्योग तर्क - शिशु उद्योग और आर्थिक विकास

फ्रैडरिक लिस्ट का प्रसिद्ध **'शिशु उद्योग'** तर्क अल्पविकसित देशों को उनके औद्योगीकरण की गति बढ़ाने में काफी प्रेरणा देता है। कुछ उद्योग ऐसे हैं कि यदि उन्हें विदेशी प्रतियोगिता से संरक्षण प्रदान किया जाए तो अल्पविकसित देशों में उन्हें सफलतापूर्वक विकसित किया जा सकता है। हो सकता है कि कुछ आधारभूत सुविधाओं के अभाव के कारण अभी तो उनकी उत्पादन लागतें अधिक हों, परन्तु कुछ समय बाद जब प्रारंभिक कठिनाइयाँ पार की ली जाएँ, तो उनके उत्पादनों में कम लागत पड़े।

यदि उद्योगों को उनकी प्रारम्भिक (शिशुत्व की) अवस्था में स्थापित विदेशी उत्पादकों से नहीं बचाया जाता है, तो वे विकसित नहीं कर सकेंगे। इसके लिए आवश्यक है कि वे इष्टतम आकार तक विकसित हों ताकि वे अत्यधिक दक्षता तथा प्रतियोगिता पूर्वक कार्य करे और अपेक्षाकृत कम लागतों पर उत्पादन करें। शिशु उद्योगों में संसाधनों के प्रवाह को सुगम बनाने के लिए भी संरक्षण की जरूरत है, भले ही उपभोक्ताओं को अस्थायी तौर पर ऊँची कीमतों को बोझ उठाना पड़े।

दीर्घकालीन में प्रतियोगितामूलक बनने के लिए शिशु उद्योगों को कुछ समय चाहिए जिसमें वे अनुभव में सीखने की प्रक्रिया में से गुजर सकें। इसलिए उन्हें संरक्षण प्रदान करना जरूरी है। जोनसन मानता है कि शिशु उद्योग विषयक तर्क स्पष्ट रूप से अल्पकालिक विकृतियाँ दूर करने के लिए अस्थायी हस्तक्षेप के पक्ष में जानदार तर्क हैं। इसलिए शिशु उद्योगों को थोड़े समय के लिए संरक्षण की जरूरत है ताकि वे विदेशी उत्पादकों से भय रहित होकर विकास कर सकें। जब वे बड़े हो जाएं तो संरक्षण वापिस लिया जा सकता है और तब उन्हें विदेशी उपयोगिता का सामना करने के लिए खुले छोड़ दिया जाए।

शिशु उद्योग के पक्ष में यह तर्क भी है कि जब कोई नया उद्योग शुरू होता है तो वह पैमाने की आन्तरिक मितव्ययिताओं का लाभ उठा सकता और अपने विदेशी प्रतियोगिताओं के मुकाबले उसकी उत्पादन लागत अधिक होती है। परन्तु यदि सभी प्रकार की सुविधएं, जैसे सहायिकियां, विदेशी वस्तुओं पर भारी आयात शुल्क आदि, प्रदान करके उसे संरक्षण दिया जाए तो उसका विस्तार होगा और उसे पैमाने की आन्तरिक मितव्ययिताएं प्राप्त होंगी। आगे, इसके परिणामस्वरूप उद्योग में सभी फर्मों को पैमाने की बाह्य मितव्ययिताएं प्राप्त हो सकती हैं। प्रशिक्षित श्रम-शक्ति की उपलब्धता, उन्नत उत्पादन तकनीकों, अनुसंधान सुविधाओं इत्यादि के माध्यम से उत्पादन की कम लागतों के रूप में ये मितव्ययिताएं प्राप्त होंगी।

यदि उनके उद्योगों को एक साथ शिशु उद्योग संरक्षण प्रदान किया जाए, तो सड़क, रेलमार्ग, शक्ति और अनुसंधान सुविधाओं, इत्यादि के रूप में अनेक बाह्य मितव्ययिताएं प्राप्त होती हैं और फिर, शिशु उद्योगों को लाभ होता है जो संरक्षित उद्योग के उत्पादनों को प्रयोग करते हैं। संरक्षण सामाजिक लाभ प्रदान कर सकें, इसलिए शिशु उद्योगों का पनपना जरूरी है। यह आवश्यक है कि वे अन्त में विश्व बाजार कीमतों पर प्रतियोगिता में ठहर सकें। उन्हें उस कसौटी पर खरा उतरना होगा जिसे मिल का टैस्ट कहते हैं। जिसके अनुसार, संरक्षण देने से पहले यह देख लेना हैं कि नहीं। केवल शिशु उद्योग का पनपना ही जरूरी नहीं बल्कि यह भी आवश्यक है कि वे हानियों का पुनर्भुगतान भी कर सकें जो उन्हें संरक्षण के दौरान उठानी पड़ी थीं। उन्हें बैस्टेबल टैस्ट भी पास करना पड़ेगा। जिसके अनुसार संरक्षण उसी स्थिति में देना चाहिए जबकि संरक्षण के अतिरिक्त उस उद्योग के विकास की संभावना नहीं।

प्रोफेसर मिर्डल ने अल्पविकसित देशों में औद्योगिक संरक्षण के लिए चार विशेष कारण बताए हैं:

1. नई पूर्ति के मुकाबले माँग खोजने की कठिनाइयाँ;
2. अतिरेक श्रम का पाया जाना;
3. बाह्य मितव्ययिताओं के निर्माण में व्यक्तिगत निवेश बड़े पुरस्कार; और
4. उद्योग के प्रतिकूल एक ओर झुका हुआ आन्तरिक कीमत ढांचा। ये कारण परस्पर सम्बद्ध है और अल्पविकसित देश के समक्ष शिशु उद्योग संरक्षण के पक्ष में तर्क प्रदान करते हैं।

अल्पविकसित देश के सन्दर्भ में शिशु उद्योग तर्क को चित्र द्वारा समझाया गया है। एक अल्पविकसित देश को किसी एक विशेष वस्तु के उत्पादन में संभावित तुलनात्मक लाभ हो सकता है परन्तु ज्ञान के अभाव में तथा उत्पादन का प्रारंभिक स्तर छोटा होने के कारण इसकी प्रारम्भिक उत्पादन लागतें बहुत ऊँची होती हैं। इसके परिणामस्वरूप विदेशी प्रतियोगिता के सामने यह उद्योग अल्पविकसित देश में स्थापित या विकसित नहीं हो सकता है। इस प्रकार एक अल्पविकसित देश के लिए एक उद्योग स्थापित करने और उसे शिशुत्व में संरक्षण देने हेतु आयात प्रशुल्क लगाना आवश्यक होता है। ऐसा करना कब तक उचित है जब तक कि उद्योग आकार और दक्षता में इतना विकसित नहीं हो जाता कि वह विदेशी प्रतियोगिता का मुकाबला कर सके।

इस तर्क को चित्र 10.1 से समझाया गया है जहां OP_w उस वस्तु की विश्व कीमत है जिसमें अल्पविकसित देश को सम्भावित तुलनात्मक लाभ होता है। परन्तु प्रारम्भ में अल्पविकसित देश में इस वस्तु की उत्पादन लागत OP_L है जो कि उसकी विश्व कीमत OP_w से अधिक है। यही कारण है कि विदेशी प्रतियोगिता के विरूद्ध बिना

संरक्षण के यह उद्योग अल्पविकसित देश में स्थापित या विकसित नहीं हो सकता है। अतः इस उद्योग का संरक्षण देने के लिए इस वस्तु पर इतना आयात प्रशुल्क लगाया जाए जो $P_w P_L$ से अधिक हो।

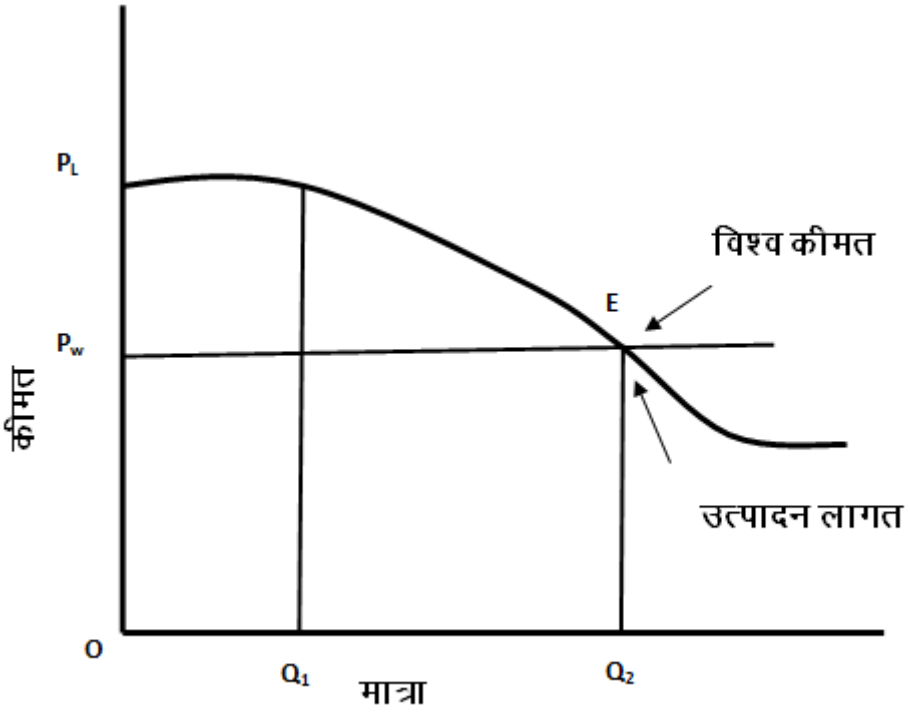

चित्र 10.1

समय बीतने पर जब शिशु उद्योग फैलाता है, उत्पादन बढ़ता और पैमाने की मितव्ययिताओं के लाभ प्राप्त होते हैं तो उद्योग की उत्पादन लागत कम होनी प्रारम्भ हो जाती है जैसा कि चित्र में OQ_1 मात्रा के बाद दिखाया गया है। जब धीरे-धीरे उद्योग और प्रसार करता है तथा उत्पादन OQ_2 पर उसकी उत्पादन लागत E बिन्दु पर विश्व कीमत के बराबर हो जाती है तो इस उद्योग पर से संरक्षण हटाया ज सकता है। इस E बिन्दु के बाद उत्पादन लागत विश्व कीमत से कम होने के कारण अल्पविकसित देश इस वस्तु का निर्यात कर सकता है।

शिशु उद्योग तर्क घरेलू उत्पादन को प्रोत्साहित करने के लिए होता है। यह इस धारणा पर आधारित है कि ***"शिशु का पालन करो, बालक की रक्षा करो और व्यस्क को स्वतन्त्र कर दो"***। इसका अभिप्राय यह है कि जब तक एक उद्योग विदेशी प्रतियोगिता का मुकाबला करने की क्षमता प्राप्त नहीं कर लेता उसे संरक्षण देना चाहिए परन्तु जब वह ऐसी क्षमता प्राप्त कर लेता है तो उस पर से संरक्षण हटा लेना चाहिए। परन्तु ऐसा अनुभव है कि जब एक बार किसी उद्योग को संरक्षण प्रदान किया जाता है तो उद्योग **'शिशु'** ही रहना पसन्द करता है। फिर, एक बार जब किसी उद्योग को आयात टैरिफ द्वारा संरक्षण दिया जाता है तो उसको हटाना कठिन हो जाता है। इसलिए अर्थशास्त्रियों का मत है कि जो कार्य एक आयात प्रशुल्क कर सकता है उससे अच्छा संरक्षण उत्पादन सहायिकी प्रदान कर सकती है।

परन्तु अल्पविकसित देश सहायिकी की अपेक्षा आयात प्रशुल्क को प्राथमिकता देते हैं क्योंकि सहायिकी देने के लिए राजस्व चाहिए जिसकी इनके पास कमी होती है। दूसरी ओर, आयात प्रशुल्क ऐसे देशों को राजस्व प्रदान करते हैं। इसलिए अल्पविकसित देश शिशु उद्योग को संरक्षण प्रदान करने के लिए आयात स्थानापन्नता की

नीति अपनाने के लिए तथा अपनी योजनाओं के लिए राजस्व प्राप्त करने हेतु आयात प्रशुल्क को अधिक उपयुक्त मानते हैं और उसको अपनाते है। अर्थशास्त्रियों ने संरक्षण के पक्ष में दिए गए शिशु उद्योग तर्क की बहुत कटु आलोचना की है।

1. यह निर्णय करना कठिन है कि किस उद्योग को संरक्षण की जरूरत है क्योंकि प्रारम्भ में तो प्रत्येक उद्योग शैशवावस्था में भी होता है। वास्तव में, असली शिशु उद्योगों को चयन करना ही कठिन होता है क्योंकि इसके लिए उद्योग के संभाव्य लागत ढांचे और उसकी स्थापित प्रतियोगिता का पूर्वानुमान लगाने की जरूरत होती है।
2. किसी शिशु उद्योग को संरक्षण इस आश्वासन पर दिया जाता है कि जब उद्योग बढ़ा हो जाए और विदेशी प्रतियोगिता का मुकाबला कर सकेगा, तो संरक्षण समाप्त कर दिया जाएगा। परन्तु किसी विश्वसनीय कसौटी के अभाव के कारण इस सम्बन्ध में निर्णय कर पाना कठिन है।
3. **प्रो. लाकड़ावाला** के अनुसार, शिशु उद्योग को दिए जाने वाले संरक्षण की मात्रा तथा अविध का निर्णय करना कठिन है।
4. यदि किसी उद्योग का कोई भाग अपने पैरों पर खड़ा भी हो जाए, तो भी प्रशुल्कों की आड़ में अनेक कम दक्ष फर्म स्थापित हो जाती हैं जिनके कारण शुल्क समाप्त करना कठिन हो जाता है।
5. जब किसी उद्योग को एक बार संरक्षण दे दिया जाता है तो निहित स्वार्थ उत्पन्न हो जाते है जो यही नहीं चाहते कि शुल्क समाप्त किए जाएँ। इस प्रकार जैसा कि हैबरलर ने लक्ष्य किया है ***"अस्थायी शिशु उद्योग शुल्क कुछ समय बाद स्थायी शुल्क बन जाते हैं ताकि उन उद्योगों को बनाए रखा जा सके जिन्हें वें शुल्क संरक्षण प्रदान करते हैं।"***
6. **हैबरलर** इस बात से सहमत नहीं है कि शिशु उद्योगों के विकास के परिणामस्वरूप उत्पादन की आन्तरिक तथा बाह्य मितव्ययिताएं प्राप्त होती हैं। उसने स्पष्ट किया है कि शिशु उद्योग संरक्षण के अन्तर्गत बाह्य मितव्ययिताओं की तथाकथित संभावनाएं अस्पष्ट उलझी हुई तथा सन्देहपूर्ण हैं।
7. **नर्क्से** के अनुसार, आर्थिक विकास को बढ़ावा देने के लिए अकेला शिशु उद्योग संरक्षण एक निष्फल साधन है क्योंकि यह पूंजी-पूर्ति की समस्या की उपेक्षा कर देता है।
8. कुछ उद्योगपति संरक्षण के अन्तर्गत एकाधिकार लाभ उठाने लगते हैं और वे नहीं चाहते कि शुल्क समाप्त किए जाएं। इसलिए वे विधायकों को रिश्वत देते हैं और देश की सामान्य राजनीति को भ्रष्ट बना देते हैं।
9. शिशु-उद्योग संरक्षण तब तक न दिया जाए, जब तक कि उद्योग वास्तव में स्थपित न हो जाए। जैसा कि नर्क्से ने कहा है, ***"शिशु-संरक्षण से पहले शिशु का जन्म तो हो।"***

इन आलोचनाओं के बावजूद अल्पविकसित देशों में औद्योगीकरण के लिए शिशु उद्योग तर्क एक महत्वपूर्ण साधन है।

10.6 अभ्यास प्रश्न

रिक्त स्थान भरें:-

1. विकसित देश ..... के उच्च स्तर के बलबूते पर ही अपना तीव्र विकास कर सके है।

2. उद्योग शब्द लैटिन भाषा के शब्द..... से बना है,
3. औद्योगिक क्षेत्र के विकास के लिए उद्योगों को विभिन्न प्रकार से वर्गीकृत किया जा सकता है।....., ... तथा ..... है।
4. प्राथमिक क्षेत्र में पृथ्वी से सम्बन्धित संसाधनों-..... उद्योग को शामिल किया जाता है।
5. द्वितीयक क्षेत्र में प्राथमिक उद्योगों के प्रसंस्करण उत्पादों को शामिल किया जाता है, जिसमें ..... उद्योग आते है।
6. तृतीयक क्षेत्र में सेवायें - ..... सम्बन्धी सेवाओं को शामिल किया जाता है।
7. औद्योगीकरण के पक्ष में दो महत्वपूर्ण तर्कों की व्याख्या की जाती हैं: ..... तर्क और ..... तर्क।
8. अल्पविकसित देश भुगतान-शेष की गंभीर कठिनाईयों में फँस जाते हैं। भुगतान-शेष की कठिनाईयों को दूर करने का अन्य महत्वपूर्ण तरीका ..... है।
9. ..... तर्क इस धारणा पर आधारित है कि ***"शिशु का पालन करो, बालक की रक्षा करो और व्यस्क को स्वतन्त्र कर दो।"***

10.7 सांराश

औद्योगिक प्रगति तीव्र आर्थिक विकास की एक आवश्यक शर्त है। विकसित देश औद्योगिक विकास के उच्च स्तर के बलबूते पर ही अपना तीव्र विकास कर सके है। औद्योगीकरण विभिन्न देशों के आर्थिक विकास में कृषि में आगतों की पूर्ति, रोजगार प्रदान करना , शहरों और रोजगार और आय में वृद्धि , विविध वस्तुओं एवं सेवाओं का उपभोग, पूँजी में वृद्धि , कृषि का व्यापारीकरण, व्यापार की शर्तें सुधारना, शहरीकण, शीघ्र आर्थिक विकास एवं शीघ्र आर्थिक विकास करके मुख्य भूमिका निभाता है। औद्योगीकरण के पक्ष में दो महत्वपूर्ण तर्क आयात स्थानापन्नता तर्क और शिशु उद्योग तर्क। तीव्र औद्योगिक विकास हेतु आयात स्थानापन्नता तर्क और शिशु उद्योग तर्क दिये जाते है। विकास के आयोजित लक्ष्यों को पूरा करने के लिए अल्पविकसित देश भुगतान-शेष की गंभीर कठिनाईयों में फँस जाते हैं। भुगतान-शेष की कठिनाईयों को दूर करने का अन्य महत्वपूर्ण तरीका आयात स्थानापन्नता है। **'शिशु उद्योग'** तर्क अल्पविकसित देशों को उनके औद्योगीकरण की गति बढ़ाने में काफी प्रेरणा देता है।

10.8 शब्दावली

- **परम्परागत -** पुरानी परम्पराओं के अनुसार
- **छिपी बेरोजगारी -** ऐसी बेरोजगारी जो दिखाई न दे अर्थात जहाँ व्यक्ति काम में लगा दिखता है परन्तु उत्पादन में उसका योगदान लगभग शून्य होता है।
- **अर्द्ध बेरोजगारी-** ऐसी बेरोजगारी जिसमें व्यक्ति को केवल कुछ दिनों या महीनों के लिए या योग्यता से कम काम मिले।
- **श्रम प्रतिस्थापन -** ऐसी व्यवस्था जहाँ श्रम के स्थान पर मशीनों का प्रयोग किया जाये।

- **एकाधिकार -** ऐसी व्यवस्था जहाँ किसी वस्तु की खरीदारी या बिक्री पर एक संस्था या व्यक्ति का अधिकार हो।
- **करारोपण -** कर लगाना
- **पूर्णकालिक -** पूरे वर्ष के लिए अर्थात् लम्बे समय के लिए
- **अनुदान -** सरकार द्वारा दी जाने वाली आर्थिक सहायता जो किसी वस्तु या सेवा के उपयोग पर प्राप्त हो।
- **प्रमापीकरण -** मानक या मापदण्ड अनुसार वस्तुओं को विभिन्न वर्गों में बांटना।
- **आधारभूत संरचना -** विकास में सहायक आधार जैसे-सड़क, परिवहन, विद्युत, लोह इस्पात, सीमेंट उद्योग आदि।

10.9 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

रिक्त स्थान भरें:-

(1) औद्योगिक विकास (2) Industria

(3) प्राथमिक या कृषि उद्योग, माध्यमिक, द्वितीयक या विनिर्माण तथा तृतीय या सेवाएं

(4) कृषि, खनन तथ मत्स्य (5) निर्माण, विनिर्माण तथा प्रसंस्करण

(6) शिक्षा, प्रबन्धन व व्यापार (7) आयात स्थानापन्नता तर्क और शिशु उद्योग

(8) आयात स्थानापन्नता (9) 'शिशु उद्योग'

10.10 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

- Singh, S.P. (2010),"*Economics of Development and Planning and Practics*", S and Chan Publicshing House.
- Jhingan, M. L. (2000),"*Economics of Development and Planning*", Vrinda Publications Pvt. Ltd. Delhi.
- Seth, Ranjana (2010), "*Industrial Economics*", Ane Books Pvt. Ltd.New Delhi.
- Mishra, S.K. and Puri, V.K. (2007), "*Economics of Development and Planning Theory and Practice"*, Himalaya Publishing House.
- Dhingra, I. C. (2009), "*Development Economics*", sultan Chand and Sons.

10.11 सहायक/उपयोग पाठ्य सामग्री

- Hayami, Yujiro, Godo, Yoshihisu, (2004), "*Development Economics*", Oxford University Press India.
- Barthwal, R. R. (2004), "*Industrial Economics: An Introductory Text Book*", New Age International (P) Ltd, Publishers, New Delhi.

- Dr. Barthwal, *Industrial Economics*, New Age International (P) Ltd, Publishers, New Delhi.

10.12 निबन्धात्मक प्रश्न

1. औद्योगिक विकास का आर्थिक विकास पर क्या प्रभाव पड़ता है?
2. औद्योगीकरण में आयात स्थानापन्नता की भूमिका का वर्णन करो।
3. शिशु उद्योग और आर्थिक विकास में भूमिका पर प्रकाश डालिए।

इकाई 11- सरकारी संस्थान, बाजार,और आर्थिक विकास

(Government Institute, Market and Economic Development)

11.1 प्रस्तावना

11.2 उद्देश्य

11.3 सरकारी संस्थान बाजार और आर्थिक विकास

11.4 आर्थिक विकास को प्रोन्नत करने सम्बन्धी सरकारी कार्य

11.5 बाजार और आर्थिक विकास

11.6 बाजार के आकार के निर्धारक तत्व

11.7 आर्थिक विकास तथा बाजार की अपूर्णतायें

11.8 अभ्यास प्रश्न

11.9 सांराश

11.10 शब्दावली

11.11 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

11.12 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

11.13 सहायक/उपयोग पाठ्य सामग्री

11.14 निबन्धात्मक प्रश्न

11.1 प्रस्तावना

इस इकाई से पहले आप आर्थिक विकास में औद्योगिक क्षेत्र के योगदान की विस्तृत जानकारी प्राप्त कर चुके है। इस इकाई में आर्थिक विकास में सरकारी संस्थान और बाजार के योगदान की विस्तृत जानकारी प्रस्तुत की जा रही है। इस इकाई के अध्ययन से आपको आर्थिक विकास को प्रोन्नत करने सम्बन्धी सरकारी कार्य की जानकारी प्राप्त हो जायेगी।

11.2 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन से आप:-

- ✓ आर्थिक विकास में सरकारी संस्थान और बाजार के महत्व की विस्तृत जानकारी प्राप्त कर लेगें।
- ✓ आर्थिक विकास की प्रक्रिया को प्रोन्नत करने सम्बन्धी सरकारी कार्य को समझ सकेगें।
- ✓ आर्थिक विकास के निर्धारक में बाजार के आकार की भूमिका को जान सकेंगे।

11.3 सरकारी संस्थान बाजार और आर्थिक विकास

प्रारम्भ में आर्थिक विकास में राज्य सरकार की कोई महत्वपूर्ण भूमिका नहीं होती थी। सरकार का मुख्य काम केवल देश की सुरक्षा मान जात था परन्तु धीरे -धीरे इस विचारधारा में परिवर्तन आया और एक वर्ग राज्य सरकार के आर्थिक क्रियाओं में सहयोग का समर्थन करने लगा, इसलिए दो प्रकार की विचारधारायें पायी जाने लगी।

प्रथम विचारधारा के अनुसार सम्पूर्ण आर्थिक क्रियाएँ राज्य सरकार के नियन्त्रण के अन्तर्गत होनी चाहिए अर्थात् विकास की सम्पूर्ण योजनाएँ सार्वजनिक क्षेत्र के द्वारा संचालित की जानी चाहिए। ताकि निजी उपक्रम अर्थव्यवस्था के सभी दोषों का उन्मूलन करके तीव्र आर्थिक विकास के लक्ष्य को शीघ्रतर पूरा किया जा सके।

द्वितीय विचाराधारा के समर्थक पूर्ण सरकारी हस्तक्षेप के पक्षपाती नहीं है। इनकी दृष्टि में बाजार-यन्त्र और निजी उपक्रमों को जीवित रखना आवश्यक है क्योंकि अल्प-विकसित देशों में पूँजी के अभाव के कारण सरकारें विस्तृत पैमाने पर विनियोग नहीं कर सकतीं।

संक्षेप में, यह विचारधारा 'धीरे चलने की नीति' अथवा **'राज्य हस्तक्षेप के क्रमिक विकास सिद्धान्त'** में विश्वास रखनी है। आज अधिकांश अल्प-विकसित देशों में द्वितीय विचाराधारा को ही मान्यता प्रदान की गयी है। मिश्रित अर्थ व्यवस्था के रूप में कुछ आधारभूत उद्योगों का स्वामित्व व संचालन सरकार के हाथ में होता है और शेष उद्योगों पर निजी क्षेत्र का स्वामित्व बना रहता है। ध्यान रहे, निजी क्षेत्र के अन्तर्गत आने वाले उद्योगों का संचालन भी सरकार के कठोर नियन्त्रण में होता है।

प्रो. मायर एवं बाल्डबिन का कहना है कि आर्थिक क्षेत्र में राज्य सरकार के हस्तक्षेप की क्या सीमा हो इसका कोई सिद्धान्त नहीं है। इसके लिए सरकार को देश में विकास की गति, वांछित उद्देश्य, विशिष्ट आर्थिक परिस्थितियाँ, अपनी प्रशासनिक शक्ति व विद्यमान संस्थाओं के आधार पर ही सार्वजनिक एवं निजी क्षेत्र में सीमांकन करना होगा।

आज के युग में विश्व के सभी राष्ट्रों का अन्तिम लक्ष्य आर्थिक सम्पन्नता को प्राप्त करना है जिसके लिये आर्थिक नियोजन की प्रणाली की स्वीकार कर लिया गया है। योजनाओं के अन्तर्गत आधारभूत उद्योगों की स्थापना और बड़े पैमाने के उत्पादन हेतु विशाल धनराशि की आवश्यकता होती है जिसे व्यक्तिगत साधनों से पूरा नहीं किया जा सकता। विशेषकर अल्प-विकसित देशों में पूँजी का अभाव, तकनीकी ज्ञान की कमी, कुशल श्रमिकों, प्रबन्धकों एवं उद्यमकर्ताओं का अभाव, विषैले वृत्त तथा बाजार अपूर्णताएँ आदि ऐसी समस्याएँ विद्यमान होती हैं जो आर्थिक विकास के मार्ग को अवरूद्ध बनाये रखती हैं। चूँकि निजी क्षेत्र के द्वारा इन समस्याओं का उपयुक्त समाधान नहीं किया जा सकता इसलिये सरकार को स्वयं आर्थिक क्षेत्र में प्रवेश करना पड़ता है।

इस बात का समर्थन प्रसिद्ध विकासवादी अर्थशास्त्री **प्रो. डब्ल्यू आर्थर लुइस** ने भी किया है। उनके शब्दों में ***"कोई भी देश आर्थिक क्षेत्र में अपनी बुद्धिमान सरकार के सक्रिय सहयोग और साझेदारी के बिना आज तक आर्थिक विकास नहीं कर सका है।"***

11.4 आर्थिक विकास को प्रोन्नत करने सम्बन्धी सरकारी कार्य

अब यह सर्वथा माना जाता है कि एक अल्पविकसित देश में निहित कठोरताओं पर काबू पाने के लिए सरकार को निश्चियात्मक कार्य करना होगा। वह निष्क्रिय दर्शक बनकर नहीं रह सकता। अल्पविकसित देशों की समस्याएँ इतनी अधिक होती हैं कि उन्हें आर्थिक शक्तियों के स्वतंत्र कार्यकरण पर नहीं छोड़ा जा सकता। निजी उद्यम उन्हें हल नहीं कर सकता। इसलिए ऐसे देशों के आर्थिक विकास के लिए सरकारी कार्य अनिवार्य है। फिर, ऐसे देशों को गतिहीनता के निर्जीव केन्द्र से हटाने के लिए शीघ्र सामाजिक-आर्थिक सुधारों की जरूरत होती है।

विकास की प्रारम्भिक अवस्थाओं में उन दिशाओं में निवेश करना पड़ेगा, जो बाह्य मितव्ययिताओं को बढ़ावा दें, अर्थात विद्युत, परिवहन, शिक्षा, स्वास्थ्य इत्यदि आर्थिक तथा सामाजिक उपरि सुविधाओं का निर्माण करें। इन क्रियाओं के लिए निजी उद्यम आगे आने का तैयार नहीं होता क्योंकि इनमें जोखिम अधिक होता है और लाभ कम। अर्थव्यवस्था के विभिन्न क्षेत्रों की वृद्धि के संतुलन की जरूरत होती है ताकि पूर्ति का माँग से समायोजन किया जा सके। इसके लिए आवश्यक है कि वस्तुओं के उत्पादन, वितरण तथा उपभोग पर नियन्त्रण किया जाए।

इसके लिए सरकार को भौतिक नियन्त्रणों और मौद्रिक तथा राजकोषीय विधियों की युक्तियाँ निकालनी पड़ती है। फिर, अल्पविकसित देशों में व्याप्त रहने वाली आर्थिक तथा सामाजिक असमानताओं को कम करने के लिए ऐसी विधियाँ अनिवार्य हैं। ***"ऐसे देशों में, सामाजिक मतभेदों को तोड़ना और आर्थिक विकास के लिए उपयुक्त मनोवैज्ञानिक आदर्श सामाजिक तथा राजनैतिक स्थिति का निर्माण करना राज्य सरकार का सर्वोपरि कर्त्तव्य बन जाता है।"***

प्रो. आर्थर लुइस ने आर्थिक विकास हेतु सरकार द्वारा किये जाने वाले कार्यों को **नौ वर्गों** में विभाजित किया है। लेकिन मोटे तौर पर आर्थिक विकास को प्रोन्नत करने और समाज के आर्थिक जीवन को बढ़ावा देने के लिए सरकारी संस्थानों व सरकार द्वारा किये जाने वाले मुख्य कार्य इस प्रकार है:-

1. **संस्थानिक ढाँचे में परिवर्तन करना:-** आर्थिक विकास की आवश्यक विधियों में से यह एक है कि अल्पविकसित देशों में लोगों की सामाजिक तथा सांस्कृतिक वृत्तियों में परिवर्तन लाया जाए। ऐसे समाजों

में धार्मिक तथा सांस्कृतिक परम्पराएँ आर्थिक विकास की प्रेरक नहीं होतीं। संस्थानिक ढाँचा, विचारशील व्यक्तिवादी व्यवहार को, प्रतियोगिता तथा उद्यम की भावना को प्रोत्साहन नहीं देता। यदि आर्थिक विकास करना है तो संयुक्त परिवार, जाति या बिरादरी और धार्मिक विश्वास की खाई में घिरी सामाजिक वृत्तियों, मूल्यों और संस्थाओं को बदलना पड़ेगा। इनके लिए सामाजिक क्रान्ति की आवश्यकता होती है। पर, **'सामाजिक क्रान्ति'** का यह अभिप्राय नहीं कि वर्तमान संस्थाओं को एकदम उखाड़ फेंका जाए। परिवर्तन को विकास सम्बन्धी होना होगा अन्यथा तीव्र सामाजिक परिवर्तनों से असंतोष, निराशा, अशान्ति और हिंसा फैलेगी। फिर ये कारण आर्थिक वृद्धि में बाधक होंगे।

यदि सामाजिक संस्थाओं में परिवर्तन शुरू हो जाए, तो लोग नए अवसरों को ग्रहण कर लेंगे और वे फिर संस्थाओं में और अधिक परिवर्तन करेंगे। परन्तु ऐसी स्थिति में परिवर्तन के आधारभूत कारण का पता लगाना कठिन है। नए अवसर कई तरह से आ सकते हैं। ***"नए अविष्कार नई वस्तुओं का निर्माण कर सकते हैं, अथवा पुरानी वस्तुओं की उत्पादन-लगातें घटा सकते है। नई सड़के, नए जहाज-मार्ग अथवा संचार में अन्य सुधार, व्यापार के नए सुवअसर प्रदान कर सकते है। युद्ध अथवा स्फीति नई माँगें उत्पन्न कर सकती है। देश में विदेशी आ सकते हैं, जो धंधे ला सकते हैं, नई पूँजी लगा सकते हैं या रोजगार के नए मौके दे सकते हैं।"*** इस प्रकार के नए अवसर संस्थाओं में परिवर्तन लाते हैं। ऐसे परिवर्तन धीरे-धीरे होते हैं और लक्ष्य किए जा सकते हैं। इनको नवप्रवर्तक, **'नए व्यक्ति'** चालू करते हैं जो अतीत से सम्बन्ध तोड़ने का साहस करते हैं और पुराने संस्थानिक ढाँचे को नए परिवेश में ढाल देते हैं।

ये नवप्रवर्तक शहर में रहने वाले होते हैं। ये राजनैतिक तथा सामाजिक शक्तियों का मुकाबला तथा विरोध करते हैं। आर्थिक क्षेत्र में अधिक बड़े तथा नाए अवसर प्रदान करके, ये अन्ततः पुराने विश्वासों तथा संस्थाओं को बदलने में सफल होते हैं। इसी प्रकार विदेशियों में सम्पर्क समाज के संस्थानिक ढाँचे को बदलने का कारण बन सकता है। भारत में 19वीं शताब्दी में रेल-मार्गों के निर्माण, पाश्चात्य शिक्षा के प्रसार और औद्योगिक केन्द्रों की स्थापना ने सामाजिक तथा पारिवारिक बंधनों को शिथिल करने में सहायता दी थी। सामाजिक विवेकाशीलता की नई वृत्ति ने ही देश की राजनैतिक स्वतन्त्रता से प्रमुख आन्दोलनों को जन्म दिया था। सबसे बढ़कर, संस्थानिक ढाँचे को प्रभावित करने में सरकार की महत्वपूर्ण कार्य करती है।

2. संगठनात्मक परिवर्तन करना:-अल्पविकसित देशों के विकास में संस्थानिक परिवर्तनों के साथ-साथ संगठनात्मक परिवर्तनों का भी बहुत महत्व है। इसके अन्तर्गत बाजार में आकार का विस्तार करना तथा श्रम-बाजार को संगठित करना शामिल है। ये दोनों कार्य राज्य द्वारा ही सम्भव हो सकते है।

(क) बाजार का विस्तार - सरकार ही बाजार के विस्तार के लिए यातायात एवं संचार के साधनों का विकास कर सकती है क्योंकि निजी उद्यम की इनको बढ़ने की समर्थ नहीं होती है। इसके अतिरिक्त उद्योगों एवं कृषि विकास के लिए वित्तीय सहायता प्रदान करने हेतु संस्थाओं का निर्माण एवं विकास भी सरकार ही कर सकती है जैसे, राज्य सहकारी बैंक, भूमि बन्धक बैंक, औद्योगिक बैंक, वित्तीय तथा निवेश निगम आदि।

(ख) श्रम-बाजार का संगठन - दूसरी ओर, श्रम-बाजार को संगठित करना भी सरकार का कार्य होता है। संगठित श्रम-बाजार से उत्पादन में वृद्धि होती है। श्रम संघों को सरकार मान्यता देकर श्रम को संगठित होने में सहायता करता है। काम करने के घण्टे, मजदूरी भुगतान, औद्योगिक झगड़ों को निपटाना, सामाजिक सुरक्षा आदि से सम्बन्धित अधिनियम बनाना सरकार के कार्यभाग में ही आते हैं। ऐसे अधिनियमों के ठीक प्रकार पालन से श्रमिकों एवं मालिकों में अच्छे सम्बन्ध स्थापित होते हैं, श्रम की कार्यकुशलता बढ़ती है, उत्पादन में वृद्धि होती है तथा लागतों में कमी। जिससे आर्थिक विकास की गति तीव्र होती है। ऐसी अर्थव्यवस्था में श्रम अगतिशील होता है। अधिकतर लोग ग्रामीण होते हैं और कृषि में संलग्न होने के कारण शहरों में जाना पसन्द नहीं करते और न ही उन्हें शहरों में रोजगार सम्बन्धी सूचना प्राप्त होती है। गाँवों में रोजगार सम्बन्धी सूचना केन्द्र तथा शहरों में रोजगार दफ्तर खोलकर सरकार श्रम की गतिशीलता बढ़ाने में सहायक हो सकती है। विकास के साथ-साथ जब श्रमिक-वर्ग की गाँवों, से शहरों की ओर प्रस्थान करता है तो शहरीकरण की समस्याएँ उत्पन्न होती हैं जैसे निवास, जल, बिजली, गंदी बस्तियों का निर्माण, परिवहन आदि जिनका समाधान केवल सरकार ही कर सकती है। श्रमिकों के लिए भवन-निर्माण, चिकित्सा, शिक्षा, पार्क, परिवहन, जल, बिजली आदि की सुविधाओं का प्रबन्ध सरकार द्वारा ही सम्भव हो सकता है।

3. कृषि का विकास करना:- अल्पविकसित देशों में प्रमुख व्यवसाय कृषि होती है और राष्ट्रीय आय के आधे से अधिक भाग का योगदान देती है। इसके बावजूद, कृषि गतिहीनता की स्थिति में रहती है। कृषि में संलग्न व्यक्तियों की संख्या के सम्बन्ध में राष्ट्रीय आय का भाग आनुपातिक रूप से कम है। अल्पविकसित देशों में जनसंख्या का 70 प्रतिशत से अधिक भाग कृषि में लगा है, जबकि वह राष्ट्रीय आय में 20 प्रतिशत से 50 प्रतिशत के लगभग योगदान देता है। इसका आधारभूत कारण यह है कि प्रति एकड़ कृषि उत्पादकता बहुत कम होती है। कम उत्पादन के कारण हैं: जो जोतों का अनार्थिक आकार, भूमि-जोतों का बिखरा होना, दोषपूर्ण भूमि-पट्टा व्यवस्था जिसे ऊँचे लगान विशिष्टता प्रदान करते हैं, और पट्टे की असुरक्षिता, समुचित ऋण सुविधाओं का अभाव और ऋण बोझ, सिंचाई-सुविधाओं का अभाव और वर्षा पर निर्भरता, उत्पादन के प्राचीन तरीकों का प्रयोग तथा भूमि पर जनसंख्या का अत्यधिक दबाव। अल्पविकसित देशों में कृषक दरिद्र, निरक्षर तथा अबोध होते हैं। उनमें संगठन का अभाव होता है। उनके पास भूमि में सुधार करने के लिए पर्याप्त प्रेरणा नहीं होती। प्रथाएँ तथा परम्पराएँ उनके जीवन का नियमन करती है। इसलिए भूमि-सुधार करने और कृषि विकास के लिए योजनाएँ बनाने का काम सरकार के कार्य के अन्तर्गत आता है।

(क) उत्पादकता में वृद्धि - योजना की सफलता अन्ततः इस बात पर निर्भर रहेगी कि कृषि उत्पादकता कहाँ तक बढ़ती है। कृषि उत्पादन में वृद्धि इसलिए आवश्यक है ताकि उद्योग की कच्चे माल की आवश्यकताओं को पूरा किया जाए, खाद्यान्नों में आत्म-निर्भरता प्राप्त की जाए, कीमत-वृद्धि को रोका जाए, विकास के लिए अधिक साधन जुटाए जाएँ और अर्थव्यवस्था के अप्रयुक्त तथा अल्प-प्रयुक्त मानव-शक्ति साधनों का प्रभावशाली ढंग से प्रयोग किया जाए।

ग्राम-स्तर पर कृषि उत्पादन योजनाएँ तैयार करने में ये प्रमुख तत्व आते हैः

1. सिंचाई सुविधाओं का पूर्ण उपयोग, जिसमें लाभ उठाने वालों के लिए खेत की नालियों को अच्छी हालत में रखना, उनकी मरम्मत, और समुदायिक सिंचाई निर्माण कार्य की देखभाल शामिल है;
2. अनेक फसलें उगाने के क्षेत्र में वृद्धि करना;
3. गाँव में सुधारे हुए बीजों को बढ़ाना और सब काश्तकारों में उनका वितरण;
4. उर्वरकों का वितरण;
5. मिश्रित खाद और हरी खाद के प्रयोग के लिए प्रोग्राम;
6. सुधारे हुए कृषि तरीकों को अपनाना; उदाहरणर्थ, भूमि-संरक्षण, परिधि-बाँध बनाना, शुष्क खेती करना, भूमि को कृषि योग्य बनाना, पौधों का संरक्षण आदि;
7. गाँव में नए छोटे-छोटे सिंचाई निर्माण-कार्य प्रोग्राम शुरू करना सामुदायिक और व्यक्तिगत आधार दोनों के माध्यम से;
8. सुधारे हुए कृषि औजारों के लिए प्रोग्राम;
9. सब्जियों तथा फलों के उत्पादन बढ़ने के प्रोग्राम;
10. अण्डों, मछली, तथा दुग्ध उत्पादन बढ़ाने के प्रोग्राम;
11. पशु-पालन, उदाहरणार्थ, अभिजनक साँडों की पूर्ति, कृत्रिम गर्भाधान केन्द्रों की स्थापना और बेकार साँडों की बधिया करना; और
12. गाँव में ईंधन-बागानो तथा चरागाहों के विकास के प्रोग्राम।

(ख) भूमि-सुधार - कृषि विकास प्रोग्रामों की सफलता इस बात पर निर्भर रहेगी कि सरकार किस सीमा तक भूमि-सुधार विधियाँ अपनाती है। भारतीय योजना आयोग के अनुसार, भूमि-सुधार विधियों के उद्देश्य दोहरे हैं

1. ***"कृषि उत्पादन की वृद्धि में स्थित उन बाधाओं को दूर करना, जो अतीत से विरासत में प्राप्त कृषि-ढाँचे से उत्पन्न होती हैं। इसे दक्षता तथा उत्पादकता के ऊँचे स्तरों वाली कृषि-व्यवस्था के यथासम्भव शीघ्रतम विकास के लिए स्थितियाँ उत्पन्न करने में सहायक होना चाहिए।"*** और
2. ***''कृषि-व्यवस्था के भीतर शोषण तथा सामाजिक अन्याय के सब तत्वों को समाप्त करना, कृषक को सुरक्षा प्रदान करना और ग्राम जनसंख्या के सब वर्गों को प्रतिष्ठा पद तथा अवसर की समानता का विश्वास दिलाना।''***

भूमि-सुधार में निम्नलिखित तत्व आते हैं:

1. मध्यवर्तियों की समाप्ति;
2. मुजारों के पटटे की सुरक्षा;
3. मुजारों को भूमि खरीदने का अधिकार देना जिसकी वे काश्त करते हैं;

4. मुजारों द्वारा भूमि पर किए गए स्थायी सुधारों के मुआवजे का प्रबन्ध;
5. भू-स्वामियों द्वारा वसूल किए जाने वाले लगान सीमित करना;
6. कृषि जोतों की सीमा निर्धारित करना; तथा
7. जोतों की चकबन्दी करना

भूमि सुधारों की गड़बड़ में हमें यह नहीं भूलना चाहिए कि अर्थव्यवस्था के सतत विकास के लिए हमें कृषि-कीमतों में अनुसचित उतार-चढ़ावों से बचना है और उचित मात्रा में स्थिरता बनाए रखनी है। इसका यह अभिप्राय नहीं कि कृषि वस्तुओं की कीमतें नीचे स्तर पर रखी जाएँ क्योंकि नीची कीमतें उत्पादन को हतोत्साहित करती हैं। इसलिए, कृषि-वस्तुओं की उचित कीमतें नियत की जाएं जिनकी गारंटी सरकार दे।

4. प्राकृतिक संसाधनों का विकास:- अल्पविकसित देशों मे प्राकृतिक संसाधन कम विकसित या अविकसित होते हैं। जो देश उपनिवेश रहे हैं उनमें विकसित राष्ट्रों ने प्राकृतिक संसाधनों का अन्धाधुन्ध तथा विनाशकारी उपयोग निजी स्वार्थ के लिए किया है। ऐसी हालत में प्राकृतिक संसाधनों विकास में निजी उद्यम पर छोड़ना राष्ट्रहित में नहीं है। इसलिए सरकार का यह कर्त्तव्य बन जाता है कि देश के आर्थिक विकास के लिए खनिज, वन आदि संसाधनों का सर्वेक्षण करवाएं और उनके उपयोग के लिए उचित नीति अपनाए तथा उनसे सम्बन्धित उद्योग स्थापित करे या करने में सहायता दे। सरकारी अधिकारी संरक्षण सम्बन्धी अनेक उपायों के द्वारा प्राकृतिक संसाधनों के उपयोग की गति एवं जीवन-काल को प्रभावित कर सकते हैं।

5. औद्योगिक विकास करना:- विश्व का आर्थिक इतिहास भी इस बात का साक्षी है कि आज के युग में विकसित कहे जाने वाले देशों में आधारभूत उद्योगों की स्थापना की पहल वहाँ की सरकार द्वारा की गयी है। सच तो यह है कि यदि सार्वजनिक क्षेत्र का विकास न हुआ होता तो अधिकांश भारी उद्योग पृथ्वी की गोद में खनिज पदार्थों की तरह छिपे पड़े रहते है विश्व की अर्थ-व्यवस्थाओं का तब स्वरूप ही कुछ और होता। **श्री गरशनक्रोन** का इस सम्बन्ध में कहना है कि ***"विकास कार्यों को प्रारम्भ करते समय कोई देश जितना अधिक पिछड़ा हुआ होता है उसे उतना ही अधिक सरकारी संरक्षण तथा सरकारी उपक्रों के विस्तार की आवश्यकता होती है।"*** आज विश्व में शायद ही कोई ऐसा देश हो जहाँ वाणिज्यिक एवं औद्योगीक उपक्रमों की स्थापना व संचालन में सरकार द्वारा सक्रिय भूमिका न निभाई जाती हो।

अल्पविकसित देशों में निजी उद्यम केवल उपभोक्ता वस्तुओं के क्षेत्र में ही पाया जाता है। भारी तथा आधारभूत उद्योगों में पूँजी-निवेश बहुत अधिक मात्रा में करना पड़ता है तथा उनसे उत्पादन दीर्घ-अवधि में प्राप्त होता है। इसलिए निजी उद्यम में ऐसे उद्योग स्थापित करने की क्षमता नहीं पाई जाती। फिर, कई उपभोक्ता उद्योग (जैसे कपड़ा, चीनी, आदि) पुराने होने के कारण उनमें नवीनीकरण की आवश्यकता होती है। दूसरी ओर, निर्यात प्रोत्साहन तथा आयात स्थानापन्नता करने वाले उद्योगों की स्थापना आर्थिक विकास के लिए बहुत आवश्यक होती है। ऐसे देशों में उद्योग केवल कुछ बड़े नगरों में ही केन्द्रित होते हैं,

जबकि देश का अधिकतर भाग उद्योगरहित और पिछड़ा होता है। ऐसा इसलिए कि उपरिसुविधाओं के अभाव के कारण निजी उद्यम उन क्षेत्रों में उद्योग स्थापित करने का साहस नहीं करता।

इन सभी कमियों को दूर करना और एक सुनिश्चित राष्ट्रीय औद्योगिक नीति को अपनाना सरकार का कार्यभाग होता है। छोटे, बड़े और घरेलू उद्योगों को प्रोत्साहित करना, उद्योगों का विकेन्द्रीकरण करना, विदेशों से उद्योगों के लिए कच्चा माल, पूँजी पदार्थ एवं तकनीकों को आयात करना, लोक उद्योग एवं संयुक्त उद्योग स्थापित करना तथा राष्ट्रीय हित में विदेशी उद्योगों का राष्ट्रीयकरण करना, ये सभी सरकार के कार्य के अन्तर्गत आते हैं।

सरकार ही लोहा और इस्पात, भारी इन्जीनियरिंग, भारी बिजली, भारी रसायन, रासायनिक खाद आदि जैसे आधारभूत उद्योगों को स्थापित करने के क्षमता रखता है। कई प्रकार की आवश्यकता उपभोक्ता वस्तुओं से सम्बन्धित नवीन उद्योग निजी उद्यम को आकर्षित एवं प्रोत्साहित करने के लिए कई प्रकार की सुविधाएँ प्रदान कर सकती है, जैसे, यातायात एवं संचार के साधन, सस्ती भूमि, जल, विद्युत, करों में छूट, आदि। अन्तिम, देश के सन्तुलित विकास के लिए सरकार प्रत्येक प्रदेश की भौतिक स्थिति एवं साधन सम्पन्नता के अनुरूप औद्योगिक नीति अपना सकती है जैसे, कृषि- प्रधान प्रदेश में कृषि से सम्बन्धित उद्योग स्थपित करने तथा लोहा प्रधान क्षेत्र में इस्पात उद्योग स्थापित करने। इस प्रकार, सरकार का देश के औद्योगीकरण में महत्वपूर्ण योगदान होता है।

6. सामाजिक ढाँचों का विकास:- सरकार को चाहिये कि प्राथमिकता के आधार पर आवश्यक सेवाओं के विकास की योजना बनाए। यदि आवश्यकता यह हो कि सिंचाई-सुविधाएँ तुरन्त प्रदान की जाएं तो बड़ी नदियों पर बाँध बनाने की अपेक्षा छोटी सिंचाई सुविधाओं पर संकेन्द्रण करके उसे पूरा किया जाए। फिर, सार्वजनिक सेवाएं प्रदान करने का आवश्यक रूप में यह अर्थ नहीं है कि सरकार उनकी मालिक हो और उनका चालन करें। सरकार एक विशिष्ट परियोजना की योजना स्वीकार कर सकती है और किसी निजी संस्था को वित्त तथा अन्य निर्माण-सम्बन्धी सुविधाएँ प्रदान कर सकती है, जोकि उसका निर्माण करे और उसकी मालिक हो। हाँ, उसके कार्यकरण का नियमन सरकार कर सकती है। वास्तव में, किसी योजना का स्वामित्व तथा संचालन सरकार करे या निजी उद्यम, यह उसकी प्रवृत्ति तथा महत्व पर निर्भर रहता है। भारत में, परिवहन तथ संचार साधनों का विकास सरकारी क्रियाओं के अन्तर्गत आता है। भारत जैसे विशाल देश में उनके महत्व को ध्यान में रखते हुए रेल-मार्गों, वायु- मार्गों तथा संचार के साधनों का स्वामित्व सार्वजिनक तथा निजी, दोनों ही, क्षेत्रों के हाथों में है, भले ही समस्त प्रचालनों का नियमन सरकार करती है।

(क) शिक्षा- शिक्षा के बिना आर्थिक विकास संभव नहीं है। जैसाकि **प्रोफेसर मिर्डल** ने कहा है, ***"बहुत बड़ी जनसंख्या को निरक्षर छोड़कर राष्ट्रीय विकास प्रयोग शुरू करने की बात मुझे निरर्थक मालूम होती है"*** आर्थिक विकास के लिए श्रम का गुण ही अधिक महत्वपूर्ण है। यदि अकुशल श्रमिक अधिक देर तक भी काम करें, तो भी उनकी प्रति व्यक्ति आय कम होगी। निरक्षर तथा अप्रशिक्षित व्यक्तियों से यह आशा नहीं की जा सकती कि वे जटिल मशीनरी का चालन और देख-रेख कर लेंगे। उनमें निवेश करके ही उनकी उत्पादकता बढ़ाई जा सकती है। शिक्षा के माध्यम से ही राज्य प्रभावशाली

श्रम-पूर्ति और राष्ट्र की उत्पादन क्षमता बढ़ा सकता है। शिक्षा प्रोग्राम विस्तृत तथा विविध होना आवश्यक है। प्राथमिक शिक्षा की जरूरत है ताकि स्कूल जाने की आयु वाला प्रत्येक बालक अनिवार्य शिक्षा प्राप्त कर सके। विश्वविद्यालयों के लिए विद्यार्थी प्रदान करने और अपेक्षाकृत अधिक शिक्षा सम्बन्धी सुविधाएँ देने के लिए और अधिक माध्यमिक स्कूल खोलने की जरूरत है। इसके साथ ही बिजली, वर्करों, शिल्पियों, अध्यापकों, कृषि सहायकों इत्यादि को शिक्षा देने के लए प्रशिक्षण संस्थाओं की जरूरत है। उच्चतर शिक्षा-श्रेणीकरण में विश्वविद्यालय शिक्षा तथा अनुसंधान संस्थाएँ आती हैं, जो डॉक्टरों, प्रशासकों, इन्जीनियरों और सब प्रकार के प्रशिक्षित व्यक्तियों की निरन्तर अधिक संख्या निकालें। अल्पविकसित देशों में, शिक्षा जैसे विस्तृत तथा अनेक रूप में निवेश केवल राज्य की छत्रछाया में ही सम्भव है।

ऐसे देशों में शिक्षा पर निवेश के महत्व पर आवश्यकता के सम्बन्ध में दो मत हैं। मानव पूँजी में निवेश अत्यधिक उत्पादक होता है। एक अल्पविकसित देश को कृषि तथा औद्योगिक वर्करों, डॉक्टरों, इन्जीनियरों, अध्यपकों, प्रशासकों आदि की जरूरत होती है, जोकि वस्तुओं और सेवाओं के प्रवाह को अधिक बढ़ाएँ। परन्तु वित्तीय साधनों की कमी के कारण बहुसंख्यक लोगों को शिक्षा सम्बन्धी सुविधाएँ प्रदान करने की समस्या अल्पविकसित देशों की क्षमता के बाहर की बात है। जो भी विधियाँ उपलब्ध होती हैं, उन्हें प्राथमिकताओं के आधार पर विभाजित करना पड़ता है और प्राथमिकताओं के प्रश्न पर अर्थशास्त्रियों में मतभेद है। शिक्षा उपभोक्ता सेवा भी है और निवेश सेवा भी, जहाँ तक शिक्षा निवेश है, यह प्रत्यक्ष रूप से उत्पादकता बढ़ाती है।

शिक्षा और डॉक्टरों, इन्जीनियरों, अध्यापकों, प्रशासको के शिक्षण पर खर्च की गई मुद्रा भी उतना ही निवेश है, जितना कि बाँध बनाने में खर्च की गई मुद्रा। परन्तु जब कृषकों को शिक्षित करने के साक्षरता-आन्दोलन पर मुद्रा खर्च की जाती है, तो **प्रोफेसर लुईस** के अनुसार यह प्रत्यक्षतः उत्पादन नहीं होती। उनकी धारणा है कि ***"शिक्षा का वह भाग, जोकि लाभदायक निवेश नहीं है, अन्य उपभोक्ता वस्तुओं के -यथा वस्त्र, मकान, या ग्रामोफोन के - बिल्कुल बराबर होता है,"*** क्योंकि वह कृषकों, नाईयों, घर के नौकरों को ''कुछ अधिक (पुस्तकों, समाचार पत्रों का) आनन्द लेने या कुछ अधिक समझने में'' सहायक होता है। पर, प्रोफेसर गॉलब्रेय जनसाधारण को शिक्षित करने में निवेश को भी उतना ही उत्पादक मानता है। उसका तर्क है कि ***"कृषकों तथा श्रमिकों को निरक्षरता से बचाना अने आप में एक ध्येय हो सका है। परन्तु किसी भी प्रकार की कृषि प्रगति के लिए यह एक अनिवार्य कदम भी है। दुनिया में कहीं भी ऐसा निरक्षर कृषक वर्ग नहीं है, जो प्रगतिशील हो और कहीं भी ऐसा साक्षर कृषि वर्ग नहीं है जो प्रगतिशील न हो। इस दृष्टि से शिक्षा, निवेश का अत्यधिक उत्पादक रूप् धारण कर लेती है।"***

(ख) लोक स्वास्थ्य तथा परिवार नियोजन - एक अन्य क्षेत्र, जिसमें राज्य ठोस कदम उठा सकता है, लोक स्वास्थ्य का है। उत्पादकता तथा श्रम की दक्षता बढ़ाने के लिए आवश्यक है कि लोगों का स्वास्थ्य बराबर सुधारा जाए। लोक स्वास्थ्य विधियों के अन्तर्गत ग्राम तथा नगर, दोनों ही क्षेत्रों में वातावरण सम्बन्धी स्वच्छता में सुधार-थमे हुए गंदे पानी को हटाना, गंदी बस्तियों की स्वच्छता, अच्छे

मकानों का प्रबंध, स्वच्छ जल की पूर्ति, मल प्रवाह की अच्छी सुविधाएँ, छूत रोगों का नियंत्रण, चिकित्सा तथा स्वास्थ्य-सेवाओं का प्रबन्ध करना - विशिष्ट रूप से मातृ एवं शिशु कल्याण और स्वास्थ्य शिक्षा तथा परिवार नियोजन और सबसे बढ़कर, स्वास्थ्य तथा चिकित्सा- सेविवर्ग के प्रशिक्षण के लिए प्रबन्ध करना। इस सबके लिए लोक प्राधिकारियों की ओर से योजनाबद्ध प्रयत्न आवश्यक है।

अल्पविकसित देशों में लोक स्वास्थ्य विधियाँ मुख्यतः दो कारणों से बहुत महत्व धारण कर लेती हैं। प्रथम, वे श्रम की उत्पादकता तथा दक्षता बढ़ाकर विकास प्रक्रिया में सहायता होती हैं; और दूसरे, वे मृत्यु-दर घटाकर जनसंख्या वृद्धि की दर बढ़ती हैं और इस प्रकार सरकार के लिए आवश्यक बना देती हैं कि वह परिवार नियोजन तथा शीघ्र विकास प्ररोग्राम अपनाए। परन्तु यदि जनसंख्या की वृद्धि नहीं रोकी जाती, तो विकास के सब प्रत्यन व्यर्थ होंगे क्योंकि अल्पविकसित देशों मे मृत्यु-दर पहले ही घट रही है, प्रति व्यक्ति आय बढ़ाने और जीवन का स्तर सुधारने के लिय यह अनिवार्य है कि जनंसख्या वृद्धि की दर रोकी जाए और परिवार नियोजन प्रोग्रामो को सर्वाधिक प्राथमिकता दी जाए। परिवार नियोजन का मतलब है सोच-समझ कर जन्म-दर घटाना। भारत पहला अल्पविकसित देश है जिसने सरकारी स्तर पर परिवार नियोजन प्रोग्राम अपनाया है। परिवार नियोजन नीति के निम्न तत्व हो सकते हैं:

परिवार नियोजन के सम्बन्ध में शिक्षित करना, जिससे सैक्स शिक्षा, विवाह सम्बन्धी परामर्श तथा बालक देख-रेख के विषय में मार्ग-दर्शन शामिल हों। सामाजिक संगठन, फिल्में, रेडियो तथा साहित्य इसके माध्यम हो सकते हैं। परिवार नियोजन सेवाएँ बहुत ही बड़े पैमाने पर प्रदान की जाएँ। परिवार नियोजन सेवा को सामान्य स्वास्थ्य तथ चिकित्सा सेवाओं के साथ जोड़ दिया जाए। ग्राम क्षेत्रों, औद्योगिक तथा अन्य संस्थाओं में परिवार नियोजन अस्तपा खोले जाएँ। परिवार नियोजन की कला जनसाधारण को शिक्षित करने के लिए चलती-फिरती यूनिटें हों। स्वेच्छाकृत संगठनों की सहायता भी ली जा सकती है। परिवार नियोजन केन्द्रों को चाहिए कि मुफ्त परामर्श दें। निरोधों का वितरण और यहाँ तक कि नसबन्दी भी मुफ्त करें।

7. **आय के वितरण को न्यायपूर्ण बनाना:-** अल्प विकसित देशों में राज्य का एक प्रमुख कार्य आय-वितरण की विषमताओं को कम करना है। फिर, समाजवादी समाज के आदर्श के लिये आर्थिक असमानताओं को कम करना और भी जरूरी हो जाता है। सरकार को चाहिए कि वह ऐसे कदम उठाये कि जिससे उत्पादन की प्रेरणाओं को कम किये बिना, धन एवं आय के वितरण की विषमताओं को दूर किया जा सके। यद्यपि **लुइस** के अनुसार ***"आय का वितरण अल्प-विकसित देशों के लिये विभिन्न प्रकार की कठिनाईयाँ पैदा करता है क्योंकि ये देश समानता को, प्रोत्साहनों और बचत के उच्च स्तर के साथ मिलने की प्रवृति रखते है किन्तु सशक्त राजकोषीय नीति द्वारा इन समस्याओं का हल खोजा जा सकता है।"***

8. **निवेश की दर में वृद्धि करना -** अल्प विकसित देशों में बचत की दर निवेश की आवश्यकता की तुलना में नीची होती है। अपर्याप्त बचत-निवेश के कारण सरकार के लिये यह जरूरी हो जाता है कि पूँजी निर्माण के कार्य को बढावा दिया जाये। इसके लिये राज्य करारोपण तथा मुद्रा-स्फीति द्वारा लोगों को अधिक बचत करने के लिये मजबूर कर सकता है। हाँ! निजी बचतों की अपर्याप्तता की दशा में सरकारी बचतों

को बढ़ाने का प्रयास किया जाना चाहिये और साथ ही उपयुक्त मौद्रिक तथा राजकोषीय उपायों द्वारा निजी बचतों को गतिशील करना चाहिए।

9. उत्पत्ति के साधनों की गतिशीलता में वृद्धि करना:- अल्प विकसित देशों की मुख्य समस्या विकास के वांछित साधनों की कमी व उनकी सापेक्षिक अगतिशीलता की है जबकि विकास की इन सभी बाधाओं को दूर करना सरकार के लिए अत्यावश्क हैं इसलिये राज्य को चाहिये कि शिक्षा प्रणाली एवं प्रशिक्षण सुविधाओं द्वारा श्रमिकों को वांछित दक्षता व तकनीकी ज्ञान प्रदान कराया जाये। जहाँ तक पूँजी की कमी और उसकी अगतिशीलता का प्रश्न है, सरकार इस सम्बन्ध में विदेशी पूँजी का आयात और घरेलू बचतों को गतिशील बनाने हेतु वित्तीय व बैकिंग संस्थाओं की स्थापना भी कर सकती है।

10.मौद्रिक नीति बनाना:- मौद्रिक नीति के अन्तर्गत मुख्य रूप से मुद्रा की मात्रा का नियमन, साख-सृजन, मुद्रा-स्फीति को रोकना एवं भुगतान संतुलन को अनुकूल बनाये रखना आदि कार्यों को सम्मिलित किया जाता है। विकास की बढ़ती हुई गति के साथ-साथ मुद्रा व साख की मात्रा को संतुलित बनाये रखना अत्यन्त आवश्यक समझा जाता है। अर्थव्यवस्था में राज्य मौद्रिक नीति अपनाकर बैकिंग प्रणाली का विस्तार, साख विस्तार, साख नियंत्रण और कीमतों मे स्थिरता लाती है। ये सब कार्य राज्य का केन्द्रीय बैंक करता है। इस नीति के लोगों में बचत करने की प्रवृत्ति को प्रोत्साहन मिलता है और इस बचत को सरकार देश के विकास कार्य पर खर्च करती है।

11. राजकोषीय नीति:- राजकोषीय नीति के अन्तर्गत सरकारी आय, सरकारी व्यय, सार्वजनिक ऋण तथा हीनार्थ-प्रबन्धन आदि को सम्मिलित किया जाता है। सरकार की आय-व्यय सम्बन्धी नीति आर्थिक विकास की प्रक्रिया को निम्न पाँच रूपों में प्रभावित करती है -

1. पूँजी संचयन में वृद्धि करने हेतु,
2. आय के वितरण में परिवर्तन लाने हेतु
3. साधनों के वितरण को प्रभावित करने हेतु,
4. मुद्रा-स्फीति पर रोक लगाने हेतु, और
5. मन्दी तथा बेरोजगारी आदि को दूर करने के लिए।

इसके अतिरिक्त राजकोषीय नीति का उपयोग विदेशी व्यापार पर नियंत्रण रखने, निर्यातों, को प्रोत्साहित करने, विलासताओं के आयात का नियमन करने और विदेशी विनिमय कोष को बढ़ाने के लिए भी किया जा सकता है। राजकोषीय नीति द्वारा सरकार बचत, निवेश तथा पूँजी निर्माण की दर को बढ़ाकर राष्ट्रीय आय और रोजगार में वृद्धि करती है। इसके लिए सरकार उचित कर, बजट तथा सार्वजनिक व्यय एवं उधार-ग्रहण नीतियां अपनाती हैं। जो राजकोषीय नीति के अंग हैं। इस नीति के अन्तर्गत ही राज्य भुगतान शेष एवं विदेशी विनिमय की समस्याओं का समाधान करके, स्फीति को रोककर, देश में आर्थिक विकास की दर को बढ़ने में सहायक होता है।

12. मूल्य नीति:- विकास की प्रारम्भिक अवस्था में भारी मात्रा में विनियोग किये जाने के कारण वस्तुओं और सेवाओं की कीमतें बढ़ने लगती है। यह कीमत-स्फीति प्रायः मुद्रा स्फीति (हीनार्थ प्रबन्धन) को परिणाम होती है। मूल्य-स्तर में होने वाली यह वृद्धि योजनाओं की विकास लागत को बढ़ा देती है जिससे

आर्थिक विकास के अर्थ-प्रबन्धन में कठिनाई होने लगती है। फिर, इस मूल्य-वृद्धि का सामान्य जता पर भी बुरा प्रभाव पड़ता है। अतः सरकार के लिए यह आवश्यक हो जाता है कि वह एक उपयुक्त एवं समन्वित मूल्य-नीति द्वारा कीमत स्थायित्व रखकर विकाय कार्य को तरलता प्रदान करें।

13. **विदेश व्यापार की नीति:-** विदेशी व्यापार की नीति का उद्देश्य विदेशी व्यापार को प्रोत्साहन देना और विदेशी विनिमय कोषों की सुरक्षा करना है। देश का भुगतान संतुलन अनुकूल बना रहे और विदेशी विनिमय कोषों को अपव्यय न हो सके, इस दृष्टि से सरकार प्रायः विनिमय नियन्त्रण की विभिन्न रीतियाँ अपनाती रहती है। अल्पविकसित देशों में विदेशी व्यापार का आकार बहुत सीमित होता है क्योकिं ऐसे देश कुछ प्राथमिक वस्तुओं जैसे खनिज पदार्थ, कच्चा माल, कृषि पदार्थ आदि का निर्यात करते हैं और उनके बदले अपनी आवश्यकताओं के अनुरूप निर्मित उपभोक्ता वस्तुएँ तथा पूँजी पदार्थ आयात करते हैं। कच्चे माल की अपेक्षा निर्मित माल और पूँजी पदार्थों का मूल्य अधिक होने के कारण आयातें नियातों से अधिक होती हैं जिससे भुगतान सन्तुलन तथा विदेशी विनिमय की समस्याएँ उत्पन्न हो जाती हैं जिन्हें राज्य की हल कर सकता है।

इनके समाधान के लिए विदेशी सहायता विकसित देशों की सरकारों से तथा अन्तर्राष्ट्रीय संस्थाओं से प्राप्त करना, राज्य का कार्यभाग होता है। इसके अतिरिक्त अनावश्यक अर्द्ध-विलासताओं एवं विलासताओं के आयात पर सरकार ही प्रतिबन्ध लगा सकती है। आयात-प्रतिस्थापन तथा निर्यात-प्रोत्साहन के लिए उचित नीतियाँ अपना कर सरकार भुगतान सन्तुलन एवं विदेशी विनिमय की समस्याओं को हल कर सकती है। इनके लिए, राज्य आयात प्रतिस्थापना उद्योगों को स्थापित करने हेतु वित्तीय, तकनीकी आदि सहायता प्रदान करती है। दूसरी ओर, निर्यात-प्रोत्साहन के लिए निर्यात उद्योगों को पूँजी पदार्थ, कच्चा माल, वित्त आदि अनेक सुविधाएँ देकर बढ़िया एवं सस्ता माल बनाने मे सहायक सिद्ध होती है। इसके लिए सरकार निर्यात करों में छूट द्वारा, विदेशों के साथ द्विपक्षीय समझौतों द्वारा राज्य व्यापार निगत की स्थापना करके, विदेशों में औद्योगिक मेलों एवं प्रदर्शनियों में भाग लेकर भी सहायता करती है। इस प्रकार राज्य अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार द्वारा बाजार का विस्तार करके साधनों के उचित प्रयोग द्वारा आय, निवेश तथा रोजगार को बढ़ाने में सहायत होता है।

अल्पविकसित देशों में सरकार के कार्य में स्वच्छ प्रशासन स्थापित करना, निर्धन-वर्ग को सामाजिक न्याय दिलाना, प्रदूषण को रोकना, स्वच्छ जल की व्यवस्था करना, और बेरोजगारी दूर करना इत्यादि सम्मिलित हैं। **प्रो. हरमन फाइनर** ने राज्य के कार्यों पर प्रकाश डालते हुए लिखा है कि ***''यदि अल्पविकसित देश आर्थिक विकास को प्रोत्साहन देना चाहते हैं तो इन देशों की सरकारों को चाहिए कि समाज को निम्न सेवायें प्रदान करें - व्यवस्था, सामाजिक, न्याय, पुलिस, प्रशासन, प्रतिरक्षा, उत्पादन में योग्यता, निवेश के लिए अनुकूल वातावरण, सम्पत्ति सम्बन्धी उचित व परिभाषित कानून व अधिकार, स्थिर सुदृढ़ मुद्रा व्यवस्था तथा मुड़ा के उचित प्रताप तथा राजनैतिक स्थिरता व शान्ति।''***

11.5 बाजार और आर्थिक विकास

आधुनिक मिश्रित अर्थव्यवस्था में निजी क्षेत्र बहुत बड़ा होता है। इसमें जो कुछ निर्णय लिए जाते हैं और उनके आधार पर जो क्रियाकलाप होते हैं उनका बाजार से सीधा सम्बन्ध होता है। बाजार दरअसल वस्तु विशेष के विक्रेताओं और क्रेताओं का संगठन होता है। जो आपस में प्रतियोगिता करते हुए व्यवहार करते हैं। इन्हीं के व्यवहारों से या हम कह सकते हैं कि मांग और पूर्ति की दशाओं के आधार पर कीमतें निर्धारित होती है।

किसी भी देश के बाजार जितने अच्छे संगठित होते है वहां पर कीमतें सही निर्णय लेने में उतनी ही अधक सहायक होती है। लाभ की प्रेरणा से काम करने वाले उत्पादक उन्हें उद्योगों में साधनो में लगाते हैं जहां मांग की प्रबलता के कारण कीमतें आकर्षक होती है। बाजार संगठन अच्छा होने पर देश के सभी भागों में एक-सी कीमतें होती है और फिर इनके आधार पर साधनों का जो आंवटन होता है। वह विवकेपूर्ण होता है। परन्तु जब आय असमानताएं अधिक होती है तो बाजार संगठन अच्छा होते हुए भी साधनों का उचित आवंटन नहीं होता। इन परिस्थितियों में गैर-जरूरी वस्तुओं का उत्पादन अधिक होता है जबकि जरूरी वस्तुओं की भारी कमी बनी रहती है। विकसित देशों में प्रायः बाजार संगठन अच्छा होता है और उसके द्वारा साधनों का जो आवंटन होता है वह विवेकपूर्ण और कुशल होने के साथ-साथ विकास में सहायक भी होता है।

एडम स्मिथ ने अपनी पुस्तक 'Wealth of Nation' में लिखा था कि ***"श्रम-विभाजन बाजार के आकार के द्वारा सीमित होता है।"*** **आलिन ए. यंग** ने **एडम स्मिथ** के उपरोक्त कथन की अपने ढंग से व्याख्या करते हुए स्पष्ट किया है कि निवेश-प्रेरणा बाजार के आकार द्वारा सीमित होती है। **रेग्नर नर्क्से** इस विचार को न केवल स्वीकार करते हैं, बल्कि वे इसके आधार पर अल्प-विकसित देशों के गरीबी के दुष्चक्र की व्याख्या भी करते है। अल्प-विकसित देशों में क्रय-शक्ति का अभाव होता है और घरेलू बाजार बहुत छोटा होता है। उपभोग की वस्तुओं और सेवाओं की मांग थोड़ी होती है। इसलिए उनके उत्पादन के लिए पूँजी की मांग भी थोड़ी होनी स्वाभाविक है।

बाजार का आकार पूँजी के निवेश से सम्बन्धित प्रेरणा को सभी तरह की अर्थव्यवस्था में प्रभावित करता है। विनिमय पर आधारित अर्थव्यवस्था में बाजार का छोटा आकार पूँजी के अधिक प्रयोग को हतोत्साहित करता है। उद्यमकर्ता हमेशा ही बाजार में वस्तु की मांग को ध्यान में रखकर प्लांट का आकार तय करते है। उदाहरण के लिए यदि कार बनाने वाले प्लांट तीन आकार के है जिनमें वार्षिक क्षमताएँ 1 लाख, 5 लाख और 10 लाख कार उत्पादन कर सकने की हैं तो स्पष्ट है कि मॉरीशस, नेपाल, सूडान, मोरक्को, कीनिया आदि जैसे छोटे देशों में मोटर कार उत्पादित करने वाला कारखाना स्थापित ही नहीं किया जाएगा, क्योंकि इन देशों में कारों का बाजार सीमित है। आज वस्तुस्थिति यह है कि अल्प-विकसित देशों में राष्ट्रीय आय के स्तर बहुत नीचे होने के कारण उपभोग की वस्तुओं पर कुल व्यय बहुत कम होता है और इसलिए किभी भी उद्योग में भारी पूँजी लगाकर बड़े पैमाने पर कारखाने की स्थापना के लिए निवेशकों को प्रेरणा नहीं मिलती।

विनिमय प्रणाली पर आधारित अर्थव्यवस्था में उद्यमकर्ता जब वस्तु विशेष के बाजार को छोटा देखता है, तो वह उस उद्योग में प्रवेश नहीं करता। उसको लगता है कि यदि वह पूंजी-प्रधान ढंग से उत्पादन करने वाले बड़े कारखाने की स्थापना करेगा तो वह तकनीकी दृष्टि से कुशल होने पर भी आर्थिक दृष्टि से लाभदायक सिद्ध नहीं

होगा। कभी-कभी इस विश्वास के साथ कुछ उद्यमकर्त्ता निवेश करते हैं कि वे विज्ञापन द्वारा अपनी वस्तु के प्रति लोगों को आकर्षित कर लेंगे और इस प्रकार उनकी वस्तु का बाजार वर्तमान में सीमित होते हुए भी भविष्य में बढ़ जायेगा लेकिन इस प्रकार कुल प्रभावक मांग को बढ़ा पाना आसान नहीं होता। अल्प-विकसित देशों में जहां बहुत सारे लोग जीवन-निर्वाह के स्तर पर ही होते है, कुल प्रभावक मांग को बढ़ा पाना तो दूर रहा, किसी भी वस्तु के बाजार को फैला पाना भी कठिन होता है। अतः **नर्क्से** इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि ***"कम आय वाले देश में घरेलू बाजार का छोटा आकार उस बाजार के लिए माल पैदा करने वाली फार्मों तथा उद्योग में पूँजी निवेश में बाधक होता है और इस अर्थ में सामान्य रूप से विकास कार्य में भी रूकावट होता है।"***

11.6 बाजार के आकार के निर्धारक तत्व

अल्प-विकसित देशों में बाजार का आकार छोटा होता है। इसलिए वहां पर निवेश प्रेरणा का अभाव होता है जो पूँजी-निर्माण की दर को नीचा रखता है। यह स्थिति इस बात को स्पष्ट करती है कि बाजार के विस्तार द्वारा निवेश-प्रेरणा को बढ़ा पाना सम्भव होता है जिससे गरीबी के दुष्चक्र को तोड़ा जा सकता है।

कुछ लोग समझते है कि अल्प-विकसित देशों में मौद्रिक विस्तार द्वारा बाजार को बढ़ाया जा सकता है। नर्क्स के अनुसार यह विचाराधारा गलत है। इस गलत धारणा का कारण केंस के सिद्धान्त को अल्प-विकसित देश की परिस्थितियों में लागू करने की कोशिश है। **नर्क्से** का विचार है कि अल्प-विकसित देशों में केंसवादी अर्थशास्त्र के अर्थ में प्रभावक माँग की कमी नहीं होती। सभी अल्प-विकसित देशों में परम्परागत अर्थशास्त्र के अर्थ में क्रय-शक्ति का अभाव होता है। मतलब यह है कि इन देशों में उत्पादिता कम होने के कारण वास्तविक क्रय-शक्ति कम होती है और इसे मुद्रा के विस्तार द्वारा बढ़ा पाना सम्भव नहीं होता। देश की जनसंख्या का उसका भौगोलिक क्षेत्र भी घरेलू बाजार का आकार निश्चित नहीं करते। किसी देश की जनसंख्या अधिक है परन्तु उत्पादिता का स्तर नीचा होने के कारण प्रति व्यक्ति आय कम है तो वहां बाजार का आकार छोटो होगा। इसी तरह किसी अत्यन्त गरीब देश का भौगोलिक क्षेत्र बड़ा होने पर भी वहां बाजार का आकार छोटा ही रहेगा।

निस्संदेह परिवहन लागत तथा व्यापार अवरोध बाजार के विस्तार में बाधक होते हैं। सीमाशुल्क आयात कोटा प्रणाली, विनिमय-नियन्त्रण आदि व्यापार में बाधा उत्पन्न करते हैं। इससे अन्तर्राष्ट्रीय बाजार छोटा हो जाता है। परिवहन लागत अधिक होने पर बहुत सारी वस्तुओं के बाजार स्थानीय रह जाते हैं। अतः निवेशकों को निवेश के लिए पर्याप्त प्रेरणा नहीं मिलती और पूँजी निर्माण का स्तर नीचा रहता है। 1951 में संयुक्त राष्ट्र संघ के विशेषज्ञों ने अपनी रिपोर्ट में कहा था कि कुछ अल्प-विकसित देश इतने छोटे हैं कि वहां के घरेलू बाजारों के आधार पर बड़े उद्योगों की स्थापना नहीं हो सकती। उन्हें अन्य विधियों के द्वारा अपने बाजारों का विस्तार करना चाहिए।

इसमें सन्देह नहीं है कि उपरोक्त रीतियों से बाजार का थोड़ा विस्तार होगा। सीमा-शुल्क हट जाने पर वस्तुओं के मूल्य कम होने पर उनकी मांग बढ़ेगी। लेकिन नीची उत्पादिता और थोड़ी राष्ट्रीय आय वाले देशों में इस प्रकार बाजार का विस्तार बहुत अधिक नहीं हो सकेगा। जहां तक परिवहन लागत में कमी द्वारा बाजार को फैलाने का प्रश्न है, इससे कुछ सफलता मिल सकती है। लेकिन परिवहन लागत में कमी का बाजार के विस्तार पर ठीक वही असर होता है जो दूसरी लागतों में कमी का होता है। इसलिए बाजार का विस्तार पर ठीक वही असर होता है जो दूसरी लागतों में कमी का होता है। इसलिए बाजार का विस्तार बढ़ने के लिए परिवहन लागत में कमी

पर जोर देना ठीक नहीं है। चूँकि व्यक्तिगत उत्पादक विज्ञापन तथा विक्रय-कला द्वारा अपनी वस्तु की बिक्री बढ़ा पाने में सफल हो जाते हैं, इसलिए कुछ लोगों की यह धारणा बन जाती है कि इस प्रकार बाजार का विस्तार हो सकता है, जो बाद में पूँजी निर्माण में सहायक सिद्ध होता है। लेकिन जो बात किसी एक फर्म के विषय में सही है, वह संपूर्ण देश के विषय में ठीक नहीं है।

नर्क्से के अनुसार बाजार का आकार मुख्य रूप से उत्पादिता के स्तर पर निर्भर होता है। कुल मिलाकर समस्या पर विचार करने पर स्पष्ट हो जाता है कि उत्पादन की मात्रा द्वारा न केवल बाजार का आकार निर्धारित होता है, बल्कि बाजार के विस्तार की सीमा भी निश्चित होती है। किसी भी देश में जनंसख्या स्थित रहने पर भी न तो वस्तुओं और सेवाओं का उत्पादन स्थिर रहता और न ही उपभोग की मात्रा का का स्थिर रहना आवष्यक है। उत्पादिता के स्तर में सुधार द्वारा वस्तुओं और सेवाओं के प्रवाह में वृद्धि होती है और उपभोग का स्तर भी ऊपर उठाता है। ध्यान दिया जाना चाहिए। कृषि में भूमि सुधारों और तकनीकी परिवर्तनों से उत्पादिता के स्तर में सुधार होता है जिससे किसनों की क्रय-शक्ति बढ़ती है। उनका जीवन-स्तर ऊपर उठता है और वे कई प्रकार की औद्योगिक वस्तुओं, जैसे रेडियो, साइकिल, घड़ी, जूते, वस्त्र, इत्यादि की अधिक मांग करने लगते है।

इस प्रकार बाजार के विस्तार से निवेशकों को निवेश करने के लिए प्रेरणा मिलती है। यूरोप में औद्योगिक क्रांति के समय फ्रांस, इग्लैंड आदि देशों में भूमि सुधारों पर उद्योगपतियों ने इसलिए जोर दिया था क्योंकि वे जानते थे कि इससे कृषि क्षेत्र में उत्पादिता में वृद्धि होगी और फिर उनके द्वारा उत्पादित वस्तुओं के बाजार का भी विस्तार होगा।

उत्पादन की प्रक्रिया जितनी अधिक घुमावदार होती है, अन्य साधनों की तुलना में पूँजी का अनुपात उतना ही अधिक होता है और उत्पादिता का स्तर भी उतना ही अधिक होती है। इस प्रकार पूँजी-प्रधान रीतियों और मशीनों तथा अन्य उपकरणों के प्रयोग द्वारा उत्पादिता को बढ़ा पाना सम्भव होता है। पश्चिमी देशों के अनुभवों से यह भी स्पष्ट हुआ है कि उत्पादिता को बढ़ाने में तकनीकी नवप्रवर्तनों की भूमिका पूँजी के भारी प्रयोग से कम महत्वपूर्ण नहीं है। परन्तु साथ ही यह भी सच है कि पूँजी की मात्रा नव-प्रवर्तनों की सीमा निर्धारित करती है। संयुक्त राज्य अमेरिका, स्वीडन, फ्रांस, जर्मनी आदि में उत्पादिता के स्तर ऊचे हैं।

कारण यह है कि इन सभी देशों में पूँजी-प्रधान रीतियों द्वारा उत्पादन किया जाता है। साथ ही नव-प्रवर्तन की प्रक्रिया नियमित रूप से चलती रहती है। फलतः वहां के सामान्य व्यक्ति के पास भी इतनी क्रय-शक्ति होती है कि वह सुविधा की सभी वस्तुएं, जैसे टेलीविजन, स्कूटर, धुलाई की मशीन, भोजन बनाने की मशीन, रेफ्रिजरेटर इत्यादि खरीद सकता है। उसका मांस, मक्खन, शराब, पुस्तकों आदि का उपभोग भी अधिक होता है। इस तरह उत्पादिता का ऊँचा स्तर बाजार के विस्तार को बढ़ाकर उत्पादकों को पूँजी निवेश करने के लिए प्रेरित करता है।

बाजार के आकार का विश्लेषण करते हुए अक्सर यह कहा जाता है कि यदि लोगों की मौद्रिक आय स्थिर रहे तो बस कीमतों में कमी करके ही बाजार के विस्तार को बढ़ाया जा सकता है। लेकिन यह उसी समय सम्भव होगा जबकि लोगों की उत्पादिता और वास्तविक आय में वृद्धि हो। बाजार का आकार एक अन्य प्रकार से भी बढ़ सकता है। यदि स्थिर कीमतों की दशा में लोगों की मौद्रिक आय अधिक हो जाती है तो भी बाजार का विस्तार फैल जाता है परन्तु यह भी उसी स्थिति में संभव हो पायेगा जबकि लोगों की उत्पादन क्षमता में वृद्धि से उनकी वास्तविक आय में वृद्धि हो।

नर्क्से का विचार है कि अल्प-विकसित देशों में **जे. बी. से** का बाजार का नियम लागू होता है। वहां पर उत्पादन अपनी मांग स्वयं उत्पन्न कर लेता है और बाजार का आकार उत्पादन की मात्रा पर निर्भर करता है। अंतिम विश्लेषण में उत्पादिता में बहुमुखी वृद्धि द्वारा ही बाजार का विस्तार हो सकता है। खरीदने की क्षमता का अर्थ उत्पादन करने की क्षमता होता है।

उत्पादिता और बाजार के आकार के बीच संबंध के विषय में यह जान लेना आवश्यक है कि किसी उद्योग विशेष में पूँजी के निवेश द्वारा उत्पादिता के स्तर में सुधार का उत्पादन बढ़ा लेने से ही उसके बाजार का क्षेत्र नहीं बढ़ सकेगा। उदाहरण के लिए, ऊनी स्वेटर बनाने वाली मिल में नई मशीनें लगाई जाती है। इससे मिल के श्रमिकों की उत्पादिता और उनकी वास्तविक आय अधिक हो जाती है। लेकिन दूसरे उद्योगों में उत्पादिता का स्तर ऊँचा नहीं उठता और लोगों की वास्तविक आय पहले की भांति रहती है। इस स्थिति में स्वेटर की मिल में उत्पादन अधिक होने पर पर्याप्त मांग उत्पन्न नहीं हो सकेगी। इसका कारण यह है कि स्वेटर की मिल में काम करने वाले व्यक्तियों की आय में जो भी वृद्धि होगी उस सम्पूर्ण आय को वे स्वेटर पर व्यय नहीं करेंगे और दूसरे क्षेत्रों में उत्पादिता स्थिर रहने के कारण स्वेटर की मांग स्थिर रहेगी। इस प्रकार यह स्पष्ट हो जाता है कि बाजार के आकार में विस्तार के लिए यह आवश्यक है कि उत्पादन के सभी क्षेत्रों में उत्पादिता में सुधार हो।

11.7 आर्थिक विकास तथा बाजार की अपूर्णतायें

प्रो. मायर एवं बाल्डविन ने अल्प-विकसित देशों के आर्थिक पिछडेपन के लिये उत्तरदायी आर्थिक कारणों को मुख्य कारण बाजार की अपूर्णतायें को माना है। अल्प-विकसित देशों में बाजार की अपूर्णतायें, अनेक रूपों में दृष्टिगोचर होती हैं। उदाहरणार्थ, उत्पत्ति के साधनों की अगतिशीलता, कीमत दृढ़ता, बाजार दशाओं का कम ज्ञान, दृढ़ सामाजिक ढाँचा, विशिष्टीकरण एवं प्रमापीकरण का अभाव तथा अविकसित तकनीक। बाजार अपूर्णताओं के विद्यमान होने पर सबसे बड़ी कठिनाई यह होती है कि उत्पत्ति के साधनों का समुचित वितरण तथा सर्वोत्तम ढंग से उपयोग नहीं हो पाता है जिससे इन देशों में वास्तविक उत्पादन सम्भाव्य उत्पादन से नीचा बना रहता है।

श्रम-शक्ति की अगतिशीलता और उसका कुशलता के साथ उपयोग न होने के कारण बेरोजगारी बढ़ने लगती है। श्रमिकों की उत्पादकता में कमी होती है। सामाजिक व सांस्कृतिक बाधाओं के कारण, श्रम व पूँजी का कुशलता के साथ वितरण नहीं हो पाता, जिसके फलस्वरूप एक तरफ पूँजी की सीमान्त-क्षमता गिरने लगती है तो दूसरी ओर आर्थिक विकास अवरूद्ध हो जाता है। इन सब घटकों का एक सम्मिलित प्रभाव यह भी होता है कि इन देशों में बाजार अत्यन्त सीमित बने रहते है और यह देश अपनी उत्पादन-सीमाओं पर पहुँच नहीं पाते।

आर्थिक विकास के लिए पिछेड़ हुए देशों की अर्थ-व्यवस्था की बाजार सम्बन्धी अपूर्णताएं समाप्त की जानी चाहिये जिससे कि साधनों का सर्वोत्तम ढंग से उपयोग सम्भव हो सके। चूँकि बाजार अपूर्णतायें, साधनों की अगतिशीलता एवं क्षेत्रीय असंतुलन को उत्पन्न करती हैं इसलिये आवश्यकता इस बात की है कि -

1. सामाजिक व आर्थिक संगठनों के वैकल्पिक स्वरूपों का निर्माण किया जाये,
2. विद्यमान साधनों का कुशलतापूर्वक उपयोग किया जाये,
3. एकाधिकार, प्रवृत्तियों पर रोक लगाई जाये,

4. पूँजी व साख संस्थाओं का विस्तार किया जाये तथा
5. छोटे व्यापारियों को उत्पादन की नई तकनीक व क्षेत्रों का ज्ञान कराया जाए।

लेकिन स्मरण रहे, बाजार की अपूर्णताओं को दूर करना आर्थिक विकास को केवल आंशिक रूप से प्रभावित करता है। **मायर एवं बाल्डबिन** का कहना है कि ***"पिछड़े देशों में साधनों के अनुकूलतम आवंटन के लिए बाजार अपूर्णताओं को दूर करना ही केवल पर्याप्त नही है, अपितु मुख्य समस्या साधनों के सर्वोपयुक्त युक्त उपयोग एवं संरचनात्मक परिवर्तनों की है, न कि विद्यमान साधनों की करीने से व्यवस्थित करने की। दूसरे शब्दों में, मुख्य आवश्यकता उत्पादन सीमाओं (लक्ष्यों) को आगे बढ़ाने की न कि केवल उन सीमाओं पर पहुँचने की।"***

संरचनात्मक परिवर्तनों से आशय, कृषि पर जनसंख्या के भार को कम करना तथा सामाजिक व्यवस्था में परिवर्तन आदि लाने से है। **प्रो. सिंगर** ने इस सम्बन्ध में सुझाव देते हुए कहा है कि अल्प-विकसित देशों में कृषि पर निर्भर 70 प्रतिशत जनसंख्या को घटाकर 20 प्रतिशत कर दिया जाये तथा गैर-कृषि क्षेत्रों में लगी जनसंख्या के वर्तमान 30 प्रतिशत अनुपात को बढ़ाकर 80 प्रतिशत कर देना चाहिये। परन्तु यह सब कुछ तभी सम्भव हो सकता है जबकि समाज में व्यापक भूमि सुधार, गतिशील बाजार व्यवस्था, नूतन साख संस्थायें, जन-जागृति तथा मानवीय मूल्यों में नई प्रेरणायें उदित हो सकें। **मायर एवं वाल्डविन** ने इसी तथ्य का समर्थन करते हुए लिखा है ***"यदि राष्ट्रीय आय में तीव्र वृद्धि करनी है तो इसके लिये नूतन आवाश्यकताएँ, नयी अभिरूचियाँ, नवीन उत्प्रेरणाएँ, उत्पादन के नये ढंग व नयी संस्थाओं का नव-निर्माण करना जरूरी होगा।"***

11.8 अभ्यास प्रश्न

रिक्त स्थान भरों:-

1. प्रारम्भ में आर्थिक विकास में ..... की कोई महत्वपूर्ण भूमिका नहीं होती थी।
2. प्रो. मायर एवं बाल्डबिन का कहना है कि आर्थिक क्षेत्र में राज्य के हस्तक्षेप की क्या सीमा हो इसका ..... है।
3. ..... के शब्दों में ''कोई भी देश आर्थिक क्षेत्र में अपनी बुद्धिमान सरकार के सक्रिय सहयोग और साझेदारी के बिना आज तक आर्थिक विकास नहीं कर सका है।''
4. प्रो. आर्थर लुइस ने आर्थिक विकास हेतु सरकार द्वारा किये जाने वाले कार्यों को ..... वर्गों में विभाजित किया है।
5. अल्पविकसित देशों में जनसंख्या का .....से अधिक भाग कृषि में लगा है।
6. अल्पविकसित देशों में निजी उद्यम केवल ..... के क्षेत्र में ही पाया जाता है।
7. परिवार नियोजन का मतलब है सोच-समझ कर .....घटाना।
8. ..... नीति के अन्तर्गत मुख्य रूप से मुद्रा की मात्रा का नियमन, साख-सृजन, मुद्रा-स्फीति को रोकना एवं भुगतान संतुलन को अनुकूल बनाये रखना आदि कार्यों को सम्मिलित किया जाता है।
9. ..... नीति के अन्तर्गत सरकारी आय, सरकारी व्यय, सार्वजनिक ऋण तथा हीनार्थ-प्रबन्धन आदि को सम्मिलित किया जाता है।

10. आधुनिक मिश्रित अर्थव्यवस्था में ..... क्षेत्र बहुत बड़ा होता है।
11. अल्प-विकसित देशों में बाजार का आकार ..... होता है।
12. नर्क्स के अनुसार बाजार का आकार मुख्य रूप से ..... के स्तर पर निर्भर होता है।
13. प्रो. मायर एवं बाल्डविन ने अल्प-विकसित देशों के आर्थिक पिछडेपन के लिये उत्तरदायी आर्थिक कारणों को मुख्य कारण ..... को माना है।

11.9 सांराश

प्रारम्भ में राज्य सरकार का मुख्य काम केवल देश की सुरक्षा मान जात था परन्तु धीरे - धीरे इस विचारधारा में परिवर्तन आया और एक वर्ग राज्य सरकार के आर्थिक क्रियाओं में सहयोग का समर्थन करने लगा, इस दो प्रकार की विचारधारायें पायी जाने लगी। **प्रथम** विचारधारा के अनुसार सम्पूर्ण आर्थिक क्रियाएँ राज्य के नियन्त्रण के अन्तर्गत होनी चाहिए। **द्वितीय** विचाराधारा के समर्थक पूर्ण राजकीय हस्तक्षेप के पक्षपाती नहीं है। अब यह सर्वथा माना जाता है कि एक अल्पविकसित देश में निहित कठोरताओं पर काबू पाने के लिए राज्य को निश्चियात्मक कार्य करना होगा।

प्रो. आर्थर लुइस ने आर्थिक विकास हेतु सरकार द्वारा किये जाने वाले कार्यों को नौ वर्गों में विभाजित किया है। लेकिन मोटे तौर पर आर्थिक विकास को प्रोन्नत करने और समाज के आर्थिक जीवन को बढ़ावा देने के लिए सरकारी संस्थानों व सरकार द्वारा किये जाने वाले मुख्य कार्य इस प्रकार है कृषि का विकास करना, उत्पादकता में वृद्धि भूमि-सुधार, प्राकृतिक संसाधनों का विकास ,औद्योगिक विकास करना, सामाजिक ढाँचों का विकास, शिक्षा, लोक स्वास्थ्य तथा परिवार नियोजन, आय के वितरण को न्यायपूर्ण बनाना, निवेश की दर में वृद्धि करना, उत्पत्ति के साधनों की गतिशीलता में वृद्धि करना ,मौद्रिक नीति , राजकोषीय नीति ,मूल्य नीति और विदेश व्यापार की नीति बनाना।

आर्थिक विकास के निर्धारक में बाजार के आकार की भूमिका का महत्व है। आधुनिक मिश्रित अर्थव्यवस्था में निजी क्षेत्र बहुत बड़ा होता है। इसमें जो कुछ निर्णय लिए जाते हैं और उनके आधार पर जो क्रियाकलाप होते हैं उनका बाजार से सीधा सम्बन्ध होता है। बाजार का आकार पूँजी के निवेश से सम्बन्धित प्रेरणा को सभी तरह की अर्थव्यवस्था में प्रभावित करता है। अल्प-विकसित देशों में बाजार का आकार छोटा होता है। इसलिए वहां पर निवेश प्रेरणा का अभाव होता है।

प्रो. मायर एवं बाल्डविन ने अल्प-विकसित देशों के आर्थिक पिछडेपन के लिये उत्तरदायी आर्थिक कारणों को मुख्य कारण बाजार की अपूर्णतायें को माना है। पिछड़े देशों में साधनों के अनुकूलतम आवंटन के लिए बाजार अपूर्णताओं को दूर करना ही केवल प्र्याप्त नही है, अपितु मुख्य समस्या साधनों के सर्वोपयुक्त उपयोग एवं संरचनात्मक परिवर्तनों की है।

11.10 शब्दावली

- **पलायन -** काम की तलाश में अपने गांव या शहर को छोड़ कर दूसरे स्थान पर जाना।
- **आधारभूत संरचना -** विकास में सहायक आधार जैसे-सड़क, परिवहन, विद्युत, लोह इस्पात, सीमेंट उद्योग आदि।

- **वृहद् -** बड़ा या बड़े उद्योग
- **उद्यम -** उद्योग लगाने का जोखिम उठाना
- **रियायतें -** छूट देना
- **पुनगर्ठन -** ऐसा उद्योग जो संगठन में दोष के कारण हानि में चल रहे हो उनका संगठन व्यवस्था में सुधार
- **श्रम प्रतिस्थापन -** ऐसी व्यवस्था जहाँ श्रम के स्थान पर मशीनों का प्रयोग किया जाये।
- **गतिशील उद्यमी -** ऐसे उद्यमी जिनकी विचार धारा आधुनिक हो और जो नवीन तकनीक को बढ़ावा दें।
- **संवर्धन -** वृद्धि या विकास करना

11.11 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

रिक्त स्थान भरों:-

(1) राज्य अर्थात सरकार (2) कोई सिद्धान्त नहीं (3) प्रो. डब्ल्यू आर्थर लुइस
(4) नौ वर्गों (5) 70 प्रतिशत (6) उपभोक्ता वस्तुओं
(7) जन्म-दर (8) मौद्रिक नीति (9) राजकोषीय नीति
(10) निजी क्षेत्र (11) छोटा (12) उत्पादिता
(13) बाजार की अपूर्णतायें

11.12 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

- Dhingra, I. C. (2009), "*Development Economics*", Sultan Chand and Sons.
- Jhingan, M. L. (2000),"*Economics of Development and Planning*", Vrinda Publications Pvt. Ltd. Delhi.
- Mishra, S.K. and Puri, V.K.(2007), "*Economics of Development and Planning Theory and Practice*", Himalaya Publishing House.
- Singh, S.P. (2010),"*Economics of Development and Planning and Practics*", S Chand Publishing House.

11.13 सहायक/उपयोग पाठ्य सामग्री

- Allan C. Reddy, David P. Campbell (1994), "*Marketing's Role in Economic Development*", Greenwood Press
- Brace, Paul (1994). "*State Government and Economic Performance*", The Johns Hopkins University Press Ltd. London.
- Hayami, Yujiro, Godo, Yoshihisu, (2004), "*Development Economics*", Oxford University Press India.
- Jhingan, M. L. (2000),"*Economics of Development and Planning*", Vrinda Publications Pvt. Ltd. Delhi.

11.14 निबन्धात्मक प्रश्न

1. सरकारी संस्थान का आर्थिक विकास पर क्या प्रभाव पड़ता है?
2. आर्थिक विकास को प्रोन्नत करने सम्बन्धी सरकारी कार्य पर प्रकाश डालिए।
3. आर्थिक विकास के निर्धारक में बाजार के आकार की भूमिका का वर्णन करो।

इकाई 12- गरीबी के संकेतक तथा प्रमाप

(Indicators and Measurements of Poverty)

12.1 प्रस्तावना

12.2 उद्देश्य

12.3 गरीबी

12.4 गरीबी के संकेतक तथा प्रमाप

12.5 भारतीय गरीबी के माध्यम से गरीबी के संकेतक तथा प्रमाप का वर्णन

12.5.1 वैश्विक भूखमरी सूचकांक

12.5.2 मानव गरीबी सूचकांक

12.5.3 बहुआयामी गरीबी सूचकांक

12.6 अभ्यास प्रश्न

12.7 सांराश

12.8 शब्दावली

12.9 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

12.10 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

12.11 सहायक/उपयोग पाठ्य सामग्री

12.12 निबन्धात्मक प्रश्न

12.1 प्रस्तावना

इस इकाई से पहले आप सरकारी संस्थान और बाजार का आर्थिक विकास में योगदान की विस्तृत जानकारी प्राप्त कर चुके है। इस इकाई में निरपेक्ष गरीबी तथा सापेक्ष गरीबी की जानकारी प्रस्तुत की जा रही है। इस इकाई के अध्ययन से आपको गरीबी के संकेतक तथा प्रमाप की पूर्ण जानकारी प्राप्त हो जायेगी।

12.2 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन से आप:-

- ✓ गरीबी के संकेतक तथा प्रमाप को समझ सकेगें।
- ✓ निरपेक्ष गरीबी तथा सापेक्ष गरीबी की जानकारी प्राप्त कर लेगें।
- ✓ भारतीय गरीबी के माध्यम से गरीबी के संकेतक तथा प्रमाप को जान सकेंगे।

12.3 गरीबी

आर्थिक विकास और सामाजिक न्याय में एक कार्यात्मक सम्बन्ध है। यदि आर्थिक विकास सामाजिक न्याय को प्रोन्नत नहीं करता, तो वह व्यर्थ है। आर्थिक विकास का अर्थ या लक्ष्य केवल सकल राष्ट्रीय आय (G.N.P.) को बढ़ाना नहीं, बल्कि इसका उद्देश्य तो समाज के बहुसंख्यक लोगों के कल्याण में वृद्धि करना है। परन्तु दुर्भाग्यपूर्ण बात यह है कि प्रारम्भिक विकासवादियों ने आर्थिक विकास के प्रश्न को केवल G.N.P. में वृद्धि करने तक सीमित रखा और सामाजिक न्याय अथवा सामाजिक कल्याण के प्रति कभी चिन्ता प्रकट नहीं की। फलस्वरूप विकासशील देशों में नीति-निर्माताओं ने सदैव उन्हीं विकास-कार्यक्रमों को प्राथमिकता दी, जिनसे उच्च वृद्धि-दर प्राप्त की जा सकती है। इनकी यह मान्यता थी कि एक बार आर्थिक विकास का कार्य पूरा हो जाने पर गरीबी, बेरोजगारी और आय-विषमताएँ जैसे सभी उद्देश्य स्वतः पूरे हो जायेंगे। इन लोगों को आर्थिक-संवृद्धि के **'रिसते अधोगामी प्रभाव'** (Trickle down effects) पर इतना अधिक विश्वास था कि इन्होंने इस बात पर कभी सन्देह नहीं किया कि आर्थिक वृद्धि और रोजगार या गरीबी उन्मूलन के उद्देश्यों के बीच कहीं कोई टकराव हो सकता है।

परन्तु तृतीय विश्व के अधिकांश विकासशील देशों में आज विकास और गरीबी के बीच टकराव की यह स्थिति उत्पन्न हो चुकी है। आर्थिक-वृद्धि की उच्च-दर के बावजूद इन देशों में बेरोजगारी और गरीबी बढ़ी है, विषमताओं का काल-चक्र अधिक गहरा हुआ है और जनसंख्या का एक बड़ा भाग अभावों से ग्रसित है। इसकी पुष्टि **विश्व बैंक रिपोर्ट 2000** से भी होती है कि, ***"विकासशील देशों की एक-तिहाई जनसंख्या गरीबी-रेखा से नीचे है और 18 प्रतिशत जनसंख्या अति-निर्धन है अर्थात् गरीबी-रेखा के निम्नतम धरातल पर है।"*** **डैनिस गाउलेट** का भी कहना है कि ***"विकासशील देशों में विकास की निरन्तर दौड़ के बावजूद चिर-निर्धनता व्याप्त है। यह निर्धनता एक नरक के समान है और यह नरक बेहद भयानक है।"***

प्रसन्नता की बात यह है कि आधुनिक विकासवादियों ने अब नई दिशा में सोचना शुरू कर दिया है। उनका मानना है कि आर्थिक कल्याण और सामाजिक न्याय वास्तव में आर्थिक विकास के मूलभूत उद्देश्य हैं। ये लोग अब केवल G.N.P. में वृद्धि के पक्षधर नहीं रहे, बल्कि विकास की प्रक्रिया और G.N.P. की संरचना व

वितरण पर अधिक ध्यान केन्द्रित करने लगे हैं। यह सच भी है क्योंकि सकल राष्ट्रीय उत्पाद को अधिकतम करना यदि आवश्यक है तो उससे भी ज्यादा जरूरी है गरीबी, भूख, बेरोजगारी, विषमता और अन्याय पर चोट करना। हमें अब सामाजिक पहलू से, आवश्यक वृद्धि-दर के रूप में सोचना होगा क्योंकि वृद्धि कौशलता वास्तव में एक बदनाम धारणा सिद्ध हो चुकी है। अब ये देखना जरूरी नहीं कि सकल उत्पाद या उपभोग कितना है ? बल्कि यह सोचना होगा कि कितने लोग, कितनी मात्रा में और कितना उपभोग करते हैं।

सुप्रसिद्ध पाकिस्तानी अर्थशास्त्री **प्रो. महबूब-उल-हक** ने ठीक ही कहा है कि ***"ऊँची संवृद्धि-दर बढ़ती हुई गरीबी और आर्थिक विस्फोटों के विरूद्ध कोई गारण्टी नहीं है। विकास की समस्या को अब, गरीबी के घिनौने रूप पर सोचे-समझे ढंग से प्रहार करने के अर्थ में परिभाषित किया जाना चाहिए। फिर, विकास के लक्ष्य को अल्प-पोषण, बीमारी, गन्दगी, निरक्षरता, बेकारी और विषमताओं के उत्तरोदर दमन के रूप में सोचना होगा। हमको यह पढ़ाया गया था कि पहले अपने G.N.P. पर ध्यान दो क्योंकि इससे गरीबी घटेगी। लेकिन हमें इस शिक्षा को उलटना होगा। पहले अब गरीबी के बारे में सोचना होगा, तब इससे G.N.P. स्वतः बढ़ने लगेगा।"***

अल्पविकसित देश गरीबी का मारा होता है। उसकी गरीबी प्रति व्यक्ति आय में झलकती है। 1997 की World Development Report के अनुसार 1995 में विश्व की 56.0 प्रतिशत जनसंख्या की औसत G.N.P. प्रति व्यक्ति 430 डॉलर थी। दूसरी ओर, औद्योगीकृत देशों में रह रही विश्व की 15.8 प्रतिशत जनसंख्या की औसत G.N.P. व्यक्ति 32039 डॉलर थी, तथा मध्यम आय अर्थव्यवस्थाओं में विश्व की 27.5 प्रतिशत जनसंख्या की औसत G.N.P. व्यक्ति 2390 डॉलर थी। ये आंकड़े विकासशील देशों में गरीबी की सीमा को दर्शातें हैं।

सन् 1995 के आकंड़े देते हुए World Development Report राष्ट्रों के बीच विस्तृत आय असमानताएं भी बताती है। 1995 में 23 बहुत धनी विकसित देश थे। इनमें से, जापान की G.N.P. प्रति व्यक्ति 39640 डॉलर, यू.एस.एस. की 26980 डॉलर तथा स्विट्जरलैंड की 40630 डॉलर थी। परन्तु कुछ विकासशील छोटे पूँजी आधिक्य तेल निर्यातक देश भी इनमें शामिल हैं, जैसे संयुक्त राष्ट्र अमीरात जिसकी जी.एन.पी. प्रति व्यक्ति 17400 डॉलर तथा कुवैत 17300 डॉलर। दूसरी ओर, G.N.P. प्रति व्यक्ति 730 डॉलर या उससे कम 49 निम्न आय वाले सबसे गरीब देश थे। इनमें औरों के अलावा श्रीलंका 700 डॉलर, चीन 620 डॉलर, पाकिस्तान 460 डॉलर, भारत 340 डॉलर, केन्या 280 डॉलर, बंगलादेश 240 डॉलर और नेपाल की G.N.P. प्रति व्यक्ति 200 डॉलर थी।

विश्व बैंक रिपोर्ट 2000 के अनुसार, 1998 में विकासशील देशों की कुल जनसंख्या का एक तिहाई भाग निर्धनता-रेखा से नीचे था और इनकी लगभग 18 प्रतिशत जनसंख्या अति-निर्धन थी। निर्धनता-रेखा का आधार गरीबों के लिये 370 डॉलर प्रति व्यक्ति वार्षिक, और अति-गरीबों के लिये 275 डॉलर माना गया। पाँच वर्ष से कम शिशु मृत्यु-दर प्रति हजार 97 थी और जीवन-प्रत्याशा 62 वर्ष अनुमानित की गयी। फिर, इन देशों में निरपेक्ष निर्धनता भी देखने में आती है। दो समय का भोजन इनके लिये विलासिता है। अपने स्वामियों के उतरे हुए कपड़े और बचा-खुचा भोजन इनकी खुशकिस्मती है, मिट्टी के टूटे बर्तन इनकी सम्पत्तियाँ हैं, आवास के अभाव में यह प्रकृति की गोद में जन्म लेते हैं और इनकी निकली हड्डियाँ, पीली आँखे, सूखी खाल, फोड़े युक्त और मुरझाए चेहरे, इनके आर्थिक दृष्टि से अपाहिज होने की कहानी प्रस्तुत करते हैं।

विश्व बैंक रिपोर्ट 2000 के अनुसार अल्प-विकसित देशों में कुल जनसंख्या के निम्नतम 40 प्रतिशत परिवारों को G.N.P. का औसत 14 प्रतिशत भाग, और उच्चतम 20 प्रतिशत परिवारों को G.N.P. का 47 प्रतिशत भाग प्राप्त होता है। विकसित देशों के लिए यह अनुपात क्रमशः 18 तथा 41 है। इससे एक बात जाहिर है कि गरीबी और आय-विषमताएँ विश्व के लगभग सभी देशों में विद्यमान है। हाँ! उसकी गहनता विकासशील देशों में अपेक्षाकृत अधिक है। उल्लेखनीय बात यह है कि धनी तथा निर्धन देशों की प्रति-व्यक्ति आय में निरपेक्ष अन्तर अधिक तेजी से बढ़ा है और यह लगातार बढ़ने की प्रवृत्ति बनाए हुए है। उदाहरणार्थ, निम्न- आय देशों में प्रति-व्यक्ति औसत आय 1981 में 270 डालर से बढ़कर 1998 में 520 डालर हो गयी जबकि उच्च-आय देशों में यह 11120 डॉलर से बढ़कर 25510 डालर हो गयी। जबकि इन दोनों के प्रकार के देशों की आय में 1981 में 41 गुना अन्तर था, 1998 में यह बढ़कर 49 गुना हो गया। अतः स्पष्ट है कि पिछले पाँच दशकों की विकास-यात्रा के बावजूद गरीबी का भूत और वर्तमान एक ही धरातल पर खड़ा है अर्थात् उसमें कोई सुधार नहीं आ सका। सच तो यह है कि गरीबी के पंख पिछले काल में और भी अधिक फैल गए हैं।

गरीबी के मुख्य रूप से दो अर्थ लगाये जाते है - **प्रथम** - निरपेक्ष गरीबी तथा **द्वितीय**-सापेक्ष गरीबी।

निरपेक्ष गरीबी –

सर्वप्रथम 1990 में निरपेक्ष गरीबी को नापने का प्रमाप प्रस्तुत किया गया, जब विश्व बैंक ने 1 अमेरिकी डॉलर प्रतिदिन (लगभग 45 भारतीय रूपये) को गरीबी सीमा का पैमाना माना। 2005 में इसे बदल कर 1.2 अमेरिकी डॉलर (लगभग 60 भारतीय रूपये) प्रतिदिन कर दिया गया। लेकिन हाल ही में इसे बढ़ाकर 2.50 अमेरिकी डॉलर प्रति दिन कर दिया गया है।

एक व्यक्ति की निरपेक्ष गरीबी से अर्थ है कि उसकी आय का उपभोग व्यय इतना कम है कि वह न्यूनतम भरण-पोषण स्तर के नीचे स्तर पर रह रहा है। निरपेक्ष गरीबी का केवल, निम्न आय से ही नहीं मापा जाता बाकि कुपोषण, खराब स्वास्थ्य, कपड़ा, आवास और शिक्षा के अभाव से भी मापा जाता है। इसी बता को दूसरे शब्दों में इस प्रकार कह सकते है कि ***"गरीबी से अर्थ मानव की आधारभूत आवश्यकताओं खाना, कपड़ा, स्वास्थ्य सहायता, आदि की पूर्ति हेतु पर्याप्त वस्तुओं व सेवाओं को जुटा पाने में असमर्थता से है।"*** यदि ये न्यूनतम वस्तुए एवं सेवायें किसी व्यक्ति को नही मिलती है तो कहते है कि वह गरीबी रेखा से नीचे स्तर पर रह रहा है। यदि उसे यह न्यूनतम वस्तुए व सेवायें मिल जाती है तो कहते है कि वह गरीबी की रेखा के बराबर है। जब किसी व्यक्ति को इस न्यूनतम स्तर से अधिक वस्तुए व सेवायें मिलती है तो उसे गरीबी की रेखा के ऊपर कहा जाता है।

निरपेक्ष गरीबी को केवल निम्न आय से ही नहीं मापा जाता है बल्कि कुपोषण, खराब स्वास्थ्य, कपड़ा, आवास और शिक्षा के अभाव में भी मापा जाता है। अतः निरपेक्ष गरीबी लोगों के निम्न रहन-सहन के स्तर में झलकती है। ऐसे देशों में, अन्न उपभोग की मुख्य मद होती है और इस पर आय का लगभग 80 प्रतिशत व्यय किया जाता है जबकि विकसित देशों में आय का 20 प्रतिशत व्यय होता है। लोग अधिकतर अनाज खाते हैं और उनकी खुराक में मांस, मछली, और दुग्ध पदार्थों आदि पौष्टिक आहारों का नितान्त अभाव होता है। उदारणार्थ, भारत में प्रति व्यक्ति प्रति दिन, अनाज का उपभोग 430 ग्राम है जबकि विकसित देशों में 200 ग्राम से भी कम।

भारत में प्रोटीन का प्रति व्यक्ति उपभोग 45 ग्राम है जबकि अमरीका में 100 ग्राम है। परिणामस्वरूप, अल्पविकसित देशों में प्रति व्यक्ति प्रतिदिन औसत कैलोरी खुराक 2000 से अधिक नहीं होती जबकि उन्नत देशों के लोगों की खुराक में यह 3000 कैलोरी से भी अधिक पाई जाती है।

ऐसे देशों में बाकी उपभोग मुख्य रूप से घास-फूंस की झोंपड़ी तथा नाममात्र के वस्त्र होते हैं। लोक अत्यन्त अस्वास्थयकारी परिस्थितियों में रहते हैं। विकासशील देशों में 120 करोड़ से अधिक लोगों को सुरक्षित पेयजल प्राप्त नहीं है तथा 140 करोड़ से भी अधिक लोगों के लिए साफ शौचालयों का प्रबन्ध नहीं है। प्रत्येक 10 शिशु जो जन्म लेते हैं, दो एक वर्ष के भीतर मर जाते है, एक और 5 वर्ष की आयु से पहले ही मर जाता है तथा केवल पांच 40 की आयु तक बचते है। इसके कारण कुपोषण, असुरक्षित जल, सफाई न पाया जाना, अज्ञानी माता-पिता, तथा रोगों से प्रतिरक्षा का अभाव है।

शिक्षा और स्वास्थ्य जैसी सेवाएं नाममात्र की पाई जाती है। नवीन आंकड़े बताते हैं कि भारत में 2520 व्यक्तियों के लिए एक डाक्टर है, बंगलादेश में 6730 व्यक्तियों के लिए एक डाक्टर, नेपाल में 32710 व्यक्तियों के लिए एक डॉक्टर तथा चीन में 1000 व्यक्तियों के लिए एक डॉक्टर है। इसके विपरीत विकसित देशों में 470 व्यक्तियों के लिए एक डाक्टर होता है। अधिकतर विकासशील देश शैक्षिक सुविधाओं को तीव्र गति से प्रसार कर रहे हैं। फिर भी, ऐसे प्रयत्न उनकी मानवशक्ति की आवश्यकताओं से कम रहते है। बहुत से निम्न आय देशों में प्राथमिक स्कूल आयु के लगभग 70 प्रतिशत शिशु पाठशाला जाते हैं। माध्यमिक स्तर पर, ऐसे देशों में स्कूल भर्ती दरें 20 प्रतिशत से कम होती हैं, जबकि उच्च शिक्षा में भर्ती 3 प्रतिशत तक ही पहुँचती है। फिर अधिकतर स्कूल तथा कॉलेज जाने वालों को दी जा रही शिक्षा उन देशों की विकास आवश्यकताओं के अनुकूल नहीं होती है। इस प्रकार, अल्पविकसित देशों में बहुत अधिक लोग भूखे, नंगे, आवास-रहित तथा अशिक्षित होते हैं।

एक अनुमान के अनुसार, अल्पविकसित देशों में निरपेक्ष गरीबी में रह रहे लोगों की संख्या, चीन को छोड़कर लगभग 100 करोड़ है। इनमें से आधे दक्षिण एशिया अधिकतर भारत और बंगलादेश में निवासी करते है; 1/6 पूर्व और दक्षिण-पूर्व, अधिकतर इंडोनेशिया में; अन्य और 1/6 उप-सहारा अफ्रीका; तथा बाकी लेटिन अमरीका, उत्तरी अफ्रीका तथा मध्य-पूर्व में रहते है। इस प्रकार गरीबी एक अल्पविकसित देश की आधारभूत बीमारी है जिसकी विपत्ति के चक्र में वह फंसा हुआ है। प्रो0 केर्नक्रास ने ठीक कहा है कि अल्पविकसित देश विश्व अर्थव्यवस्था की गंदी बस्तियां है।

सापेक्ष गरीबी –

सापेक्ष गरीबी से अर्थ आय की असमानताओं से होता है। जब दो देशों की प्रति व्यक्ति आय की तुलना करते है कि उनमे भारी अन्तर पाते है, इस अन्तर के आधार पर हम गरीबी की तुलना कर सकते है। यह गरीबी सापेक्षित होती है।

विश्व के देशो का आय स्तर (2012)

देश	प्रति व्यक्ति G.N.P. (डॉलर)	देश	प्रति व्यक्ति G.N.P. (डॉलर)
स्विट्जरलैंड	79033	चीन	6076
यू.एस.एस.	49922	इंडोनेशिया	3910
जापान	46736	श्रीलंका	2873
कुवैत	45824	भारत	1492
जर्मनी	41513	पाकिस्तान	1296
यू. के.	38589	बंगलादेश	850

स्रोत- IMF(2012)

12.4 गरीबी के संकेतक तथा प्रमाप

ऑक्सफोर्ड पॉपर्टी एण्ड ह्यूमन डेवलपमेंट इनिशिएटिव तथा संयुक्त राष्ट्र विकास कार्यक्रम द्वारा 2010 में बहुआयामी गरीबी सूचकांक (M.P.I.) विकसित किया गया है। जिसमें गरीबी निर्धारण करने के लिए आय के अतिरिक्त विभिन्न कारकों का प्रयोग किया गया है। जिसने पिछले मानव गरीबी सूचकांक को बदल दिया है। M.P.I. में बहुआयामी आधार पर गरीबी की सूची तैयार की जाती है। जिसके आधार पर उन लोगों को जो भारित संकेतक के 33.33 प्रतिशत के नीचे होते है उन्हें M.P.I. आधार पर गरीब माना जाता है। मानव विकास सूचकांक (भ्क्प्) में स्वास्थ्य शिक्षा तथा जीवन स्तर तीन आयामों का उपयोग किया जाता है। जबकि M.P.I. में दस संकेतक प्रयोग में लाये जाते है जो इस प्रकार है।

मापक/कारक	संकेतक
स्वास्थ्य (प्रत्येक सूंचक समान रूप से 1/6 पर भारित है।)	शिशु मृत्यु-दर पोषण
शिक्षा (प्रत्येक सूंचक समान रूप से 1/6 पर भारित है।)	विद्यालय में पूरे किये पूर्ण छात्र नामांकन संख्या
जीवन स्तर (प्रत्येक सूंचक समान रूप से 1/18 पर भारित है।)	ईधन शौचालय पानी बिजली मकान की मंजिल सम्पत्ति

12.5 भारतीय गरीबी के माध्यम से गरीबी के संकेतक तथा प्रमाप का वर्णन

भारत के 1.21 विलियन जनसंख्या में से केवल 38 प्रतिशत अशिक्षित तथा 420 मिलियन गरीब आठ राज्यों में रहते है। देश के 250 मिलियन लोगों के पास बुनियादी स्वास्थ्य सुविधाओं तथा लगभग 350 मिलियन लोगों के पास स्वच्छ पेयजल नहीं है। अधिकांश विद्यालयों में छात्र शिक्षक अनुपात सही नहीं है। साथ ही विद्यालय भवनों की स्थित भी सही नहीं है। भारत में गरीबी के मापक (प्रमाप) के लिए कैलोरी को आधार माना

गया है। ग्रामीण क्षेत्र के लिए 2400 कैलोरी तथा शहरी क्षेत्र के लिए 2100 कैलोरी निर्धारित की गई है। हाल ही में सरकार ने केलकर समिति की परिभाषा को स्वीकार कर स्वास्थ्य और शिक्षा को भी इनमें शामिल करने की बात कहीं है। इस आधार पर 2010 के आकंड़ों के आधार पर 32.7 प्रतिशत लोग गरीब थे, जबकि 2005 में 37 प्रतिशत लोग गरीब थे। जबकि विश्व बैं के 1.25 डॉलर प्रतिदिन के मापक (प्रमाप) के आधार पर 2005 में 42 प्रतिशत लोग गरीब थे। (यदि 2 डॉलर प्रतिदिन को आधार माना जाये तो भारत में 75 प्रतिशत लोग गरीब है)। आय आधारित प्रमाप गरीबी को पूर्णरूप से परिभाषित नहीं कर सकता। इसलिए स्वास्थ्य सुविधायें, स्वच्छ पेयजल, पौष्टिक भोजन, शिक्षा व आवास आदि को गरीबी के प्रमाप तथा संकेतकों के रूप में शामिल किया गया है मानव विकास सूचकांक, वैश्विक हंगर सूचकांक, मानव गरीबी सूचकांक तथा बहुआयामी गरीबी सूचकांकों का निर्माण किया गया जिससे वास्तविक गरीबी का उचित अनुमान लगाकर उसे दूर किया जा सकें।

12.5.1 वैश्विक भूखमरी सूचकांक

अन्तर्राष्ट्रीय खाद्य नीति शोध संस्थान ने विश्व भुखमरी सूचकांक निकाले के लिए बच्चों के कुपोषण, बाल मृत्यु दर और समुचित कैलोरी के वंचित लोगों की संख्या को आधारा बनाया जाता है। हाल के वैश्विक भुखमरी सूचकांक 2010 में 29 भूख के उच्चतम् स्तर देश में भारत भी रहा जहां भूखमरी का ऊँचा स्तर था, कुपोषित बच्चे भारत का 84 विकासशील देशों में 67वां स्थान था जबकि पाकिस्तान 52वें तथा चीन 9वें स्थान पर था। भारत में महिलाओं कें निम्न स्वास्थ्य तथा कुपोषित बच्चों के कारण भारत में भुखमरी थी। भारत में 5 वष कम उम्र के 46 प्रतिशत बच्चे कुपोषित थे जबकि पाकिस्तान में मात्र 5 प्रतिशत श्रीलंका में 39 प्रतिशत तथा नेपाल में 56 प्रतिशत बच्चे कुपोषित थे।

12.5.2 मानव गरीबी सूचकांक

संयुक्त राष्ट्र संघ का मानव गरीबी सूचकांक एक ओर व्यापकरूप से प्रयोग होने वाला गरीबी का संकेतांक है। जिसकी भावना करने के लिए विकसित व विकासशील देशों के अलग-अलग सूचकांक है। इसलिए यह तुलनीय नहीं है। यह गरीबी के गणना में तीन आयामों पर केन्द्रित है। जीवन प्रत्याशा (दीर्घायु) ज्ञान (शिक्षा) तथा जीवन स्तर। 2009 में 182 देशों में भारत का स्थान 134 था जबकि चीन 92 वे स्थान पर था। नार्वे प्रथम स्थान पर तथा आस्ट्रेलिया तथा आइसलैण्ड द्वितीय तथा तृतीय स्थान पर थे। 2010 में मानव गरीबी सूचकांक को बहुआयामी गरीबी सूचकांक से प्रतिस्थापित कर दिया गया।

12.5.3 बहुआयामी गरीबी सूचकांक

ऑक्सफोर्ड पॉपर्टी एण्ड ह्यूमन डेवलपमेंट इनिशिएटिव तथा संयुक्त राष्ट्र विकास कार्यक्रम द्वारा 2010 में बहुआयामी गरीबी सूचकांक (M.P.I.) विकसित किया गया है। जिसमें गरीबी निर्धारण करने के लिए आय के अतिरिक्त विभिन्न कारकों का प्रयोग किया गया है। जिसने पिछले मानव गरीबी सूचकांक को बदल दिया है। मानव विकास सूचकांक (H.D.I.) में स्वास्थ्य शिक्षा तथा जीवन स्तर तीन आयामों का उपयोग किया जाता है। जबकि M.P.I. में दस संकेतक प्रयोग में लाये जाते है जो इस प्रकार है।

संकेतक	मापक/कारक
शिशु मृत्यु-दर पोषण	स्वास्थ्य (प्रत्येक सूंचक समान रूप से 1/6 पर भारित है।)
विद्यालय में पूरे किये पूर्ण छात्र नामांकन संख्या	शिक्षा (प्रत्येक सूंचक समान रूप से 1/6 पर भारित है।)
ईधन शौचालय पानी बिजली मकान की मंजिल सम्पत्ति	जीवन स्तर (प्रत्येक सूंचक समान रूप से 1/18 पर भारित है।)

M.P.I. में बहुआयामी आधार पर गरीबी की सूची तैयार की जाती है। जिसके आधार पर उन लोगों को जो भारित संकेतक के 33.33 प्रतिशत के नीचे होते है उन्हें M.P.I. आधार पर गरीब माना जाता है। यह गरीबी की दृढ तथा तीव्रता दोनों को दर्शाता है और भारतीय गरीबी पर गहराई से रोशनी डालता है। अगर कोई व्यक्ति भारित संकेतकों में 33.33 प्रतिशत से कम भारत प्राप्त करता है। तो वह गरीब है। इस परिभाषा के अनुसार भारत में 55 प्रतिशत लोग गरीब है और लगभग 20 प्रतिशत भारतीय 10 संकेतकों में से 6 से वंचित है। मैक्सिकों में सरकारी गणना में इस उपयोग कोलम्बिया इस पर विचार कर रहे हैं। उम्मीद है कि भारतीय योजनाकार भी इस पर ध्यान देंगे।

आय के एकल आयामी संकेतांक की तुलना में बहुआयामी सूचकांक गरीबी की प्रकृति, विस्तार और गहनता को सही रूप से समझने में सक्षम है। इसलिए नीतिकारों को इस पर ध्यान देना चाहिए, जिससे विश्व के विभिन्न देशो में गरीबों की पहचान हो सके और उनकी स्थिति सुधारने को नीतियाँ बनाई जा सके।

12.6 अभ्यास प्रश्न

निम्न का पूरा नाम लिखो:-

1. G.H.I.
2. H.P.I.
3. M.P.I.

रिक्त स्थान भरों:-

1. प्रारम्भिक विकासवादियों ने आर्थिक विकास के प्रश्न को केवल ..... में वृद्धि करने तक सीमित रखा।
2. आर्थिक-संवृद्धि के ..... पर इतना अधिक विश्वास था।
3. विश्व बैंक रिपोर्ट 2000 से पुष्टि होती है कि, ***"विकासशील देशों की ..... जनसंख्या गरीबी-रेखा से नीचे है।"***

4. सुप्रसिद्ध पाकिस्तानी अर्थशास्त्री ..... ने ठीक ही कहा है कि ***"ऊँची संवृद्धि-दर बढ़ती हुई गरीबी और आर्थिक विस्फोटों के विरूद्ध कोई गारण्टी नहीं है।"***
5. 1997 की World Development Report के अनुसार 1995 में विश्व की ..... प्रतिशत जनसंख्या की औसत G.N.P. प्रति व्यक्ति 430 डॉलर थी।
6. 1995 (World Development Report) में ..... बहुत धनी विकसित देश थे।
7. विश्व बैंक रिपोर्ट 2000 के अनुसार, 1998 में विकासशील देशों की कुल जनसंख्या का ..... भाग निर्धनता-रेखा से नीचे था।
8. विश्व बैंक रिपोर्ट 2000 के अनुसार निर्धनता-रेखा का आधार गरीबों के लिये .....डॉलर प्रति व्यक्ति वार्षिक।
9. गरीबी के मुख्य रूप से दो अर्थ लगाये जाते है - प्रथम - .....द्वितीय- ..... गरीबी।
10. सर्वप्रथम .....में निरपेक्ष गरीबी को नापने का प्रमाप प्रस्तुत किया गया।
11. 2005 में विश्व बैंक ने ..... अमेरिकी डॉलर प्रतिदिन को गरीबी सीमा का पैमाना माना।
12. अल्पविकसित देशों में प्रति व्यक्ति प्रतिदिन औसत कैलोरी ..... से अधिक नहीं होती जबकि उन्नत देशों के लोगों की में ..... कैलोरी से भी अधिक पाई जाती है।
13. भारत में ..... व्यक्तियों के लिए एक डाक्टर है।
14. विकसित देशों में..... व्यक्तियों के लिए एक डाक्टर होता है।
15. ऑक्सफोर्ड पॉपर्टी एण्ड ह्यूमन डेवलपमेंट इनिशिएटिव तथा संयुक्त राष्ट्र विकास कार्यक्रम द्वारा 2010 में ..... विकसित किया गया है।
16. उन लोगों को जो भारित संकेतक के .....के नीचे होते है उन्हें M.P.I. आधार पर गरीब माना जाता है।
17. M.P.I. में ..... संकेतक प्रयोग में लाये जाते है।
18. स्वास्थ्य में प्रत्येक सूंचक समान रूप से ..... पर भारित है।
19. शिक्षा में प्रत्येक सूंचक समान रूप से ..... पर भारित है।
20. जीवन स्तर में प्रत्येक सूंचक समान रूप से .....पर भारित है।
21. भारत में गरीबी के मापक (प्रमाप) के लिए ..... को आधार माना गया है।
22. ग्रामीण क्षेत्र के लिए ..... कैलोरी तथा शहरी क्षेत्र के लिए ..... कैलोरी निर्धारित की गई है।
23. गरीबी के मापक आधार पर 2010 के आकंड़ों के आधार पर ..... लोग गरीब थे।
24. गरीबी का मापक 2 डॉलर प्रतिदिन को आधार माना जाये तो भारत में .....लोग गरीब है।
25. अन्तर्राष्ट्रीय खाद्य नीति शोध संस्थान ने ..... सूचकांक निकाला।
26. संयुक्त राष्ट्र संघ का ..... सूचकांक व्यापक रूप से प्रयोग होने वाला गरीबी का संकेतांक है।

12.7 सांराश

प्रारम्भिक विकासवादियों ने आर्थिक विकास के प्रश्न को केवल G.N.P. में वृद्धि करने तक सीमित रखा और सामाजिक न्याय अथवा सामाजिक कल्याण के प्रति कभी चिन्ता प्रकट नहीं की। अधिकांश विकासशील देशों में आज विकास और गरीबी के बीच टकराव की यह स्थिति उत्पन्न हो चुकी है। आधुनिक विकासवादियों ने अब नई दिशा में सोचना शुरू कर दिया है। उनका मानना है कि आर्थिक कल्याण और सामाजिक न्याय वास्तव में आर्थिक विकास के मूलभूत उद्देश्य हैं। अल्पविकसित देश गरीबी का मारा होता है। उसकी गरीबी प्रति व्यक्ति आय में झलकती है।

सन् 1995 के World Development Report के आकंड़े राष्ट्रों के बीच विस्तृत आय असमानताएं बताता है। गरीबी के मुख्य रूप से दो अर्थ लगाये जाते है - प्रथम - निरपेक्ष गरीबी तथा द्वितीय-सापेक्ष गरीबी। एक व्यक्ति की निरपेक्ष गरीबी से अर्थ है कि उसकी आय का उपभोग व्यय इतना कम है कि वह न्यूनतम भरण-पोषण स्तर के नीचे स्तर पर रह रहा है। सापेक्ष गरीबी से अर्थ आय की असमानताओं से होता है। भारत में गरीबी के मापक (प्रमाप) के लिए कैलोरी को आधार माना गया है। ग्रामीण क्षेत्र के लिए 2400 कैलोरी तथा शहरी क्षेत्र के लिए 2100 कैलोरी निर्धारित की गई है। जब विश्व बैंक ने 1 अमेरिकी डॉलर प्रतिदिन (लगभग 45 भारतीय रूपये) को गरीबी सीमा का पैमाना माना। लेकिन हाल ही में इसे बढ़ाकर 2.50 अमेरिकी डॉलर प्रति दिन कर दिया गया है।

ऑक्सफोर्ड पॉपर्टी एण्ड ह्यूमन डेवलपमेंट इनिशिएटिव तथा संयुक्त राष्ट्र विकास कार्यक्रम द्वारा 2010 में बहुआयामी गरीबी सूचकांक (M.P.I.) विकसित किया गया है। जिसमें गरीबी निर्धारण करने के लिए आय के अतिरिक्त विभिन्न कारकों का प्रयोग किया गया है। जिसने पिछले मानव गरीबी सूचकांक को बदल दिया है। जिसके आधार पर उन लोगों को जो भारित संकेतक के 33.33प्रतिशत के नीचे होते है उन्हें M.P.I. आधार पर गरीब माना जाता है। M.P.I. में दस संकेतक प्रयोग में लाये जाते है। आय के एकल आयामी संकेतांक की तुलना में बहुआयामी सूचकांक गरीबी की प्रकृति, विस्तार और गहनता को सही रूप से समझने में सक्षम है।

12.8 शब्दावली

- **दोहन -** उत्पादन हेतु अत्यधिक उपयोग
- **आधारभूत संरचना -** विकास में सहायक आधार जैसे-सड़क, परिवहन, विद्युत, लोह इस्पात, सीमेंट उद्योग आदि।
- **जी.एस.डी.पी. -** राज्य का सकल घरेलू उत्पादन अर्थात् राज्य द्वारा एक वर्ष में उत्पादित वस्तुएँ व सेवायें
- **एकीकृत औद्योगिक क्षेत्र -** ऐसा औद्योगिक क्षेत्र जहाँ उद्योगो की स्थापना हेतु सम्पूर्ण सुविधाएँ हो।
- **पुनगर्ठन -**ऐसा उद्योग जो संगठन में दोष के कारण हानि में चल रहे हो उनका संगठन व्यवस्था में सुधार
- **शीर्षस्थ -** सबसे उच्च स्तर या प्रमुख
- **गतिशील उद्यमी -**ऐसे उद्यमी जिनकी विचार धारा आधुनिक हो और जो नवीन तकनीक को बढ़ावा दें।
- **समन्वय -**तालमेल

- **कार्यान्वयन -** लागू करना
- **संवर्धन -** वृद्धि या विकास करना

12.9 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

निम्न का पूरा नाम लिखो:-

(1) वैश्विक भूखमरी सूचकांक Global Hunger Index

(2) मानव गरीबी सूचकांक Human Poverty Index

(3) बहुआयामी गरीबी सूचकांक Mulitidimensional Poverty Index.

रिक्त स्थान भरें:-

(1) G.N.P.
(2) "रिसते अधोगामी प्रभाव" (trickle down effects)
(3) एक-तिहाई
(4) प्रो0 महबूब-उल-हक
(5) 56 प्रतिशत
(6) 23
(7) एक तिहाई
(8) 370
(9) प्रथम - निरपेक्ष गरीबी तथा द्वितीय- सापेक्ष गरीबी।
(10)1990
(11) 1. 2 अमेरिकी डॉलर
(12) 2000 कैलोरी, 3000
(13) 2520
(14) 470
(15) बहुआयामी गरीबी सूचकांक (M.P.I.)
(16) 33.33 प्रतिशत
(17) दस
(18) 1/6
(19)1/6
(20) 1/18
(21) कैलोरी
(22) 2400 कैलोरी, 2100 कैलोरी
(23) 32.7 प्रतिशत
(24) 75 प्रतिशत
(25) विश्व भुखमरी सूचकांक
(26) मानव गरीबी सूचकांक।

12.10 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

- Singh, S.P. (2010), *Economics of Development and Planning and Practices*, S Chand Publishing House.
- Jhingan, M. L. (2000), *Economics of Development and Planning*, Vrinda Publications Pvt. Ltd. Delhi.
- Seth, Ranjana (2010), *Industrial Economics*, Ane Books Pvt. Ltd.New Delhi.
- Mishra, S.K. and Puri, V. K.(2007), *Economics of Development and Planning Theory and Practice*, Himalaya Publishing House.
- Dhingra, I. C. (2009), *Development Economics*, sultan Chand and Sons.

12.11 सहायक/उपयोग पाठ्य सामग्री

- Ravallion, Martin (1998), "Poverty Lines in Theory and Practice," Living Standards Measurement Study Working Paper 133, World Bank, Washington DC.
- Measures of Poverty and Inequality Measures, Chapters 4 and 6 of WBI's Basic Poverty Measurement and Diagnostics course, review poverty and inequality indicators.
- Bourguignon, Francois and Satya R. Chakravarty. "The Measurement of Multidimensional Poverty." Journal of Economic Inequality 1:25-49, 2003.
- www.Wikipediaencyclopedia.com
- http:/socialissuesindia.wordpress.com
- Hayami, Yujiro, Godo, Yoshihisu, (2004), "*Development Economics*", Oxford University Press India.
- Data refer mostly to the year 2012. World Economic Outlook Database-April 2013, International Monetary Fund. Accessed on 16 April 2013

12.12 निबन्धात्मक प्रश्न

1. गरीबी आप से आप क्या समझते है? निरपेक्ष गरीबी तथा सापेक्ष गरीबी पर प्रकाश डालिए।
2. गरीबी के संकेतक तथा प्रमाप की संक्षिप्त व्याख्या करो।
3. भारतीय गरीबी के माध्यम से गरीबी के संकेतक तथा प्रमाप का वर्णन करो।

इकाई 13- नियोजन की तकनीकी का चुनाव तथा उपयुक्त तकनीकी विनियोग कसौटी लागत और लाभ विश्लेषण

(The Planning for Choice of Technique and Appropriate Technique, Investment Criteria, Cost and Benefit Analysis)

13.1 प्रस्तावना

13.2 उद्देश्य

13.3 नियोजन की तकनीकी का चुनाव

13.3.1 नियोजन की तकनीकी का अर्थ

13.3.2 तकनीकी चुनाव की समस्या

13.4 नियोजन की तकनीकी के प्रकार

13.4.1 श्रम प्रधान तकनीकी

13.4.1.1 श्रम प्रधान तकनीकी की विशेषताएं

13.4.1.2 श्रम प्रधान तकनीकी की सीमाऐं

13.4.2 पूँजी प्रधान तकनीकी

13.4.2.1 पूँजी प्रधान तकनीकी की विशेषताऐं

13.4.2.2 पूँजी प्रधान तकनीकी की सीमाऐं

13.5 उपयुक्त तकनीकी तथा अर्थव्यवस्था की प्रगति

13.6 नियोजन तकनीकी के क्रियान्वयन सम्बन्धित समस्यायें

13.7 विनियोग कसौटी

13.7.1 विनियोग कसौटी के प्रकार

13.7.2 लागत लाभ विश्लेषण

13.7.3 लागत लाभ विश्लेषण की आलोचना

13.8 अभ्यास प्रश्न

13.9 सारांश

13.10 शब्दावली

13.11 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

13.12 संदर्भ ग्रन्थ सूची

13.13 उपयोगी / सहायक पाठ्य सामग्री

13.14 निबन्धात्मक प्रश्न

13.1 प्रस्तावना

इससे पहले की इकाईयों में आप अर्थव्यवस्था की प्रकृति तथा उनके विकास से सम्बन्धित विभिन्न पहलुओं को भली-भाँति समझ गये होंगे। प्रकृति इकाई में नियोजन की तकनीकी से सम्बन्धित विभिन्न पक्षों का अध्ययन किया जायेगा जिसके अन्तर्गत तकनीकी के चुनाव तथा अर्थव्यवस्था के विकास के लिए उपयुक्त तकनीकी की आवश्यकता को बताया जायेगा। इसके साथ विनियोग कसौटी के अन्तर्गत लागत और लाभ विश्लेषण का आलोचनात्मक अध्ययन किया जायेगा।

अर्थव्यवस्था की प्रकृति एवं आकार के आधार पर विकास प्रक्रिया को तीव्र गति प्रदान करने के लिए सत्ताओं या अर्थव्यवस्थाओं के नियन्त्रकों द्वारा अलग-अलग प्रकार से नियोजन की प्रक्रिया प्रयोग में लायी जाती है। वर्तमान में सभी देशों की अर्थव्यवस्थाएं कुछ समान विशेषताओं को समाहित करती हैं जिसके आधार पर नियोजन की तकनीकी में भी भिन्नताऐं पायी जाती हैं। आर्थिक सुधारों के दौरान एक देश की नियोजन तकनीकी का प्रभाव दूसरे देश की नियोजन तकनीकी पर पड़ना स्वाभाविक है। इस आधार पर अर्थव्यवस्थाओं के विकास के लिए अपनायी गयी नियोजन तकनीकी में समयानुसार परिवर्तन अत्यन्त आवश्यक है। प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के बाद अर्थव्यवस्था के लिए अपनायी गयी नियोजन तकनीकी सम्बन्धी जानकारी का गहराई से अध्ययन कर सकेंगे तथा नियोजन की तकनीकी सम्बन्धी सीमाओं का भी अध्ययन आप कर सकेगें।

13.2 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के बाद आप समझ सकेंगे कि-

- ✓ नियोजन की तकनीकी से क्या अभिप्राय है तथा अर्थव्यवस्था के लिए तकनीकी के चुनाव की समस्या किस प्रकार पैदा होती है।
- ✓ नियोजन की तकनीकी कितने प्रकार की होती हैं तथा अर्थव्यवस्थाओं के लिए तकनीकी की क्या प्रासंगिकता है।
- ✓ अर्थव्यवस्थाओं की प्रकृति तथा आकार के आधार पर तकनीकी की आवश्यकता क्यों बदलती रहती है।
- ✓ तकनीकी के मूल्यांकन की भी अत्यन्त आवश्यकता है जिसके लिए अनेक कसौटियों का निर्धारण किया गया है जिसके सम्बन्ध में लागत-लाभ विश्लेषण का आलोचनात्मक मूल्यांकन किया गया है जिसके बारे में आप सरलता से जानकारी प्राप्त कर सकेंगे

13.3 नियोजन की तकनीकी का चुनाव

नियोजन की तकनीकी के चुनाव का अभिप्राय उस वैकल्पिक प्रक्रिया से लगाया जाता है जिसके द्वारा किसी देश में उपलब्ध संसाधनों का प्रयोग अनुकूलतम तथा सर्वोत्तम ढंग से हो सके तथा आर्थिक विकास की दर में वृद्धि हो। सभी देशों में उपलब्ध संसाधनों को उत्पादन कार्य में इस प्रकार से लगाने की आवश्यकता रहती है कि इन संसाधनों के मध्य विभिन्न संयोगों को किस रूप में अपनाया जाय कुछ देशों में श्रम संसाधनों की अधिकता है तो कुछ में पूँजीगत संसाधनों की। देशों के अन्दर निजी संसाधनों के सर्वोत्म ढंग से प्रयोग करने के साथ-साथ

विदेशी संसाधनों के प्रयोग करने के लिए तकनीकी का एक उचित रूप चुनाव करना अत्यन्त आवश्यक हो जाता है।

13.3.1 नियोजन की तकनीकी का अर्थ

ए. के. सेन के अनुसार- ***''विभिन्न तकनीकों का, प्रायः अभिप्राय होता है, अर्थव्यवस्था के निष्पादन के बहुत विभिन्न प्रयत्नों के साथ आर्थिक विकास की बिल्कुल विभिन्न कूटनीतियां''***

नियोजन की तकनीकी के अन्तर्गत इस प्रक्रिया का अध्ययन किया जाता है कि एक अर्थव्यवस्था उपलब्ध संसाधनों का प्रयोग उत्पादन कार्य करने के लिए करती है। अर्थव्यवस्थाऐं उत्पादन कार्य को देश की आवश्यकता के अनुसार सम्पन्न कराती हैं तथा यह उत्पादन प्रक्रिया किसी भी स्तर की हो सकती है, पिछड़े देशों की तकनीकी निम्न कोटि की तथा विकसित देशों की नियोजन तकनीकी उच्च कोटि की।

यहाँ पर यह भी स्पष्ट करना अत्यन्त आवश्यक है कि नियोजन की तकनीकी एक निरपेक्ष प्रक्रिया है जो केवल उपलब्ध संसाधनों के केवल किसी भी स्तर पर प्रयोग करने से सम्बन्ध रखती है। जबकि तकनीकी का विकास एक सापेक्ष प्रक्रिया है जिसके अन्तर्गत संसाधनों का पूर्व की अपेक्षा कुशलतम रूप में प्रयोग करने के प्रयासों एवं उपायों को शामिल किया जाता है।

उदाहरण के लिए भारत के कुछ राज्यों में वर्तमान में भी कृषि कार्य में पुरानी तथा नवीन तकनीकी का एक साथ प्रयोग देखा जा सकता है। यहाँ पर यह भी स्पष्ट करना आवश्यक होगा कि नियोजन की तकनीकी का सम्बन्ध वृहद स्तर की तकनीकी से है न कि व्यक्तिगत स्तर की तकनीकी से। क्योंकि नियोजन शब्द का प्रयोग अर्थव्यवस्था के सम्बन्ध में किया जाता है।

13.3.2 तकनीकी चुनाव की समस्या

किसी देश के आर्थिक विकास के लिए उपलब्ध संसाधनों के प्रयोग के लिए अनेक रूप में योजनाऐं तैयार की जा सकती हैं जिसके द्वारा अलग-अलग स्तर पर प्रतिफलों को प्राप्त किया जा सकता है। देश के सम्मुख उपस्थित सामाजिक तथा आर्थिक समस्याओं के कारण यह आवश्यक हो जाता है कि उपलब्ध संसाधनों के प्रयोग को इस प्रकार से किया जाय ताकि निम्न उद्देश्यों के नजदीक पहुँचा जा सके।

1. उपलब्ध संसाधनों को वितरण उचित रूप में हो सके।
2. संसाधनों के वितरण में अधिकतम कुशलता प्राप्त की जा सके।
3. उत्पादन अधिकतम तथा लागत को न्यूनतम किया जा सके।
4. अर्थव्यवस्था की आवश्यकताओं को पूरा किया जा सके।

प्रायः देश के सामने यह समस्या पायी जाती है कि संसाधनों का प्रयोग गहन रूप में किया जाय या विस्तृत रूप में। नियोजन तकनीकी के चुनाव की दृष्टि से देश में उलब्धता संसाधनों को दो रूपों में देखा जाता रहा है- पूँजीगत संसाधन तथा श्रमगत संसाधन।

13.4 नियोजन की तकनीकी के प्रकार

देश में उपलब्ध संसाधनों की प्रचुरता तथा अल्पता के आधार पर दो प्रकार की नियोजन की तकनीकी का अध्ययन किया जायेगा।

(क) श्रम प्रधान तकनीकी (Labour Intensive Techniques)

(ख) पूँजी प्रधान तकनीकी (Capital Intensive Techniques)

13.4.1 श्रम प्रधान तकनीकी

श्रम प्रधान तकनीकी से तात्पर्य ऐसी नियोजन की तकनीकी से है जिसके अन्तर्गत पूँजी की प्रति इकाई पर श्रम की अधिक इकाईयों का प्रयोग किया जाता है अर्थात् श्रम प्रधान तकनीकी में श्रम का सापेक्षिक रूप से अधिक मात्रा में प्रयोग किया जाता है। उत्पादन बढ़ाने या विकास की वृद्धि दर बढ़ाने के लिए श्रम की अधिकाधिक मात्रा में सापेक्ष रूप में वृद्धि की जाती है। सामान्य रूप में, नियोजन की जिस तकनीकी में श्रम का प्रधानता के साथ प्रयोग किया जाता है उसे श्रम प्रधान तकनीकी कहा जाता है।

चित्र 13.1 द्वारा प्रधान तकनीकी को भलीभाँति स्पष्ट किया जा सकता है। चित्र में OX अक्ष पर श्रम की इकाईयों को तथा OY अक्ष पर पूँजी की इकाईयों को दर्शाया गया है। O बिन्दु से 45^0 अंश के कोण पर रेखा oh, खींची गयी है जो श्रम प्रधान तथा पूँजी प्रधान तकनीकी की निर्धारण रेखा है।

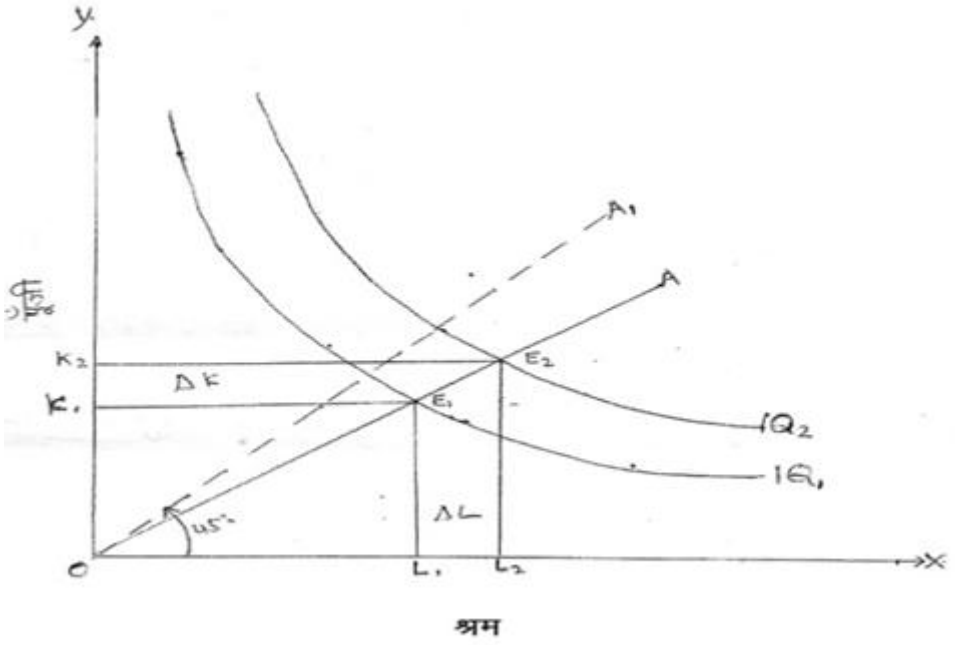

चित्र 13.1

समोत्पाद वक्र IQ_1 तथा IQ_2 उत्पादन के स्तर को दर्शाती है तथा रेखा का OA ढाल श्रम की प्रधानता को स्पष्ट करता है। समोत्पादक वक्र IQ_1 अक्ष के E_1 बिन्दु पर श्रम की L_1 तथा पूँजी की OK_1 मात्रा प्रयोग में लायी जा रही है E_1 बिन्दु पर उत्पादन के लिए पूँजी की अपेक्षा श्रम की अधिक इकाईयों / मात्रा का प्रयोग किया जा रहा है। उत्पादन की मात्रा को IQ_1 से IQ_2 तक बढ़ाने पर श्रम की मात्रा OL_1 से बढ़ाकर OL_2 तक प्रयोग में लायी जा रही तथा पूँजी की मात्रा OK_1 से बढ़ाकर OK_2 तक प्रयोग में लायी जा रही है। उत्पादन में E_1 से E_2 तक की वृद्धि के लिए श्रम तथा पूँजी दोनों साधनों की मात्रा बढ़ायी गयी है लेकिन श्रम की इकाईयों में वृद्धि (ΔL) (ΔK) की अपेक्षा अधिक है। अतः उत्पादन की प्रक्रिया में श्रम का प्रयोग प्रधान रूप में किया जा रहा है।

यहाँ यह स्पष्ट करना आवश्यक होगा कि रेखा OA_1 से OX अक्ष की ओर समोत्पाद वक्रों के किसी भी बिन्दु पर उत्पादन के लिए अपनायी जाने वाली नियोजन की तकनीकी श्रम प्रधान होगा।

13.4.1.1 श्रम प्रधान तकनीकी की विशेषताऐं

किसी देश में अपनायी जाने वाली नियोजन की श्रम प्रधान तकनीकी की विशेषताओं को निम्न रूप में स्पष्ट किया जा सकता है।

1. श्रम प्रधान तकनीकी बेराजगारी दूर करने में सहायक होती है जो आर्थिक विकास के लिए अत्यन्त आवश्यक समझी जाती है। इस तकनीक के अन्तर्गत प्रति पूँजी इकाई पर श्रम की खपत अधिक होती है। जो भारत जैसी श्रम की प्रधानता वाली अर्थव्यवस्था के लिए अत्यन्त ही लाभप्रद समझी गयी है।
2. विकास के प्रारम्भ में पिछड़े तथा अल्पविकसित देशों के लिए श्रम प्रधान तकनीकी उपयुक्त समझी जाती है क्योंकि इस तकनीकी में कम पूँजी की आवश्यकता होती है। इन देशों में सामान्यतः पूँजी की कमी पायी ही जाती है। किसी भी अर्थव्यवस्था में श्रम का पूर्ण प्रयोग किये बिना पूँजी का निर्माण करना सम्भव नहीं है। विकसित देशों में भी श्रम की न्यूनता के कारण श्रम का पूर्ण प्रयोग अल्प काल में सम्भव हुआ। इसी श्रम के पूर्ण प्रयोग के कारण पूँजी का अधिक निर्माण सम्भव हुआ है।
3. श्रम प्रधान तकनीकी के अन्तर्गत उच्च स्तर की कुशलता की आवश्यकता नहीं होती है। विकास का सम्बन्ध केवल भौतिक पूँजी निर्माण से नही है। बल्कि मानवीय संसाधनों का भी संस्थागत विकास शामिल है। पूँजी प्रदान देशों में पूँजी के प्रयोग के लिये उच्च स्तर तकनीकी कुशलता अत्यन्त आवश्यक है जिसे श्रम का पूर्ण प्रयोग करके ही प्राप्त किया जा सकता है।
4. ऐसे देशों में इस तकनीकी से नियोजन तथा उत्पादन के मध्य समयन्तराल बहुत कम पाया जाता है। विकासशील देशों के सामने भी उदारीकरण तथा वैश्वीकरण के दौर में व्यापार चक्रों का दौर अल्पकाल में प्रायः पाया जाता रहा है। जिसके लिये यथाशीघ्र उपायों की आवश्यकता होती है। ऐसी स्थिति में श्रम प्रधान नियोजकों की तकनीकी यथाशीघ्र परिणाम देने वाली होती है।
5. श्रम प्रधान तकनीकी के द्वारा प्रति व्यक्ति आय में वृद्धि होती है तथा आय के वितरण के मध्य असमानताऐं कम पायी जाती हैं। श्रम के प्रयोग से निम्न तथा मध्यम वर्ग की आजीवका में वृद्धि होती है। जो किसी भी अर्थव्यवस्था के लिये आवश्यक समझी गयी है। यह तकनीकी अपेक्षाकृत अधिक लागत वाली पायी गयी है। उत्पादन की तकनीकी की दिशा में होने वाले परिवर्तन लागतों को न्यूनतम् करने पर अत्यधिक केन्द्र है। श्रम प्रधान तकीनकी के अन्तर्गत लागतों की अधिकता पायी गयी है।

13.4.1.2 श्रम प्रधान तकनीकी की सीमाऐं

नियोजन की श्रम प्रधान तकनीकी के अन्तर्गत अनेक प्रकार की सीमाओं का सामना करना पड़ता है।

जिन अर्थव्यवथाओं में जनसंख्या के जीवन निर्वाह का स्तर निम्न स्तर का है वहाँ पर श्रम नियोजन की श्रम प्रधान तकनीकी को अपना आवश्यक तो हो जाता है लेकिन पूर्ण रूप से सफल नहीं कहा जा सकता है। नियोजन की इस तकनीकी के अन्तर्गत कार्यकुशलता, निष्ठा तथा सकारात्मक सोच का पाया जाना अत्यन्त आवश्यक समझा गया है। श्रम की निम्न कार्यकुशलता तथा नकारात्मक सोच अर्थव्यवस्था के लिये अपनायी गयी

नियोजन प्रक्रिया के उद्देश्य को अवरोधित करती है। विशेष कर श्रम कल्याण तथा श्रम सामाजिक सुरक्षा का अनावश्यक लाभ लेने के कारण अर्थव्यवस्था के विकास में अनेक प्रकार की बाधायें उत्पन्न हो जाती हैं। आपको यह ध्यान देना अत्यन्त आवश्यक हैं कि भारत में सार्वजनिक क्षेत्र का निष्पादन आशाओं के अनुकूल प्राप्त नहीं किया जा सका परिणाम स्वरूप

नियोजन की तकनीकी में आवश्यक परिवर्तनों का सहारा लेना पड़ा है। वर्तमान में भी नियोजन की तकनीकी के लिये मानवीय श्रम संसाधनों के विकास पर अत्यधिक जोर दिया जा रहा है।

इसी क्रम में यह भी ध्यान देने योग्य तथ्य है कि नियोजन की इस श्रम प्रधान तकनीकी एक अन्य सीमा अन्य दूसरी अर्थव्यवस्थाओं से प्रतिस्पर्द्धात्मक वातावरण पैदा होना भी रहा है। कोई भी अर्थव्यवस्था केवल अपनी आन्तरिक व्यवस्थाओं एवं नियोजन प्रक्रिया द्वारा अपने को सुरक्षित या अप्रभावित नहीं रख सकती है। किसी भी देश की श्रम प्रधान तकनीकी अन्य सम्बन्धित अर्थव्यवस्थाओं की नियोजन की तकनीकी का भी योजना निर्माण में ध्यान रखना होता है। वर्तमान में देशों के सामने एक ओर आर्थिक विकास की दर को तीव्र करना है तो वहीं दूसरी और बेरोजगारी तथा गरीबी जैसी समस्याओं का भी समाधान करना जैसी कठिनाईयाँ पाई गई हैं। नियोजन की श्रम प्रधान तकनीकी को अपनाने के साथ अर्थव्यवस्था के लिये सुरक्षात्मक वातावरण बनाना अत्यन्त आवश्यक समझा गया है।

यहाँ यह भी स्पष्ट करना अत्यन्त आवश्यक है कि अर्थव्यवस्थाओं के लिये सभी क्षेत्रों के विकास को एक समान नियोजन की तकनीकी को नहीं अपनाया जा सकता है। जिन अर्थव्यवस्थाओं के सभी क्षेत्रों का समान विकास हुआ है या समान विकास की आवश्यकता है। उन देशों में नियोजन की इस श्रम प्रधान तकनीकी को अपनाया जा सकता है। विकासशील तथा पिछड़े देशों की अर्थव्यवस्था अनेक क्षेत्रों में विभक्त होती है। जिनका समान या उच्च गति से विकास करना श्रम प्रधान नियोजन की तकनीकी से सम्भव नहीं है। अर्थव्यवस्थाओं का विकसित क्षेत्र पूँजी प्रधान तकनीकी के लिये ही उपयुक्त है। जबकि पिछड़ा हुआ क्षेत्र श्रम प्रधान तकनीकी के लिये उपयुक्त कहा जा सकता है। क्योंकि इस क्षेत्रों के पास पर्याप्त पूँजी नहीं पायी जाती है। नियोजन की श्रम प्रधान तकनीकी को अपनाने के लिये अर्थव्यवस्था के सभी क्षेत्रों के लिये विकास की आवश्यकता समान रूप से होनी चाहिये अन्यथा नियोजन की श्रम प्रधान तकनीकी के क्षेत्र में कार्य निष्पादन का स्तर अपेक्षाकृत कम रहेगा तथा यह तकनीकी अपने उद्देश्यों को प्राप्त करने में समर्थ नहीं रहेगी।

13.4.2 पूँजी प्रधान तकनीकी

पूँजी प्रधान तकनीकी से तात्पर्य नियोजन की उस तकनीकी से लगाया जाता है जिसके अन्तर्गत देश की अर्थव्यवस्था के विकास के लिए पूँजी का प्रयोग प्रधानता के रूप में किया जाता है सामान्य रूप में श्रम की मात्रा पर पूँजी की अपेक्षाकृत अधिक मात्रा का प्रयोग किया जाता है। उत्पादन में वृद्धि के स्तर पर भी श्रम की अपेक्षा पूँजी की मात्रा में अपेक्षाकृत अधिक वृद्धि की जाती है। चित्र 13.2 के द्वारा पूँजी प्रधान तकनीकी को आसानी से समझाया जा सकता है।

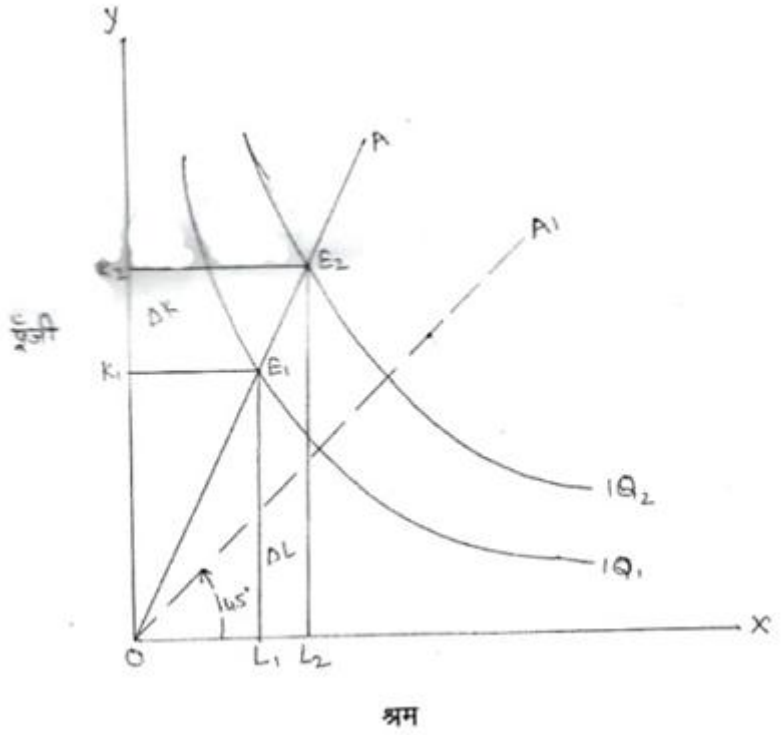

चित्र 13.2

दिये गये चित्र मे OX अक्ष पर श्रम की इकाईयां तथा OY अक्ष पर पूँजी की इकाईयों को दर्शाया गया है। रेखा OA_1 से OY अक्ष की ओर समोत्पादवक्र के किसी भी बिन्दु पर उत्पादन की तकनीकी पूँजी प्रधान तकनीकी होगी क्योंकि OA_1रेखा के इस मांग में उत्पादन के लिए पूँजी की इकाईयां, श्रम की अपेक्षा अधिक मात्रा में प्रयोग में लायी जा रही हैं। OA रेखा के OE_1 बिन्दु पर श्रम की OL_1तथा पूँजी की OK_1 इकाईयों का प्रयोग किया जा रहा है। पूँजी की OK_1 इकाईयां की OK_1 इकाई से अपेक्षाकृत अधिक हैं। इसी रेखा पर समोत्पाद वक्र IQ_1 के बिन्दु E_2 पर उत्पादन के लिए श्रम की L_1L_2 इकाईयों में वृद्धि की गयी है। पूँजी की इकाई वृद्धि ΔKश्रम की इकाई वृद्धि ΔL से अपेक्षाकृत अधिक है। उत्पादन वृद्धि के लिए भी श्रम की अपेक्षा पूँजी की इकाईयों / मात्रा में अधिक वृद्धि की गयी है। अतः यह नियोजन की पूँजी प्रधान तकनीकी कहलायेगी।

13.4.2.1 पूँजी प्रधान तकनीकी की विशेषताऐं

अर्थव्यवस्था में नियोजक की पूँजी प्रधान तकनीकी की मुख्य विशेषताऐं निम्नवत् रूप में दर्शायी जा सकती हैं।

1. श्रम की अल्पता वाले देशों में आर्थिक विकास के लिए तकनीकी अत्यन्त उपयुक्त है। इसके कारण पूँजी की निश्चित मात्रा पर श्रम का पूर्ण क्षमता के साथ प्रयोग किया जा सकता है जिससे देश में प्रतिव्यक्ति राष्ट्रीय आय में तीव्रता के साथ वृद्धि होती है जो आर्थिक विकास के लिये अत्यन्त आवश्यक समझी जाती है।
2. उत्पादन की वृद्धि दर का स्तर ऊँचा पाया जाता है। जिससे देश में उपभोग तथा वितरण के स्तर में सुधार होता है।

3. उत्पादन को कम लागत पर गुणवत्तापूर्ण रूप में प्राप्त किया जा सकता है। जो किसी भी देश के औद्योगीकरण के लिये अत्यन्त आवश्यक तथा सैधान्तिक मानी गयी है।
4. उपलब्ध संसाधनों का अधिक कुशलता के साथ प्रयोग किया जा सकता है। वैश्वि अर्थव्यवस्था में उपयुक्त संसाधनों का प्रयोग आर्थिक विकास के लिये बड़े पैमाने पर किया जाता है।
5. औद्योगीकरण के लिए अत्यन्त उपयुक्त तकनीकी पायी गयी है। औद्योगीकरण का आधार ही पूँजीकरण तथा नवीन आविष्कार रहा है। जो नियोजन की इस तकनीकी के द्वारा ही सम्भव है।
6. वैश्वीकरण के दौर में इस तकनीकी की अधिक प्रतिस्पर्द्धात्मकता पायी गयी है। वैश्विक अर्थव्यवस्था में जो विशेषताऐं एक देश के अन्दर अत्यन्त आवश्यक हैं। वे नियोजन की इस तकनीकी को अपनाकर पैदा किया जा सकता है। वर्तमान में विकसित अर्थव्यवस्थाऐं इसी तकनीकी के सहारे आगे बढ़ रही है।

13.4.2.2 पूँजी प्रधान तकनीकी की सीमाऐं

आपको यह भी जानना अत्यन्त आवश्यक है कि नियोजन की पूँजी प्रधान तकनीकी अत्यन्त लोकप्रिय है तथा आवश्यक होने बाद भी अनेक प्रकार के सीमाओं के अन्दर ही अधिक उपयुक्त समझी जा सकती है। विकासशील तथा पिछड़ी अर्थव्यवस्थाऐं नियोजन की तकनीकी को अपनाने में पूर्ण समर्थ नहीं है क्योंकि उनके सामने एक ओर तो पर्याप्त पूँजी की उपलब्धता की समस्या पायी जाती है वहीं दूसरी ओर अनेक ऐसी समस्याऐं विद्यमान है जो पूँजी प्रधान तकनीकी को अपनाने से कम होने के वजाय और अत्यधिक गम्भीर हो जाती है। इसके साथ नियोजन की इस तकनीकी की इन अर्थव्यवस्थाओं के लिये अत्यन्त आवश्यकता है।

नियोजन की इस तकनीकी के माध्यम से आय और सम्पत्ति की असमानताऐं काफी बढ़ने लगती हैं जो उत्पादन के ढांचे में विकृतियाँ पैदा करती है। अर्थशास्त्रियों का मानना है कि नियोजन की पूँजी प्रदान तकनीकी एक उच्च वर्ग के हितों की पूर्ति करने में अत्यधिक महत्वपूर्ण रही है वहीं दूसरी और तकनीकी पूँजी का केन्द्रीयकरण करने में सहायक पायी गयी है। जो किसी भी अर्थव्यवस्था के लिये सदैव लाभादायक नहीं समझी जा सकती है। आर्थिक शक्ति का केन्द्रीकरण देश की राजनीतिक तथा सामाजिक व्यवस्थाओं के लिये अत्यधिक घातक माना गया है। काले धन की अधिकता के साथ-साथ सामाजिक उद्देदश्य को यह तकनीकी प्राप्त करने में समर्थ नहीं हो सकती है। श्रम वर्ग का शोषण होना नियोजन की इस तकनीकी समान आम बात कही जा सकती है। भारत जैसी विकासशील अर्थव्यवस्था में एक बड़ा ग्रामीण तथा कृषि क्षेत्र एक ऐसा क्षेत्र है जिसका विकास पूर्ण रूप से पूँजी प्रदान नियोजन की तकनीकी की सहारा लेकर नहीं किया जा सकता।

13.5 उपयुक्त तकनीकी तथा अर्थव्यवस्था की प्रकृति

उपयुक्त तकनीकी का चुनाव देशों की अर्थव्यवस्थाओं की प्रकृति पर पूर्ण रूप से निर्भर करता है। अल्पविकसित देशों में पूँजी की कमी, वित्तीय तथा भौतिक संसाधनों की सीमितता तथा दूसरी ओर विकसित देशों में पूँजी की प्रचुरता एवं अन्य संसाधनों की अल्पता द्वारा भी तकनीकी के स्तर में भिन्नता पायी जाती है। प्राथमिक क्षेत्र पर आधारित अर्थव्यवस्था के लिए पूँजी प्रधान तकनीकी की ओर अग्रसर होने की आवश्यकता तथा श्रम की अधिकता से बेरोजगारी की समस्या का समाधान खोजना, उपयुक्त तकनीकी के चुनाव को निर्धारित करने में महत्वपूर्ण सीमाएं उपस्थित होती है। विकसित देशों के सम्मुख उपलब्ध पर्याप्त तथा प्रचुर पूँजी को विनियोजित

करने वाली पूँजी प्रधान तकनीकी ने अल्पविकसित देशों की श्रम प्रधान तकनीकी के स्थान पर प्रतिस्थापन करने के लिए आवश्यक दशाऐं पैदा की है। सामान्य रूप से विकास की वर्तमान स्थिति तथा संसाधनों की वैश्विक गतिशीलता के आधार पर पूँजी प्रधान तकनीकी के चुनाव को उपयुक्त अधिमान दिया गया है।

13.6 नियोजन की तकनीकी के क्रियान्वयन सम्बन्धित समस्यायें

देशों की अर्थव्यवस्थाओं के विकास के लिये अपनाये जाने वाले नियोजन की विभिन्न प्रकार की तकनीकीयों के क्रियान्वयन के मार्ग में भी अनेक प्रकार की समस्याऐं पायी जाती है।

आपको यह जानना अत्यन्त आवश्यक है देश के विकास के लिये निर्धारित लक्ष्यों एवं लक्ष्य पूर्ति के मध्य एक बड़ी सीमा तक अन्तर पाया जाता है। विज्ञान और तकनीकी विकास के युग में अर्थव्यवस्थाओं की मानव शक्तियों का भी इस तकनीकी के योग्य बनाया जाना अत्यन्त आवश्यक है। प्रायः देखा जाता है कि विकसित देशों के पास उच्च स्तर की पूँजी प्रधान नियोजन तकनीकी उपलब्ध है। लेकिन इन देशों में पर्याप्त मात्रा में इस तकनीकी को अमल में लाने के लिये मानवीय संसाधनों की कमी है जिसे दूसरे अन्य देशों से आयात करके पूरा किया जा रहा है। दूसरी और पिछड़े तथा अल्पविकसित देशों में आर्थिक विकास के लिये अपनाये जाने वाली तकनीकी के लिए पहले से ही कुशल तथा प्रशिक्षित श्रम की कमी पायी गयी है। ऐसी स्थिति में ये अर्थव्यवस्थाऐं दूसरी विकसित या पिछड़ी अर्थव्यवस्थाओं में विद्यमान श्रम का प्रयोग अपने हित में करने में समर्थ नहीं पायी गयी है।

इन देशों में श्रमिकों में साक्षरता और कुशलता के निम्न स्तर के कारण नियोजन की तकनीकी का अधिक प्रचार एवं प्रसार नही किया जा सकता परिणाम स्वरूप श्रम के आधिक्य और पूँजी की कमी के कारण नवीन तकनीकों को अपनाने में बाधयें पैदा होती है। भले ही अन्य देशों से तकनीकी का आयात कर लिया जाये तो भी उसे अर्थव्यवस्थाओं के हितों के अनुकूल बनाने में अनेक प्रकार की क्रियात्मक कठिनाईयाँ पैदा होती है। अल्पविकसित देशों के पास अपनाऐं जाने वाली नियोजन की तकनीकी को कियान्वित करने में समुचित आर्थिक संगठन के अभाव के कारण समस्या पैदा होती है। अर्थव्यवस्थाओं में निजी क्षेत्रों का सहअस्तित्व होने कारण सरकार का पूर्ण रूप से प्रभुत्व एवं नियन्त्रण नही पाया जाता। इन क्षेत्रों में वित्तीय तथा अन्य सामाजिक सेवाओं के संचालन में भी नियोजन की तकनीकी को अल्प काल में आर्थिक उद्देश्य के अनुकूल आसानी से परिवर्तित नहीं किया ता सकता।

आप इस तथ्य से भली-भाँति परिचित होगें के एक देश की सरकार द्वारा आर्थिक विकास के लिये अपनाये जाने वाली नियोजन की तकनीकी का उचित क्रियान्वयन करने के लिए वहाँ की जनता का पूर्ण सहयोग मिलना अत्यन्त आवश्यक है। प्रायः देखा गया है कि पिछड़े तथा अल्पविकसित देशों की अर्थव्यवस्थाओं के सामने जनता द्वारा आर्थिक नियोजन में सहयोग न मिलने की समस्या बनी रहती है। इन देशों में शिक्षा की गुणवत्ता तथा विस्तार का स्तर नीचा होने के कारण जनता नियोजन के लिये अपनायें जाने वाले तकनीकी के क्रियान्वयन एवं तकनीकी से प्राप्त होने वाले लाभों के प्रति अनभिज्ञ रहती है और नियोजन की तकनीकी के प्रति जनता में अलग-अलग तरह के भ्रम पैदा हो जाते है। परिणाम स्वरूप जन सहयोग की भावना का स्तर निम्न पाया जाता है।

कभी-कभी राजनैतिक भ्रम के कारण जनता में आर्थिक नियोजन की तकनीकी के विरोध की भावना पैदा कर दी जाती है।

अर्द्धविकसित देशों में प्रशासन की कार्य अकुशलता तथा वित्तीय प्रशासन सम्बन्धि शिथिलताओं के कारण नियोजन की तकनीकी को अपनाने में अनेक प्रकार की समस्याऐं पैदा होती है। नियोजन कार्यक्रमों के संचालन के मार्ग में सार्वजनिक तथा निजी क्षेत्र के हितों में आपसी टकराव के कारण भी देश की अर्थव्यवस्था के लिये आवश्यक नियोजन की तकनीकी का क्रियान्वयन उचति रूप में नहीं हो पाता। पिछले दशकों में अल्पविकसित तथा पिछड़ी अर्थव्यवस्था में के अन्तर्गत सार्वजनिक क्षेत्र नियोजन की उचित तकनीकी को क्रियान्वित करने में सफल नही सके परिणाम स्वरूप निजी तथा सार्वजनिक क्षेत्रों द्वारा अपनायी जाने वाली नियोजन की तकनीकी को अलग-अलग रूपों में अपने हितों के लिये क्रियान्वित किया गया।

भौगोलिक दृष्टि से बड़े आकार वाले देशों की अर्थव्यवस्थाओं में श्रम की गतिशीलता की कमी के कारण विकास के लिये अपनाये जाने वाली नियोजन की तकनीकी का क्रियान्वयन उचित रूप से नही किया जा सकता। इन देशों में घनिष्ठ सामाजिक सम्बन्ध, अपरिवर्तित सामाजिक व्यवस्था, क्षेत्रवाद, भाषा सम्बन्धी समस्यों के कारण भी नियोजन की तकनीकी को उचित रूप में क्रियान्वित नहीं किया जा सकता क्योंकि ऐसी स्थिति में आवश्यकता के अनुसार कुशल तथा अनुभवी एवं प्रशिक्षित मानव शक्ति की उपलब्धता सम्बन्धित समस्याऐं उपलब्ध होती रहती है।

13.7 विनियोग कसौटी

विनियोग कसौटी से तात्पर्य उस विधि से है जिसके द्वारा विनियोग सम्बन्धी तकनीकी का मूल्यांकन किया जाता है। इस मूल्यांकन के द्वारा विनियोग सम्बन्धी कार्यक्रमों की गुणवत्ता, उपयोगिता, तकनी दक्षता, वित्तीय तथा प्रबन्धकीय कुशलता आदि को इंगित किया जाता है।

13.7.1 विनियोग कसौटी के प्रकार

विनियोग मूल्यांकन के लिए निम्नलिखित कसौटियों का प्रयोग किया जाता है।

1. लागत-लाभ विश्लेषण
2. क्षतिपूर्ति अवधि कसौटी
3. शुद्ध वर्तमान मूल्य कसौटी
4. प्रतिफल की आन्तरिक दर कसौटी
5. बट्टा काटा नकदी प्रवाह कसौटी
6. संवेदिता विश्लेषण कसौटी

13.7.2 लागत और लाभ-विश्लेषण

लागत-लाभ विश्लेषण, विनियोग कसौटी का एक सबसे अधिक महत्वपूर्ण उपकरण है। इस विश्लेषण के अन्तर्गत इस तथ्य पर सर्वाधिक रूप से ध्यान दिया जाता है कि नियोजित विनियोग पर लागत का स्तर क्या पाया गया तथा लाभ की मात्रा को किस स्तर पर आंकलित किया गया। इस विश्लेषण में विनियोग की प्रत्यक्ष लागत

तथा प्रत्यक्ष लाभों के मध्य संगणना एवं तुलना की जाती है। प्रत्यक्ष लाभों के मूल्यों को बाजार कीमतों तथा अवसर लागतों के आधार पर परिगणित किया जाता है।

प्रत्यक्ष लागतों से तात्पर्य परियोजना के निर्माण, रख-रखाव तथा कार्यकरण में उचित रूप मे उठायी जाने वाली लागतों से लगाया जाता है। प्रत्यक्ष लागतें, प्रत्यक्ष लाभों की अपेक्षा अधिक आंकलित होने पर विनियोग को अर्थव्यवस्था के हित में माना जायेगा। लागतों एवं लाभों के मध्य अन्तर जितना कम होगा विनियोग का मूल्यांकन उतने ही निम्न स्तर पर किया जायेगा। प्रत्यक्ष लागतों तथा लाभों का आंकलन मुद्रा-मूल्य के रूप में अगणित किया जाता है।

अतः सार रूप में लागत-लाभ विश्लेषण के अन्तर्गत मुख्य उद्देश्य शुद्ध सामाजिक लाभों को स्थापित करना होता है।

13.7.3 लागत-लाभ विश्लेषण की आलोचना

लागत-लाभ विश्लेषण की आलोचना निम्न बिन्दुओं के आधार पर की गयी है-

1. अल्प विकसित अर्थव्यवस्थाओं में लागत तथा लाभों की वास्तविक गणना में कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है।
2. पूर्व कल्पित सामाजिक बट्टा पर मनमानी हो सकती है जो लागत-लाभ विश्लेषण के लिए कठिनाई पैदा करती है।
3. वैकल्पिक लागतों की भी गणना सरल नहीं है।
4. जोखिम तथा अनिश्चितताओं पर ध्यान नहीं दिया जाता है।

13.8 अभ्यास प्रश्न

लघु उत्तरीय प्रश्न

1. नियोजन की तकनीकी क्या है?
2. श्रम प्रधान तकनीकी की विशेषताऐं बताओ?
3. पूँजी प्रधान तकनीकी क्या है?
4. बेरोजगारी दूर करने में कौन सी तकनीकी उपयुक्त है?
5. विकसित देशों की तकनीकी किस प्रकार की हैं?

बहुविकल्पीय प्रश्न

6. नियोजन की तकनीकी का चुनाव है?

1. समस्या 2. व्यवस्था
3. विशेषता 4. कोई नहीं

7. नियोजन की तकनीकी प्रभावित है।

1. अर्थव्यवस्था की आवश्यकता से 2. अर्थव्यवस्था की प्रकृति से
3. अर्थव्यवस्था की आकार से 4. उक्त सभी से

सत्य और असत्य कथन की पहचान कीजिए

8. नियोजन की तकनीकी एक प्रक्रिया है (सत्य / असत्य)
9. पिछड़े देशों में पूँजी की कमी पायी जाती है (सत्य / असत्य)
10. लागत-लाभ विश्लेषण विनियोग की कसौटी नहीं है (सत्य /असत्य)

13.9 सारांश

अर्थव्यवस्था की प्रकृति एवं आकार के आधार पर देशों में अलग-अलग नियोजन की तकनीकी प्रयोग में लायी गयी है। नियोजन की तकनीकी के चुनाव के अन्तर्गत देश में उपलब्ध संसाधनों के अनुकूलतम तथा कुशलतम रूप में प्रयोग करने वाली तकनीकी को अधिक महत्व दिया गया है। सामान्यतः विकसित तथा विकासशील देशों में नियोजन की तकनीकी के चुनाव की समस्या पायी जाती है। नियोजन की तकनीकी दो प्रकार की होती है- श्रम प्रधान तकनीकी तथा पूँजी प्रधान तकनीकी। श्रम प्रधान तकनीकी में श्रम की मात्रा का पूँजी की अपेक्षा अधिक मात्रा में प्रयोग किया जाता है तथा पूँजी प्रधान तकनीकी विकास की प्रारम्भिक अवस्था में आवश्यक है तो विकसित अवस्था में पूँजी प्रधान तकनीकी का चयन अत्यन्त उपयोगी हो जाता है।

वैश्वीकरण के दौर में औद्योगीकरण के लिए पूँजी प्रधान तकनीकी चयन विकसित तथा विकासशील दोनों देशों के विकास के लिए किया जा रहा है। पूँजी प्रधान तकनीकी अधिक तथा गुणवत्तापूर्ण उत्पादन के लिए उपयोगी है। उपयुक्त तकनीकी का चयन अर्थव्यवस्था की प्रकृति पर आधारित है जो अर्थव्यवस्था को स्पर्द्धात्मक बना सके। विनियोग कसौटियो में लागत-लाभ विश्लेषण अत्यन्त महत्वपूर्ण उपकरण है। लागत तथा लाभ के मध्य अधिक अन्तर को विनियोग की उपयोगिता का मापक माना जाता है। फिर भी लागतों तथा लाभों की गणना में विकासशील देशों में अनेक कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है।

13.10 शब्दावली

- **नियोजन:-** उत्पादन हेतु संसाधनों के प्रयोग सम्बन्धी पूर्व निर्धारित कार्यक्रम।
- **तकनीकी:-** उपलब्ध संसाधनों के प्रयोग हेतु अपनायी जाने वाली प्रक्रिया।
- **कसौटी:-** उचित तथा अनुचित का निर्धारण करने वाली दशाएं।
- **श्रम:-** श्रमिक द्वारा आर्थिक उद्देश्य से किये जाने वाला शारीरिक तथा मानसिक प्रयास।
- **पूँजी:-** धन का वह भाग जो उत्पादन कार्य में लगा हो।
- **विकसित अर्थव्यवस्था:-** एक ऐसी अर्थव्यवस्था, जिसके अन्तर्गत उपलब्ध संसाधनों का पूर्ण तथा सर्वोत्तम ढंग से प्रयोग किया जा चुका हो।
- **विकासशील अर्थव्यवस्था:-** एक ऐसी अर्थव्यवस्था जो उपलब्ध संसाधनों का प्रयोग पूर्ण कुशलता के साथ करने का प्रयास करती है।
- **लाभ:-** उद्यमी को प्राप्त होने वाला वह भाग जो उत्पत्ति के अन्य साधनों को वितरित करने के बाद शेष बचता है।

- **अर्थव्यवस्था:-** एक ऐसी व्यवस्था जिसके अन्तर्गत आजीविका कमाने तथा व्यय करने को व्यवस्थित किया जाता है।
- **विनियोग:-** पूँजी भण्डार में वृद्धि के लिए लगाया गया धन विनियोग कहलाता है।
- **विकास:-** अर्थव्यवस्था में उत्पादन के साथ संस्थागत तत्त्वों में परिवर्तन करना विकास कहलाता है।
- **समोत्पाद वक्र:-** उत्पत्ति के दो साधनों के विभिन्न संयोगों का बिन्दु पथ जिसके प्रत्येक बिन्दु पर समान मात्रा में उत्पादन किया जाता है।
- **उत्पादन:-** किसी वस्तु या सेवा की उपयोगिता में वृद्धि करना उत्पादन कहलाता है।

13.11 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

13.12 संदर्भ ग्रन्थ सूची

- मिश्रा एण्ड पुरी (2010) *भारतीय अर्थव्यवस्था*, हिमालय पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली
- दत्त एवं सुन्दरम् (2010) *भारतीय अर्थव्यवस्था*, एस. चंद एण्ड क.लि., नई दिल्ली
- एम॰एल॰ झिंगन (2009) *विकास की अर्थव्यवस्था एवं आयोजन*, वृंदा पब्लिकेशन्स प्रा.लि. मयूर विहार, नई दिल्ली-91
- एस.पी. सिंह (2010) *आर्थिक विकास एवं नियोजन*, एस. चन्द एण्ड क.लि., नई दिल्ली- 110055
- सक्सैना तथा गुप्ता (2000) *भारतीय अर्थव्यवस्था (विकास समस्यायें एवं नियोजन),* नवयुग साहित्य सदन- लोहा मण्डी- आगरा-2

13.13 उपयोगी / सहायक पाठ्य सामग्री

- एम.एल. सेठ (2007) *अर्थशास्त्र के सिद्धान्त*, लक्ष्मी नारायण अग्रवाल, पुस्तक प्रकाशक एवं विक्रेता आगरा- 282002
- एम. एल. झिंगन (2002) *समष्टि अर्थशास्त्र*, कोणार्क पब्लिर्श प्रा. लि. मेन विकास मार्ग, दिल्ली-110092
- एच.एल. आहूजा (2002) *व्यष्टि अर्थशास्त्र*, एस. चन्द एण्ड क.लि. नई दिल्ली
- जे. सी. पंत (2002) *तुलनात्मक आर्थिक प्रणालियां*, लक्ष्मी नरायन अग्रवाल, पुस्तक प्रकाशक एवं विक्रेता- आगरा- 282002
- R.C Agarwal (2002) *Economics of Development & Planning*, Lakshmi Narayan Agarwal Agra- 202002

13.14 निबन्धात्मक प्रश्न

1. नियोजन की तकनीकी से क्या तात्पर्य है? तकनीकी चुनाव की समस्या को स्पष्ट कीजिए?
2. नियोजन की तकनीकी के विभिन्न प्रकारों को स्पष्ट करते हुए उनके गुण-दोषों की विवेचना कीजिए?

3. विकासशील अर्थव्यवस्थाओं के लिए आवश्यक नियोजन तकनीकी का विस्तृत व्याख्या कीजिए?
4. विनियोग कसौटी के अन्तर्गत लागत- और लाभ विश्लेषण की आलोचनात्मक विवेचना कीजिए?
5. नियोजन की श्रम प्रधान व पूँजी प्रधान तकनीकी की सीमाओं का विश्लेषण कीजिए?

इकाई 14- भारत में नियोजन तकनीकी, भारत के नियोजन मॉडल, बाजारोन्मुख अथर्व्यवस्था में नियोजन

(Techniques of Planning in India, Planning Model in India, Planning in the Market Economy)

14.1 प्रस्तावना

14.2 उद्देश्य

14.3 भारत में नियोजन तकनीकी

14.3.1 नियोजन तकनीकी की आवश्यकता

14.3.2 नियोजन तकनीकी की उपलब्धियाँ

14.3.3 नियोजन तकनीकी असफलतायें

14.4 भारत में नियोजन मॉडल

14.5 बाजारोन्मुख अर्थव्यवस्था में नियोजन

14.5.1 बाजारोन्मुख अर्थव्यस्था की प्रकृति

14.5.2 मिश्रित अर्थव्यवस्था एवं नियोजन

14.6 अभ्यास प्रश्न

14.7 सारांश

14.8 शब्दावली

14.9 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

14.10 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

14.11 उपयोगी/सहायक पाठ्य सामग्री

14.12 निबन्धात्मक प्रश्न

14.1 प्रस्तावना

भारत में नियोजन खण्ड की यह तीसवीं इकाई भारत में नियोजन की तकनीकी, भारत के नियोजन मॉडल, बाजारोन्मुख अर्थव्यवस्था में नियोजन है। इससे पूर्व की इकाई में आप समझ गये होंगे कि नियोजन की तकनीकी का क्या अभिप्राय है तथा तकनीकी चुनाव की क्या समस्या है? आप भली भांति समझ गये होंगे कि तकनीकी कितने प्रकारों को अपनाया जा रहा है, अर्थव्यवस्था के लिए आवश्यक उपयुक्त तकनीकी से सम्बन्धित विभिन्न पक्षों से आप अवगत भी हुये होगें। विनियोग कसौटी के अभिप्राय के साथ इसके प्रकारों में लागत लाभ विश्लेषण से भली भांति परिचित हुए होंगे।

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन से आप भारत में नियोजन की तकनीकी के बारे में विभिन्न तथ्यों से अवगत होने के साथ भारत के विकास के लिए नियोजन की तकनीकी की आवश्यकताओं को समझेंगे। नियोजन तकनीकी की उपलब्धियों एवं असफलताओं का अध्ययन करेंगे। इसके साथ भारत की विभिन्न पंचवर्षीय योजनाओं में अपनाये गये विभिन्न नियोजन मॉडलों से आप भली भांति परिचित होंगे। बाजारोन्मुख अर्थव्यवस्था की प्रकृति को समझने के साथ भारतीय मिश्रित अर्थव्यवस्था के लिए आवश्यक नियोजन से सम्बन्धित विभिन्न तथ्यों का आप अध्ययन कर सकेंगे।

भारत में नियोजन तकनीकी के निर्धारण के पीछे मुख्य उद्देश्य अर्थव्यवस्था के किसी एक क्षेत्र विशेष का तीव्र विकास रकना नहीं रहा है इसीलिए भारतीय नियोजन की तकनीकी को वहुउद्देशीय कहा जाये तो कोई विरोधाभास की स्थिति नहीं मानी जा सकती है। भारत में नियोजन सम्बन्धी मुख्य संस्था 'योजना आयोग' कार्यशील है जो भारत सरकार के अधीन कार्य करता है। भारत में सामान्य रूप से 5 वर्षीय नियोजन काल को निर्धारित किया गया लेकिन विशेष परिस्थितियो में परिवर्तन संभव है जो प्रायः भारत में योजना काल में देखने को मिला है।

नियोजन सम्बन्धी निर्धारित समयावधि के कारण समय-समय पर नियोजन की तकनीकी में भी परिवर्तन करना अत्यन्त सरल तथा आवश्यक भी हो जाता है जो भारतीय अर्थव्यवस्था के लिए अत्यन्त प्रासंगिक रहा है।

प्रस्तुत इकाई में नियोजन के प्रारम्भ में अपनायी गयी नियोजन की तकनीकी तथा वर्तमान में अपनायी जाने वाली नियोजन तकनीकी तथा उसकी आवश्यकता को स्पष्ट किया गया है। नियोजन तकनीकी का निर्धारण नियोजन के आधार विकास मॉडल रहे हैं जिनकी विवेचना भी इस इकाई में की गयी है। नियोजन की तकनीकी की तरह नियोजन के आधार बनाये जाते रहे हैं। नियोजन के मार्ग में भारतीय अर्थव्यवस्था की समस्याओं तथा वैश्वीकरण के दौर में स्वतन्त्र अर्थव्यवस्था ने भी नियोजन के आकार, प्रकृति तथा तकनीकी को अन्तर्सम्बन्धित किया है।

14.2 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन करने के बाद आप समझ सकेंगे कि-

- ✓ भारत में विभिन्न पंचवर्षीय योजनाओं में अपनाये जाने वाली नियोजन तकनीकी किस प्रकार तथा किस दिशा में परिवर्तित हुई हैं?

- ✓ केवल नियोजन की तकनीकी ही विकास के लिए आवश्यक नहीं है बल्कि नियोजन के मार्ग में आने वाली समस्याऐं किस दिशा में क्रियाशील रही हैं।
- ✓ भारत में आर्कियक नियोजन की तकनीकी किन-किन मॉडलों पर आधारित रही है?
- ✓ बाजारोन्मुख अर्थव्यवस्था में नियोजन की प्रकृति किस प्रकार की है तथा नियोजन की तकनीकी के कौन से रूप की आवश्यकता पायी गयी है।
- ✓ वर्तमान भारतीय अर्थव्यवस्था में नियोजन सम्बन्धी आवश्यकताओं की क्या स्थिति है यह किस प्रकार गत वर्षों की तकनीकी से प्रासंगिकता रखती है।
- ✓ आप यह भी समझ सकेंगे कि एक मिश्रित अर्थव्यवस्था में नियोजन की क्या भूमिका पायी जाती है।

14.3 भारत में नियोजन तकनीकी

भारत के आर्थिक विकास के लिए 1 अप्रैल 1951 से नियोजन प्रक्रिया प्रारम्भ की गयी प्रारम्भ में भारतीय अर्थव्यवस्था के लिए नियोजन तकनीकी के निर्धारण की समस्या अर्थव्यवस्था को धक्का देने के लिए अत्यन्त आवश्यक थी लेकिन अब भारत की अर्थव्यवस्था की समस्याऐं तथा नियन्त्रण व्यवस्था के लिए नियोजन की तकनीकी में परिवर्तन करना भी जरूरी हो गया है।

भारतीय अर्थव्यवस्था की वर्तमान स्थिति का आंकलन करते हुए उपलब्ध संसाधनों का अनुमान लगाया जाता रहा है तथा संसाधनों के कुशलतम् प्रयोग अधिकतम उत्पादन करने के लिए किया गया इसके साथ सामाजिक तथा आर्थिक लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए वित्तीय तथा भौतिक दृष्टिकोण पर ध्यान दिया गया। भारतीय अर्थव्यवस्था के क्षेत्रीय असन्तुलन को दूर करने के लिए नियोजन की तकनीकी को यथासंभव परिवर्तन भी किया गया है। भारत में केन्द्र सरकार की योजना नीति के साथ-साथ राज्य स्तर पर भी नियोजन की प्रक्रिया को जारी रखा गया है। नियोजित अर्थव्यवस्था से खुली तथा वैश्विक अर्थव्यवस्था की ओर अग्रसर होने पर नियोजन की तकनीकी में आवश्यक सुधार भी किया गया है। आप आगे के बिन्दुओं के अध्ययन से नियोजन की तकनीकी को आसानी से समझ सकते हैं।

ब्रिटिश सरकार की शोषणकारी नीतियों तथा शासन पद्धति के कारण नियोजन के प्रारम्भ में उन सभी समस्याओं का सामना करना पड़ा जो नियोजन से पूर्व भारतीय अर्थव्यवस्था गरीबी तथा वेरोजगारी का सामना कर रही थी। नियोजन के प्रारम्भ में कृषि के क्षेत्र में आत्मनिर्भरता प्राप्त करने के लिए संस्थागत परिवर्तनों वाली नियोजन की तकनीकी अपनायी गयी जिसका कृषि उत्पादन में वृद्धि के साथ-साथ वेरोजगारी तथा गरीबी से छुटकारा पाने में सहायता मिल सकी। कृषि उत्पादन के लिए सामान्यतः श्रम का अधिक प्रयोग करने वाली तकनीकी के साथ कृषि की उत्पादकता तथा गुणवत्ता में सुधार करना भी नियोजन की तकनीकी के लिए आधार बनाया गया। भारतीय अर्थव्यवस्था को तीव्र गतिशील बनाने के लिए और कृषि को अधिक श्रम का प्रयोग करने के योग्य बनाया गया वही नवीन तकनीकी का प्रयोग करके देश में उद्योगों का विकास करना भी नियोजन की प्रक्रिया में शामिल किया गया तथा कृषि तथा उद्योग की अन्तर्निर्भरता के द्वारा देश का आर्थिक विकास तेज गति से हो सके।

भारतीय अर्थव्यवस्था की मिश्रित प्रकृति होने के कारण सरकार द्वारा निजी तथा सार्वजनिक यन्त्र की विनियोग प्रवृत्ति को भी पूर्ण रूप से नियंत्रित नहीं कर सकी परिणाम स्वरूप देश के विनियोग की तकनीकी में परिवर्तन माना अत्यन्त आवश्यक था। वेरोजगारी तथा गरीबी दूर करने के लक्ष्य के साथ निजी क्षेत्र श्रम प्रधान तकनीकी का प्रयोग करने के समर्थ नहीं हो सकता। वही विदेशी व्यापार में सुधार के लिए भी सार्वजनिक क्षेत्र में नियोजन की प्रकृति में बदलाव लाना अत्यन्त आवश्यक रहा

औद्योगिक आधार कायम करने के लिए विकास की प्रक्रिया चालू करने और औद्योगिक राष्ट्रों पर हमारी निर्भरता कम करने के लिए यह उचित ही पाया गया कि सरकार स्वयं पूँजी वस्तु क्षेत्र के लिए नियोजन में स्थान दिया जाय ताकि उपेक्षित क्षेत्रों का भी विकास हो सके। लोहा-इस्पात, भारी रसायन, भारी इंजीनियरिंग परमाणु संयन्त्र, उर्वरक, जहाज, निर्माण, मशीन उपकरण, वायुयान निर्माण आदि के क्षेत्रों का विकास करने के लिए नियोजन की तकनीकी में भी परिवर्तन लाया गया। सामाजिक तथा अधिक जोखिक वाले क्षेत्रों में भी सार्वजनिक क्षेत्र की सहभागिता को नकारा नहीं जा सकता। इन भारी उद्योग तथा विदेशी व्यापार के विकास एवं विस्तार के लिए भी निजी क्षेत्र को बढ़ावा देने के लिए नियोजन में बदलाव लाया गया।

14.3.1 नियोजन तकनीकी की आवश्यकता

भारत की नियोजन प्रणाली के अन्तर्गत एक उयुक्त नियोजन तकनीकी की आवश्यकता समय-समय पर महसूस की गयी है जिसे निम्नवत् रूप में स्पष्ट किया जा सकता है। आपको ज्ञात होना आवश्यक हे कि भारतीय अर्थव्यवस्था आर्थिक विषमताओं की विसंगतियों का सामना करती रही है यह विषमता सम्बन्धी विसंगतियां सरकार की उयुक्त नियोजन तकनीकी को अपनाकर ही दूर की जा सकती हैं। इस आर्थिक विषमताओं को दूर करने का प्रयास किया जाना अत्यन्त आवश्यक होगा। भारत की मिश्रित अर्थव्यवस्था में एक ओर संसाधनों का शोषणात्मक प्रयोग हो रहा है तो दूसरी ओर उपलब्ध संसाधनों का पूर्ण कुशलता के साथ प्रयोग किया जाना अभी बाकी है जिसे आर्थिक नियोजन की उपयुक्त तकनीकी द्वारा ही सम्भव बनाया जा सकता है। आर्थिक नियोजन के एक लम्बे समय के बाद भी भारत में गरीबी, बेरोजगारी, सामाजिक, आर्थिक न्याय की कमी, अशिक्षा, श्रमिकों में अकुशलता जैसी अनेक समस्याऐं विद्यमान है जिसके लिए यह अत्यन्त आवश्यक है कि एक समन्वयकारी नियोजन की तकनीकी अपनायी जाय जो भारतीय अर्थव्यवस्था में व्याक्त उक्त समस्याओं का यथाशीघ्र निराकरण किया जा सके।

14.3.2 नियोजन तकनीकी की उपलब्धियां

प्रथम पंचवर्षीय योजना के प्रारम्भ से अब तक दस पंचवर्षीय योजनाऐं पूर्ण हो चुकी है तथा ग्यारहवीं योजना पूर्ण होन के कगार पर है। भारत में अपनायी गयी नियोजन की तकनीकी के माध्यम से जो उपलब्धियां अर्जित की गयी उनका विश्लेषण निम्नवत किया गया है। प्रथम पंचवर्षीय योजना के समय देश खाद्यान तथा अन्य आधारभूत सुविधाओं के लिए आत्मनिर्भर नहीं था, आर्थिक नियोजन को अपनाकर वर्तमान में देश खाद्यान तथा अन्य आधारभूत आवश्यकताओं के क्षेत्र में आत्मनिर्भर हो चुका है। कृषि उत्पादन में तीव्र वृद्धि से सम्बन्धित उद्योगों का भी तीव्र विकास सम्भव हुआ है। आपको यह भी स्पष्ट करना आवश्यक है कि भारत में बढ़ती जनसंख्या के बाद भी प्रतिव्यक्ति आय तथा राष्ट्रीय आय में लगातार तीव्र गति से वृद्धि हुई है। योजनाकाल में देश

में औद्योगीकरण का तीव्र प्रसार हुआ है आधारभूत उद्योगों की स्थापना के साथ-साथ औद्योगिक उत्पादन तथा उत्पादकता होने में उल्लेखनीय वृव्द्धि दर्ज की गयी तथा भारत की औद्योगिक आत्मनिर्भरता से काफी वृद्धि हुई है। देश में कोयला, इस्पात, कागज, सीमेण्ट, साइकिल, नाइट्रोजन खाद, मशीन तथा औजारों के उत्पादन में उल्लेखनीय वृद्धि हुई तथा इन अंगो में आत्म निर्भरता की दिशा में सार्थक प्रयास किये गये हैं।

योजनाकाल में भारत में शिक्षा तथा गुणवत्ता एवं विस्तार के साथ-साथ तकनीकी शिक्षा के विकास एवं विस्तार पर विशेष ध्यान दिया गया तथा उल्लेखनीय सफलताऐं प्राप्त की गयीं।

आर्थिक सुधारों के समय तक देश में सार्वजनिक अंग का विस्तार किया गया जिसमें विनियोजित पूँजी में भी अत्यधिक वृद्धि की गयी। 1991 के बाद से निजी अंग के विस्तार एवं विकास की दिशा में अत्यधिक कार्य किया गया। देश में आर्थिक स्थिरता के साथ विकास किया गया विदेशी व्यापार तथा ऊर्जा उत्पादन के क्षेत्र में महत्वपूर्ण कार्य किये गये है। कल्याणकारी योजनाओं के क्षेत्र में महत्वपूर्ण उपलब्धियां अर्जित की गयी है। देश में सामाजिक तथा आर्थिक सेवाओं का विस्तार किया गया है।

14.3.3 नियोजन तकनीकी असफलताऐं

नियोजन काल में योजना निर्माताओं ने नियोजन की जिस तकनीकी को प्रयोग में लाया गया उससे भारतीय अर्थव्यवस्था की अनेक समस्याओं एवं कठिनाईयों का समाधान हो सका। इसके बावजूद भी समयान्तराल के आधार पर अर्थव्यवस्था के लिए निर्धारित अनेक लक्ष्यों को पूर्ण रूप से प्राप्त करने के लिए नियोजन की तकनीकी पूर्ण रूप से सफल नही हो सकी।

भारत में योजना निर्माताओं ने समयानुकूल श्रम प्रधान तथा पूँजी प्रधान तकनीकों का सहारा लिया गया ताकि आवश्यकतानुसार अर्थव्यवस्था में रोजगार के पर्याप्त अवसर पैदा किये जा सके तथा बेरोजगारों को कार्य करने के अधिकतम अवसर उपलब्ध हो सके इसके बाद भी योजना की लम्बी समायावधि में भारतीय अर्थव्यवस्था बेरोजगारी की समस्या से छुटकारा नही पा सकी। वर्तमान में शिक्षित बेरोजगारी की समस्या के चलते गरीबी जैसी समस्याओं का समाधान सम्भव नहीं हो सका है।

भारत के आर्थिक नियोजन के लिए अपनायी गयी तकनीकी प्रतिव्यक्ति आय तथा राष्ट्रीय आय की वृद्धि की दर को तीव्रता प्रदान नहीं कर सकी। प्रति व्यक्ति आय की वृद्धि दर बहुत धीमी रही 1993-94 की कीमतों पर प्रतिव्यक्ति आय 11798 रूपये के स्तर पर ही पहुँच सकी जो अन्य देशों से तुलनात्मक रूप में काफी कम पायी गयी है। भारत में नियोजन काल में नियंत्रण की नीति दोषपूर्ण एवं एकांगी रही है जिससे वांछित सफलताऐं प्राप्त नहीं की जा सकी हैं। भारत में अपनायी गयी नियोजन की तकनीकी योजनाओं में निर्धारित लक्ष्यों के अनुरूप तय नही की गयीं।

पर्याप्त जनसहयोग का अभाव, प्रशासकीय अकुशलता एवं प्रबन्धकीय योजना का लचीलापन, निजी क्षेत्र पर सामाजिक हितों की अनदेखी जैसी समस्याओं के कारण नियोजन की तकनीकी पूर्ण रूप से लक्ष्यों को प्राप्त नहीं कर सकी।

आर्थिक विकास की अग्रसरता एवं नियोजन की समयानुकूल परिवर्तनशीलत के बाद भी भारतीय अर्थव्यवस्था की विदेशों पर निर्भरता कम नहीं हो सकी है। विदेशी ऋणों पर भारत की निर्भरता बढ़ती जा रही है।

दूसरा मुख्य कारण विदेशी ऋण का कुशलता के साथ प्रयोग न करना पाया गया है। इसके साथ भारत में क्षेत्रीय असमनाऐं भी बढ़ रही हैं। विहार, असाम, उत्तर प्रदेश, उड़ीसा जैसे राज्य लम्बे नियोजन काल के बाद भी वर्तमान में अन्य प्रदेशों की तुलना में पिछड़े हुए है। विकासित प्रदेशों का लगातार तीव्र विकास हो रहा हैं। इस क्षेत्रीय असमनताओं के लिए नियोजन की तकनीकी को ही जिम्मेदार ठहराया जा सकता है। भारतीय अर्थव्यवस्था के विकास के लिए सामाजिक हितों की अनदेखी करके अर्थव्यवस्था को पूँजीवाद की ओर अग्रसरित करने के पूर्ण प्रयास किये गये हैं जिससे सार्वजनिक क्षेत्र के उप्रक्रमों का निष्पादन निम्न स्तर तक ही सीमित रह गया है।

भारत में शिक्षा के विकास एवं विस्तार के चलते अनेक ऐसे उपाय किये गये जिनका भारतीय अर्थव्यवस्था की प्रकृति से सकारात्मक सम्बन्ध स्थापित नही किया जा सका भारतीय शिक्षा का क्षेत्र अत्यधिक उदार बना दिया गया जिससे शिक्षा की गुणवत्ता का हास होने लगा। शिक्षा का व्यावसायीकरण होने के कारण भारतीय अर्थव्यवस्था कुशलता के साथ कार्य करने के योग्य श्रम तथा क्षमताओं का विकास नहीं कर सकी। परिणाम स्वरूप 12 वीं योजना के अन्तर्गत शिक्षा की गुणवत्ता पर विशेष ध्यान देने की बात प्राथमिकता के स्तर पर लायी गयी है।

14.4 भारत में नियोजन मॉडल

प्रक्रिया विभिन्न पंचवर्षीय योजनाओं में अलग-अलग विकास प्रारूपों पर आधारित की गयी हैं।

प्रथम पंचवर्षीय योजना हैरोड डोमर के विकास मॉडल पर निर्मित नियोजन पर आधारित रही जो देश की तत्कालीन अर्थव्यवस्था की बिगड़ी स्थिति के पुनरूत्थान में अत्यन्त ही सहायक सिद्ध हुआ। स्वतंत्रता के बाद उत्पन्न भारतीय अर्थव्यवस्था में विभिन्न आर्थिक असंतुलनों को दूर करना अत्यन्त आवश्यक था जिसके लिए एक ऐसी विकास प्रक्रिया की आवश्यकता महसूस की गई जो देश का बहुमुखी विकास सम्भव करा सके। अर्थव्यवस्था का पुर्ननिर्माण एवं आधार संरचना निर्माण के साथ जनसंख्या के जीवन के लिए आवश्यक कृषि का विकास इस नियोजन प्रारूप द्वारा संभव हो सका।

द्वितीय योजना में नियोजन का महालनोविस मॉडल को आधार बनाया गया जिसके अन्तर्गत अर्थव्यवस्था को अलग-अलग क्षेत्रों में बांट कर विकास की प्रक्रिया को तीव्र किया गया। महालनोबिस विकास मॉडल पर आधारित इस योजना के अंतर्गत देश के औद्योगिक विकास की गति को तीव्र किया गया तथा इसे अर्थव्यवस्था के अन्य क्षेत्रों के लिए अत्यन्त उपयोगी बनाया गया। तृतीय पंचवर्षीय योजना यद्यपि महालनोविस मॉडल पर आधारित की गयी लेकिन जॉन सैण्डी तथा एस.चक्रवर्ती मॉडल के साथ समायोजन किया गया जिसमें कृषि क्षेत्र के विकास के साथ आधारभूत उद्योगों के विस्तार को ध्यान में रखा गया।

चौथी पंचवर्षीय योजना में नियोजन ए.एस.मान तथा अशोक रूद्र मॉडल पर आधारित किया गया। इस मॉडल में विकास के बड़े धक्के के सिद्धान्त का प्रयोग किया गया, इस चौथी पंचवर्षीय योजना में अर्थव्यवस्था को आन्तरिक रूप से कृषि, उद्योग को सुदृढ़ करते हुए विदेशी व्यापार के सम्बन्ध में भारतीय अर्थव्यवस्था को अधिक अनुकूल बनाने का प्रयास किया गया। इसके साथ अर्थव्यवस्था की संचालन प्रक्रिया में सुधारात्मक प्रयास किये गये। पांचवी योजना में नियोजन की प्रक्रिया में 66 क्षेत्रीय आगत-निर्गत मॉडल को आधार बनाया गया जिसे योजना आयोग के दृष्ट विभाग द्वारा निर्मित प्रारूप में समाहित किया गया। गरीबी उन्मूलन एवं आर्थिक

आत्मनिर्भरता की ओर विशेष ध्यान दिया गया। अर्थव्यवस्था के लिए आवश्यक शक्तियों का पूर्ण क्षमता के साथ प्रयोग करने के सार्थक प्रयास किये गये। सामाजिक न्याय की ओर भी योजना आयोग द्वारा ध्यान दिया गया। छठी योजना 89 क्षेत्रीय आगत-निर्गत मॉडल पर आधारित रही। इस योजना में भी नियोजन की प्रकृति दीर्घकालीन पायी गयी। सातवी योजना में भी छठी योजना के मॉडल को अपनाया गया। इस नियोजन में सार्वजनक क्षेत्र तथा निजी क्षेत्र के लिए नियोजन में वरीयता प्रदान की गयी। देश के विकेन्द्रीयकृत विकास का लक्ष्य इस मॉडल द्वारा तय किया गया। गरीबी उन्मूलन के लिए आवश्यक रोजगार सृजन क्षमता का विकास किया गया तथा खाद्यान्नों के क्षेत्र में आत्मनिर्भरता के रूप में प्रयास किये गये। आठवीं योजना का नियोजन उदारीकृत अर्थव्यवस्था के लिए परिणित जॉन डब्ल्यू मिलर मॉडल पर आधारित किया गया। नवीं पंचवर्षीय योजना का नियोजन भी दीर्घकालीन, परिप्रेक्ष्य के आधार पर तैयार किया गया तथा इसके लिए समष्टि आर्थिक मॉडल मधुदण्डवते मॉडल को आधार बनाया गया जिसके अन्तर्गत बाजार शक्तियों को महत्वपूर्ण स्थान दिया गया। दसवीं योजना का प्रारूप सोम समिति मॉडल पर आधारित किया गया था। ग्यारहवीं योजना का निर्माण योजना आयोग द्वारा भारतीय अर्थव्यवस्था का तीव्र विकास करने के लिए किया गया। जिसके अन्तर्गत शिक्षा, स्वास्थ्य, गरीबी उन्मूलन, आधारभूत ढांचे का विकास के साथ कृषि एवं सिंचाई विकास पर प्राथमिकताओं को तय किया गया।

विभिन्न पंचवर्षीय योजनाओं में अपनाये गये नियोजन के मॉडल –

क्र.सं.	पंचवर्षीय योजना	आधार मॉडल
1.	प्रथम	हैरड-डोमर वृद्धि मॉडल
2.	द्वितीय	मललनोविस मॉडल
3.	तृतीय	महालनोविस मॉडल/सेण्डी एण्ड चक्रवर्ती मॉडल
4.	चतुर्थ	एलन स.मान, अशोग रूद्र का संगति मॉडल
5.	पंचम	66 क्षेत्रीय आगत-निर्गत मॉडल
6.	छठी	89 क्षेत्रीय आगत-निर्गत मॉडल
7.	सातवीं	89 क्षेत्रीय आगत-निर्गत मॉडल
8.	आठवीं	समष्टि आर्थिक मॉडल/जॉन डब्ल्यू, मिलर मॉडल
9.	नवीं	समष्टि आर्थिक मॉडल/मधु दण्डवते मॉडल
10.	दशवीं	सोमसमिति-मॉडल
11.	ग्यारहवीं	योजना आयोग द्वारा निर्धारित प्रारूप
12.	बारहवीं	प्रस्तावित

14.5 बाजारोन्मुख अर्थव्यवस्था में नियोजन

आपको यह मालूम होगा कि भारत में उपलब्ध संसाधनों का प्रयोग कुशलतम तरीके से आवश्यक है जो बाजार व्यवस्था के माध्यम से सम्भव है लेकिन बाजारोन्मुख भारतीय अर्थव्यवस्था के लिए नियोजन समस्या भी अपना अगल महत्वपूर्ण स्थान रखती है। आर्थिक सुधारों के प्रारम्भिक समय में प्रारम्भ होने वाली आठवीं पंचवर्षीय योजना के अनुसार ***''यद्यपि बाजार व्यवस्था मांग (क्रयशक्ति द्वारा समर्थित) और पूर्ति के बीच***

सन्तुलन लाने में समर्थ है परन्तु यह आवश्यकता और पूर्ति के बीच सन्तुलन लाने में असमर्थ है।" इस लिए इस क्षेत्र में आयोजन का महत्व बना रहेगा।

14.5.1 बाजारोन्मुख अर्थव्यवस्था की प्रकृति

बाजारोन्मुख अर्थव्यवस्था में प्रतिस्पर्द्धात्मक शक्ति बढ़ाने के लिए नियोजन की प्रक्रिया में परिवर्तन लाना अत्यन्त आवश्यक समझा गया। औद्योगीकरण की प्रक्रिया को तीव्र करते हुये तकनीकी का चुनाव इस प्रकार से किया गया कि उत्पादकता घटाये विना श्रम का प्रयोग अधिक से अधिक किया गया तथा अर्थव्यवस्था को रोजगार सृजित करने वाली बनाया गया।

योजना आयोग के अनुसार-***''उच्च विकास दर का होना आवश्यक तो है परन्तु रोजगार वृद्धि के लिए यह आवश्यक नहीं है। अधिक रोजगार क्षमता वाले क्षेत्रों के योगदान से प्राप्त विकास ढांचा और श्रम का अधिक प्रयोग करने वाली उत्पादन तकनीकी से रोजगार पैदा करने की क्षमता में वृद्धि हो जाती है। यद्यपि दक्षता, उत्पादकता स्तर और प्रतिस्पर्द्धा कम किये विना, तकनीकों को बदलने का कार्य सरल नहीं है। तथापि यह स्वीकार करना होगा कि अर्थव्यवस्था के बड़े भाग कृषि क्षेत्र, असंगठित विनिर्माण क्षेत्र सहित सभी उत्पादन क्षेत्रों में उत्पादकता-स्तर में सुधार लाने आवश्यकता है।''***

बाजारोन्मुख अर्थव्यवस्था में आर्थिक सुधारों की प्रक्रिया को बनाये रखने के लिए नियोजन की प्रक्रिया में काफी उदारता बरती गयी। अर्थव्यवस्था से राज्य की नियन्त्रणकारी शक्तियों को काफी ढीला किया गया तथा नियोजन की प्रक्रिया में निजी क्षेत्रों की सहभागिता को शामिल किया गया। नियोजन प्रक्रिया में घरेलू संसाधनों का अनुकूलतम निजी क्षेत्र द्वारा करने पर जोर दिया गया।

बाजारोन्मुख अर्थव्यवस्था में नियोजन की प्रक्रिया के लक्ष्य अल्पकालीन न होकर दीर्घकालीन निर्धारित किये गये तथा उसी प्रकार वित्तीय तथा भौतिक संसाधनों का आवंटन इन्ही उद्देश्यों की प्राप्ति के आधार पर किया गया है। खुली अर्थव्यवस्था में क्षेत्रीय आयोजन को महत्वपूर्ण बनाया गया है। राज्य द्वारा सामाजिक सेवाओं का विस्तार करने वाली नियोजन को अपनाया गया है। वर्तमान समय में अर्थव्यवस्था को रोजगार सृजित करने के लिए श्रम की गुणवत्ता को विकसित करने वाली नीतियों को आधार बनाया गया है।

यहाँ पर यह स्पष्ट करना अत्यन्त आवश्यक होगा बाजारोन्मुख अर्थव्यवस्था में सरकार की भूमिका में कमी करके तथा बाजार तन्त्र व्यवस्था की कुशलता के साथ नियोजन द्वारा समानता के साथ विकास का मार्ग प्रशस्त किया जा सकता है। वर्तमान में सार्वजनिक क्षेत्र के अन्तर्गत आयोजन का महत्व उन क्षेत्रों तक ही सीमित रह गया है जहाँ पर निजी क्षेत्र के अन्तर्गत आयोजन लाभदायक सिद्ध नहीं हो सकता। अर्थव्यवस्था में आर्थिक कुशलता बढ़ाने तथा प्रतिस्पर्द्धात्मक क्षमता विकसित करने के लिए निजी क्षेत्र की सहभागिता बढ़ायी गयी है लेकिन भारत में गरीबी, बेरोजगारी तथा स्वास्थ्य तथा शिक्षा सम्बन्धी अनेक समस्याओं को देखते हुए जियोजन की तकनीकी तथा आयोजन की प्रकृति को केवल निजी क्षेत्र के हित में ही नहीं देखा जा सकता है।

भारतीय अर्थव्यवस्था के कई क्षेत्र ऐसे भी हैं जहाँ निजी क्षेत्र के संदर्भ में आयोजन पूर्णरूप से कारगार सिद्ध नहीं हो सकता है। बाजार व्यवस्था पर्यावरण वन, पारिस्थितिकी संरक्षण के लिए कभी भी महत्वपूर्ण सिद्ध

नहीं हो सकती जबकि यह क्षेत्र भारत जैसे विकासशील राष्ट्र के लिए अत्यन्त ही महत्व का माना गया है। मानव विकास रिपोर्ट 1991 में भी निजीकरण को अर्थव्यवस्था की समस्याओं का समाधान मानने से इंकार किया है।

मिश्रित अर्थव्यवस्था एवं नियोजन

भारतीय मिश्रित अर्थव्यवस्था एक ऐसी अर्थव्यवस्था है जिसे बिना नियोजित व्यवस्था के संचालित करने की कल्पना नहीं की जा सकती है। भारतीय अर्थव्यवस्था में एक क्षेत्र लाभ-हानि की संकल्पना से दूर सामाजिक हित पर आधारित है तो दूसरा क्षेत्र लाभ-हानि की संकल्पना से बिल्कुल दूर नहीं रखा जा सकता है। ऐसी स्थिति में निजी तथा सार्वजनिक क्षेत्र का सहअस्तित्व वाला विकास नियोजन की एक उपयुक्त तकनीकी के अभाव में संभव नहीं है। भारतीय अर्थव्यवस्था के क्षेत्र तीन रूपों में कार्यरत पाये गये हैं, पहला क्षेत्र सार्वजनिक क्षेत्र के रूप में कार्यशील है। पूर्ण स्वामित्व एवं नियंत्रण राज्य के हाथ में है, इस क्षेत्र में निजी क्षेत्र का हस्तक्षेप किसी भी सीमा तक स्वीकार नहीं है, दूसरा क्षेत्र पूर्णतः निजी क्षेत्र के स्वामित्व के अधीन है लेकिन इस पर राज्य का सामान्य नियन्त्रण क्रियाशील रहता है। तीसरा क्षेत्र निजी तथा सार्वजनिक रूप में सहअस्तित्व के रूप में कार्य करता है।

अर्थव्यवस्था के इन तीनों क्षेत्रों के नियन्त्रण एवं विकास के लिए एक व्यवस्थित सुसंगठित नियोजन की तकनीकी अपनाया जाना अत्यन्त ही आवश्यक समझा गया है। आपको यहाँ पर यह स्पष्ट करना अत्यन्त आवश्यक होगा कि निजी अंग को सरकार के नियन्त्रण से बाहर नहीं छोड़ा जा सकता है क्योंकि ऐसा करने से सामाजिक हितों को सुरक्षित रख पाना अत्यन्त ही मुश्किल होगा जो भारतीय अर्थव्यवस्था में एक गंभीर समस्या पैदा करेगा। पूर्ण रूप से सार्वजनिक अंग के अन्तर्गत वैश्विक अर्थव्यवस्था के लाभों से दूर ही रखा जा सकता है, जो आर्थिक विकास के लिए उपयुक्त नहीं कहा जा सकता है।

पूंजीवादी अर्थव्यवस्था तथा समाजवादी अर्थव्यवस्था के मिश्रण को समान रूप से संचालित करना एक कोई सरल कार्य नहीं है। भारतीय मिश्रित अर्थव्यवस्था में एक उपयुक्त नियोजन की तकनीकी को अपनाने से पूर्व निम्न तथ्यों पर ध्यान देना अत्यन्त ही आवश्यक समझा जा सकता है -

1. सरकार द्वारा सार्वजनिक तथा निजी क्षेत्रों द्वारा किस सीमा तक सामाजिक उद्देश्यों को प्राप्त करने के लिए क्रियाशील कर सकती है ताकि दोनों क्षेत्रों में उचित समन्वय बना रहे तथा आर्थिक विरोधाभास की स्थिति नहीं बन सके।
2. सरकार द्वारा आर्थिक विकास को तीव्र करने तथा विनियोग सम्बन्धी महत्वपूर्ण निर्णय किस प्रकार लिये जायें ताकि सार्वजनिक तथा निजी क्षेत्रों का हित भी सुरक्षित रह सके।
3. किसी भी एक क्षेत्र के विकास को दूसरे क्षेत्र की हित हानि के आधार पर न करने के लिए बाध्य किया जाये।

मिश्रित अर्थव्यवस्था में वित्तीय संस्थाओं पर राज्य सरकार का प्रभावी नियन्त्रण है ताकि वित्तीय व्यवस्था का किसी एक विशेष क्षेत्र के हित में नहीं हो सके। वित्तीय व्यवस्था किसी राष्ट्र के आर्थिक विकास का आधार होती है। सरकार द्वारा एकाधिकार विकास पर रोक लगाने के लिए अर्थव्यवस्था को प्रतियोगात्मक बनाने की दिशा में सार्थक प्रयास किया गया है ताकि पूंजीपतियों द्वारा जनता का किसी भी सीमा तक शोषण नहीं हो सके। लेकिन

यहाँ यह स्पष्ट करना आवश्यक है कि पूंजीवादी ताकतों का विस्तार लाभ ही उच्च दर पर निर्भर है जो जनता के शोषण का ही परिणाम कहा जा सकता है।

मिश्रित अर्थव्यवस्था के निजी तथा सार्वजनिक क्षेत्र को सुरक्षा के लिए उचित मौद्रिक तथा राजकोषीय नीतियों का निर्धारण सरकार द्वारा किया गया है जो आर्थिक अस्थिरता को रोकने का सर्वाधिक महत्वपूर्ण उपकरण कहे जाते हैं, जिसका अर्न्तविरोधी अर्थव्यवस्था में महत्वपूर्ण स्थान निर्धारित किया गया है। सार्वजनिक विनियोग का एक बड़ा भाग ऐसे क्षेत्र में किया गया है जहाँ पर निजी क्षेत्र द्वारा विनियोग किया जाना सक्षमता से बाहर है। कमजोर वर्गों के कल्याण के लिए उचित तथा सस्ते मूल्य पर सामग्री की उपलब्धता सुनिश्चित की गई है, इसके साथ जो अत्यन्त महत्वपूर्ण तथा नियोजन की तकनीकी से अर्न्तसम्बन्धित है। श्रम के विकास के लिए शिक्षा एवं तकनीकी प्राविधि को विकसित करने के लिए महत्वपूर्ण उपाय किये गये हैं जो सार्वजनिक तथा निजी दोनों ही अंगों के विकास के लिए अत्यन्त ही महत्वपूर्ण है। श्रम की गुणवत्ता का विकास एवं विस्तार के लिए सार्वजनिक संस्थाओं के साथ-साथ निजी अंग की संस्थाओं की भी सहयोगिता सुनिश्चित की गई है ताकि नियोजन की बदलती तकनीकी के साथ पूर्ण रूप से समन्वय स्थापित किया जा सके। मिश्रित अर्थव्यवस्था की संस्थाओं के आधार पर यह भी सुनिश्चित किया गया है कि आवश्यकता वाले क्षेत्रों में नियोजन की श्रम प्रधान या पूँजी प्रधान तकनीकी को अपनाया जाये ताकि अर्थव्यवस्था की समस्याओं का समाधान किया जा सके।

जान डेज और अमर्त्यसेन ने इस सम्बन्ध में स्पष्ट किया है कि ***"जबकि बाजार के प्रयोग के मार्ग में अवरोधकों को हटाने से कई प्रकार के अवसरों के विस्तार में महत्वपूर्ण लाभ होगा, इन अवसरों के व्यवहारिक प्रयोग के लिए कुछ प्रकार की मूल योग्यताऐं जरूरी हैं जिनमें साक्षरता और शिक्षा, मूल स्वास्थ्य, सामाजिक सुरक्षा लिंग रूपी समानता, भू-अधिकार और स्थानीय लोकतन्त्र शामिल हैं।"*** इन योग्यताओं का तीव्र विस्तार महत्वपूर्ण रूप में ऐसे सार्वजनिक कार्य पर निर्भर करता है, जिसकी भारत में अत्यधिक उपेक्षा की गयी है और यह परिस्थिति हाल के सुधारों से पूर्व और बाद के काल में बनी हुई है। वास्तविक मुद्दा शेर को पिंजरे से बाहर निकालने का है और इसके लिए उदारीकरण की हदें पार करने की आवश्यकता है।

आपको उक्त विश्लेषण से यह भली भांति स्पष्ट हो गया होगा कि भारतीय अर्थव्यवस्था की निर्धनता, अशिक्षित, निम्न स्वास्थ्य, सामाजिक अन्याय, आर्थिक विषमता, वेरोजगारी जैसी समस्याओं से बाहर निकालने के लिए बाजारोन्मुख अर्थव्यवस्था पर पूर्ण निर्भरता के साथ आयोजन को बदलना होगा।

14.6 अभ्यास प्रश्न

बहुविकल्पीय प्रश्न

1. प्रथम पंचवर्षीय योजना कब प्रारम्भ की गयी?

(क) 1950-51 से (ख) 1951-52 से

(ग) 1954-55 से (घ) 1955-56 से

2. भारत में सामान्यतः एक योजना की समयावधि है -

(क) 10 वर्ष (ख) 2 वर्ष

(ग) 5 वर्ष (घ) 8 वर्ष

3. भारतीय अर्थव्यवस्था की प्रकति है -

(क) समाजवादी (ख) पूँजीवादी

(ग) मिश्रित (घ) कोई नहीं

4. प्रथम पंचवर्षीय योजना किस मॉडल पर आधारित है?

(क) महालनोबिस मॉडल (ख) हैडर-डॉमर मॉडल

(ग) लीविस (घ) सभी पर

5. चौथी पंचवर्षीय योजना किस मॉडल पर आधारित है?

(क) मान तथा अशोक रूड मॉडल पर (ख) हैरॉड डॉमर मॉडल पर

(ग) मिलर मॉडल पर (घ) सोमसमिति मॉडल पर

6. सही विकल्प पर निशान लगाओ -

वर्तमान में भारतीय अर्थव्यवस्था है -

(क) बाजारोन्मुख अर्थव्यवस्था (ख) साम्यवादी अर्थव्यवस्था

(ग) बन्द अर्थव्यवस्था (घ) उक्त सभी प्रकार की

14.7 सारांश

भारत में योजना आयोग द्वारा अपनायी जाने वाली नियोजन की पाँच वर्षीय नियोजन प्रक्रिया में समय-समय पर अनेक महत्वपूर्ण परिवर्तन देखने को मिले हैं जो भारतीय अर्थव्यवस्था की विकास की अवस्थाओं के कारण आवश्यक भी समझे गये। इसके साथ नियोजन की तकनीकी में भी समय-समय पर होने वाले बदलाव भी अत्यन्त प्रासंगिक रहे हैं। प्रारम्भ में अपनायी नियोजन की तकनीकी तथा वर्तमान में अपनायी जाने वाली नियोजन की तकनीकी में काफी अन्तर देखने को पाया गया है। प्रस्तुत इकाई से आकपे अर्थव्यवस्था की वास्तविक नियोजन सम्बन्धी स्थिति भली भांति समझ में आ जायेगी। सन पचास तथा साठ के दशक में श्रम प्रधान नियोजन की तकनीकी को अपनाया गया इसके साथ औद्योगिक क्षेत्र के विकास के लिए कुछ सीमा तक पूंजीप्रधान नियोजन की तकनीकी को भी महत्व दिया गया। अर्थव्यवस्था के विकास की स्थितियों के अनुसार नियोजन की तकनीकी पूँजी गहनता की ओर अधिक तेज गति से अग्रसर हुई परिणामस्वरूप देश में गरीबी तथा वेरोजगारी की समस्या वर्तमान में भी विद्यमान है। नियन्त्रित अर्थव्यवस्था से खुली अर्थव्यवस्था की ओर अग्रसारित होने पर केवल राजकीय नीतियों को ही थोपा नहीं जा सकता बल्कि अन्तर्राष्ट्रीय स्तर की नीतियों द्वारा भी भारतीय आयोजन की दिशा एवं प्रकृति परिवर्तित हुई। बाजारोन्मुख अर्थव्यवस्था के सम्बन्ध में पूंजीगहन तकनीकी वाले नियोजन ने विकास की दर को बढ़ा दिया हो लेकिन सामाजिक क्षेत्र की समस्याओं को दूर नहीं किया जा सका।

भारत के नियोजन समय में अलग-अलग विकास के मॉडल अपनाये गये। प्रथम पंचवर्षीय योजना हैरोड डॉमर मॉडल पर आधारित थी तो आठवीं योजना समष्टि आर्थिक जॉन डब्ल्यू मिलर मॉडल पर आधारित की गयी ग्यारहवीं योजना आयोग के दृष्टिकोण पर ही आधारित रही। बाजारोन्मुख अर्थव्यवस्था में निजी क्षेत्र की सहभागिता को बढ़ाने के साथ-साथ कुछ महत्वपूर्ण क्षेत्रों में राज्य की नियोजन भूमिका को अलग नहीं किया जा

सकता है। भारतीय अर्थव्यवस्था को केवल निजी क्षेत्र द्वारा कुशलतम अर्थव्यवस्था बनाने वाली नियोजन बाजारोन्मुख अर्थव्यवस्था में राज्य के लिए नियोजन की एक ऐसी तकनीकी अपनानी होगी जो अर्थव्यवस्था का समानता के साथ विकास कर सके।

14.8 शब्दावली

- **नियोजन तकनीकी -** अर्थव्यवस्था के कुशलतम संचालन के लिये कार्ययोजना को लागू करने या क्रियान्वित करने के लिए अपनाया जाने वाला तरीका।
- **मॉडल -** अर्थव्यवस्था के विकास के लिए पूर्व में कल्पित या निर्धारित एक प्रारूप या नमूना।
- **बाजारोन्मुख अर्थव्यवस्था -** एक ऐसी अर्थव्यवस्था जिसका संचालन बाजार शाक्तियों अर्थात मांग तथा पूर्ति द्वारा जाने का प्रयास करना।
- **वैश्वीकरण -** किसी भी देश की अर्थव्यवस्था को विश्व के अन्य देशों के अर्थव्यवस्था के साथ सहभागिता के आधार पर कार्य करना।
- **पूँजीवाद -** ऐसी अर्थव्यवस्था जिस पर निजी क्षेत्र का स्वामित्व तथा नियन्त्रण हो।
- **मिश्रित अर्थव्यवस्था -** ऐसी अर्थव्यवस्था जिस पर निजी तथा सार्वजनिक क्षेत्र का सह अस्तित्व हो या दोनों का अलग-अलग प्रबन्धतन्त्र हो।
- **अन्तर्सम्बन्धित -** एक दूसरे के साथ आन्तरिक सम्बन्ध स्थापित होना।
- **पुररूत्थान -** देश की बिगड़ती अर्थव्यवस्था को पुनः ठीक रूप में बनाने का कार्य करना।

14.9 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

14.10 संदर्भ ग्रन्थ सूची

- मिश्रा एण्ड पुरी (2010) *भारतीय अर्थव्यवस्था*, हिमालय पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली
- दत्त एवं सुन्दरम् (2010) *भारतीय अर्थव्यवस्था*, एस. चंद एण्ड क.लि., नई दिल्ली
- एम. एल. झिंगन (2009) *विकास की अर्थव्यवस्था एवं आयोजन*, वृंदा पब्लिकेशन्स प्रा.लि. मयूर विहार, नई दिल्ली-91
- एस.पी. सिंह (2010) *आर्थिक विकास एवं नियोजन*, एस. चन्द एण्ड क.लि., नई दिल्ली- 110055
- सक्सैना तथा गुप्ता (2000) *भारतीय अर्थव्यवस्था (विकास समस्यायें एवं नियोजन),* नवयुग साहित्य सदन- लोहा मण्डी- आगरा-2

14.11 उपयोगी / सहायक पाठ्य सामग्री

- एम.एल. सेठ (2007) *अर्थशास्त्र के सिद्धान्त*, लक्ष्मी नारायण अग्रवाल, पुस्तक प्रकाशक एवं विक्रेता आगरा- 282002

- एम. एल. झिंगन (2002) *समष्टि अर्थशास्त्र*, कोणार्क पब्लिर्श प्रा. लि. मेन विकास मार्ग, दिल्ली-110092
- एच.एल. आहूजा (2002) *व्यष्टि अर्थशास्त्र*, एस. चन्द एण्ड क.लि. नई दिल्ली
- जे. सी. पंत (2002) *तुलनात्मक आर्थिक प्रणालियां*, लक्ष्मी नरायन अग्रवाल, पुस्तक प्रकाशक एवं विक्रेता- आगरा- 282002
- R.C Agarwal (2002) *Economics of Development & Planning*, Lakshmi Narayan Agarwal Agra- 202002

14.12 निबन्धात्मक प्रश्न

1. भारत में अपनायी गयी नियोजन तकनीकी का आलोचनात्मक मूल्यांकन कीजिए?
2. विभिन्न पंचवर्षीय योजनाओं में बदलती नियोजन तकनीकी को स्पष्ट कीजिए?
3. भारत में नियोजन के आधारभूत मॉडलों की विवेचना कीजिए?
4. बाजारोन्मुख अर्थव्यवस्था में नियोजन की प्रक्रिया को स्पष्ट कीजिए?
5. भारत में नियोजन सम्बन्धी सीमाओं तथा कठिनाईयों की व्याख्या कीजिए?
6. मिश्रित अर्थव्यवस्था के संदर्भ में नियोजन की भूमिका को स्पष्ट कीजिए?

इकाई 15- महालनोबिस विकास प्रारूप
(Mahalanobis Development Model)

15.1 प्रस्तावना

15.2 उद्देश्य

15.3 महालनोबिस मॉडल का क्षेत्र

15.4 मॉडल की मान्यताऐं

15.5 मॉडल का मुख्य रूप

15.5.1 द्विक्षेत्रीय मॉडल

15.5.2 चार क्षेत्रीय मॉडल

15.6 महालनोबिस मॉडल तथा दूसरी पंचवर्षीय योजना की वित्तीय व्यवस्था

15.7 महलनोबिस मॉडल तथा भारतीय अर्थव्यवस्था का विकास

15.8 मॉडल का महत्त्व

15.9 महालनोबिस मॉडल की आलोचनाऐं

15.10 महालनोबिस मॉडल में निहितार्थ

15.11 अभ्यास प्रश्न

15.12 सारांश

15.13 शब्दावली

15.14 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

15.15 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

15.16 उपयोगी/सहायक पाठ्य सामग्री

15.17 निबन्धात्मक प्रश्न

15.1 प्रस्तावना

भारत में नियोजन खण्ड की यह इकत्तीसवीं इकाई है जो आर्थिक विकास के महालनोबिस विकास प्रारूप से सम्बन्धित है। इससे पूर्व की इकाई के अध्ययन से बात बता सकेंगे कि भारत में नियोजन की अपनाई गई तकनीकी तथा नियोजन मॉडलों की क्या स्थिति रही है? बाजारोन्मुख होती भारतीय अर्थव्यवस्था में नियोजन से सम्बन्धित विभिन्न पक्षों को भी आप समझ गये होंगे।

प्रो. प्रशान्त चन्द्र महालनोबिस ने भारतीय अर्थव्यवस्था के लिए आवश्यक समझे जाने वाले नियोजन व्यवस्था की क्षेत्रीय विधि की नींव रखी। यहाँ पर आपको यह भी अवगत होना अत्यन्त आवश्यक है कि महालनोबिस के विकास प्रारूप को सामान्यतः महालनोबिस मॉडल के रूप में जाना जाता है। 1953 का द्विक्षेत्रीय विकास मॉडल को परमिार्जित करते हुए प्रो. महालनोबिस ने चार क्षेत्रीय विकास मॉडल को संस्थापित किया। यह क्षेत्रीय मॉडल हैरोड-डॉमर के विकास मॉडल से व्युत्पत्तित किया गया है यह क्षेत्रीय मॉडल विकास के अन्य मॉडलों से समानता रखते हुए भी अर्थशास्त्र के क्षेत्र में अपना अलग महत्त्व रखता है। महालनोबिस मॉडल वास्तव में विकास मॉडल न होकर वितरण मॉडल के रूप में देखा जा सकता है।

प्रस्तुत इकाई में आप समझ सकेंगे कि महालनोबिस के विकास मॉडल के द्विक्षेत्रीय तथा चारक्षेत्रीय मॉडल में क्या मूलभूत अन्तर है? इसके साथ महालनोबिस मॉडल पर आधारित दूसरी योजना की वित्त व्यवस्था से भी आप भली भांति परिचित हो सकेंगे। इस मॉडल के प्रयोग को लाने के बाद भारतीय अर्थव्यवस्था में हुये सुधारों से विकास किस रूप में परिलक्षित हुआ, आप इसको भली भांति समझ सकेंगे।

दूसरी पंचवर्षीय योजना के अन्तर्गत 5 प्रतिशत वार्षिक वृद्धि दर के साथ योजना की समयावधि में 11 मिलियन व्यक्तियों को रोजगार उपलब्ध कराने के साथ यह अत्यन्त आवश्यक था कि अर्थव्यवस्था का तीव्र तथा पूँजी का संस्थागत विकास सम्भव हो सके। इसके लिए महालनोबिस का चार क्षेत्रीय मॉडल भारतीय अर्थव्यवस्था को एक नई दिशा देने में समर्थ रहा है। योजना आयोग से सम्बद्ध होने के कारण महालनोबिस अर्थव्यवस्था की बारीकी प्रवृत्तियों से भली-भाँति परिचित थे। अतः यह मॉडल भारतीय अर्थव्यवस्था को स्थायित्त्व प्रदान करने में महत्वपूर्ण सिद्ध हुआ।

15.2 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई का अध्ययन करने के बाद आप समझ सकेंगे कि -

- ✓ भारतीय अर्थव्यवस्था में विकास मॉडलों की क्या उपयोगिता तथा प्रांसगिकता रही है।
- ✓ महालनोबिस का विकास मॉडल भारतीय अर्थव्यवस्था को किस प्रकार की दिशा प्रदान करता है।
- ✓ भारतीय अर्थव्यवस्था के घटकों में क्या अन्तर्सम्बन्ध रहा है। जिसके आधार पर विकास सम्भव हुआ है।
- ✓ विकास मॉडलों की आवश्यकता के बाद भारतीय अर्थव्यवस्था की वर्तमान स्थिति किस प्रकार परिवर्तित हुई है।
- ✓ भारतीय अर्थव्यवस्था के क्षेत्रवार विकास के लिए आवश्यक रणनीति की आवश्यकता क्या है?
- ✓ महालनोबिस मॉडल पर आधारित योजना की वित्तीय व्यवस्था किस प्रकार की रही?

15.3 महालनोबिस मॉडल का क्षेत्र

महालनोबिस विकास मॉडल का क्षेत्र एक ऐसी अर्थव्यवस्था तक सीमित रहा जिसके साथ किसी अन्य अर्थव्यवस्था से व्यापार नहीं होता है। इसके साथ यह मॉडल पिछड़ी अर्थव्यवस्था के विकास के सन्दर्भ में क्रियान्वित किया जा सकता है। इस मॉडल के क्षेत्र में ऐसी अर्थव्यवस्थाओं को भी शामिल किया जा सकता है जहाँ आय तथा रोजगार का निम्न स्तर हो तथा मुख्य समस्या संस्थागत तत्त्वों के विकास की हो तथा उन अर्थव्यवस्थाओं में कार्य क्षमता तथा उत्पादन को बढ़ाने की कार्यकुशलताऐं विकसित की जा सकें एवं उपलब्ध संसाधनों के प्रयोग करने सम्बन्धी समस्याऐं विद्यमान हो। तत्कालीन परिप्रेक्ष्य में भारतीय अर्थव्यवस्था के सम्बन्ध में इस मॉडल को क्रियान्वित किया गया था।

15.4 मॉडल की मान्यताऐं

आपको यह भी समझना आवश्यक है जिन मान्यताओं पर महालनोबिस द्विक्षेत्रीय विकास मॉडल आधारित किया गया।

1. महालनोबिस विकास मॉडल केवल बन्द अर्थव्यवस्था के सन्दर्भ में ही लागू किया जा सकता है। उस देश का अन्य देशों की अर्थव्यवस्था के साथ सम्बन्ध नहीं पाया जाता है।
2. अर्थव्यवस्था उपभोक्ता वस्तु क्षेत्र तथा पूँजी वस्तु में विभक्त होती है। मध्यवर्ती क्षेत्र के लिए कोई निश्चित स्थान नहीं पाया जाता है।
3. एक क्षेत्र में एक बार संस्थापित पूँजी उपस्करों में विचलन नहीं पाया जाता है।
4. अर्थव्यवस्था में पूर्ण क्षमता के साथ उत्पादन किया जाता है। किसी भी क्षेत्र में अप्रयुक्त क्षमता नहीं पायी जाती है।
5. अर्थव्यवस्था में स्थिरता की स्थिरता पायी जाती है। अर्थात् मुद्रा स्फीति या विस्फीति की स्थिति नहीं पायी जाती है।
6. पूँजीगत वस्तुओं की पूर्ति द्वारा निवेश का आकार निर्धारित होता है।

यहाँ पर आपको यह भी स्पष्ट कराना होगा कि चार क्षेत्रीय मॉडल के अन्तर्गत -

1. अर्थव्यवस्था के अन्तर्गत उत्पादकता गुणांक स्वतन्त्र होता है पूँजी श्रम अनुपातों से नियोजन की समयावधि में सापेक्षिक रूप से कीमत स्थिरता की स्थिति पायी जाती है।
2. राष्ट्रीय आय की वृद्धि दर रेखीय प्रवृत्ति की पायी जाती है।
3. उत्पादन फलन कॉब डगलस प्रकार का है।
4. अर्थव्यवस्था में पैमाने के प्रतिफल स्थिर प्रकृति के होते हैं।

15.5 मॉडल का मुख्य रूप

महालनोबिस के विकास मॉडल को दो रूपों में विभाजित किया गया है।

1. द्विक्षेत्रीय विकास मॉडल,
2. चार क्षेत्रीय विकास मॉडल

15.5.1 द्विक्षेत्रीय विकास मॉडल

महालनोबिस का द्विक्षेत्रीय विकास मॉडल 1953 में प्रस्तुत किया गया जिसके अन्तर्गत अर्थव्यवस्था को दो क्षेत्रों-विनियोग वस्तु क्षेत्र तथा उपभोग वस्तु क्षेत्र में विभाजित किया।

मॉडल के महत्त्वपूर्ण संघटक

K - विनियोग वस्तु क्षेत्र

c - उपभोक्ता वस्तु क्षेत्र

β_K - विनियोग वस्तु क्षेत्र का उत्पादन पूँजी अनुपात

β_C - उपभोक्ता वस्तु क्षेत्र का उत्पादन पूँजी अनुपात

λ_K - पूँजी वस्तु क्षेत्र की ओर होने वाला शुद्ध विनियोग का अनुपात

λ_C - उपभोग वस्तु क्षेत्र की ओर होने वाला शुद्ध विनियोग का अनुपात

I - शुद्ध विनियोग

t - समयावधि

y - राष्ट्रीय आय

a_0 - आय से बचत विनियोग अनुपात

C - उपभोग

किसी समय विशेष (+) पर राष्ट्रीय आय के एक भाग को बचा लिया जाता है तथा दूसरे भाग को उपभोग कर लिया जाता है। आपको ज्ञात होगा कि -

$$Y_t = S_t + C_t \dots\dots\dots\dots (1)$$

जब राष्ट्रीय आय के एक भाग (S_t) को बचाया जाता है तो उसे अर्थव्यवस्था के लिए उपयोगी बनाने के लिए उत्पादन कार्य में लगा दिया जाता है तब -

$$Y_t = i_t + C_t \dots\dots\dots\dots (2)$$

यहाँ यह स्पष्ट करना अत्यन्त आवश्यक है कि उत्पादन कार्य में लगाया गया धन (निवेश) को पुनः पूँजीगत उत्पादन तथा उपभोगगत् उत्पादन के क्षेत्र में बांटा जाता है। कुल निवेश से मूल्यह्रास तथा मशीनों की टूट-फूट को घटाने के बाद ही शुद्ध निवेश उत्पादन वृद्धि का कार्य करता है।

इस प्रकार शुद्ध निवेश का एक अनुपात (λ_K) पूँजीगत वस्तु क्षेत्र के लिए तथा दूसरा शेष भाग ($I - \lambda_K$) उपभोगगत् वस्तु क्षेत्र के लिए निर्धारित किया गया है जिसे λ_C के रूप में दर्शाया जाता है। इन दोनों का योग निवेश के कुल इकाई भाग के बराबर होता है।

$$\lambda_K + (i_t + \lambda_K) = 1 \dots\dots (3)$$

या $$\lambda_K + \lambda_C = 1$$

यहाँ यह समझना आसाना होगा कि शुद्ध निवेश के दोनों क्षेत्र (पूँजी वस्तु क्षेत्र तथा उपभोग वस्तु क्षेत्र) में प्रयुक्त निवेश अनुपातों (λ_K तथा λ_C) को उत्पादन पूँजी अनुपात से गुणा किया जाय तथा दोनों क्षेत्रों के निवेश अनुपात से भाग दिया जाय तो दोनों क्षेत्रों का उत्पादकता गुणांक को ज्ञात किया जा सकता है।

अतः

$$\beta = \frac{\beta k\, \lambda_K + \beta C \lambda_C}{\lambda_K + \lambda_C} \ldots\ldots (4)$$

दोनों क्षेत्रों का निवेश अनुपात ($\lambda_K + \lambda_C$) का योग कुल निवेश इकाई (1) के बराबर होता है।

अतः

$$\beta = \beta_K \lambda_K + \beta_C \lambda_C \ldots\ldots (5)$$

किसी समय विशेष पर निवेश तथा उपभोग में परिवर्तन पिछले वर्षों के निवेश तथा उपभोग पर आधारित या प्रभावित होते हैं।

$$\Delta Y_t = \Delta I_t + \Delta C_t \ldots\ldots (6)$$

महालनोबिस के अनुसार निवेश वृद्धि पथ निम्न प्रकार निर्धारित होता है -

$$I_t = (I + \lambda_k \beta_k)\, I_{t-1}$$

$$I_1 = (I + \lambda_k \beta_k)\, I_0$$

$$I_2 = (I + \lambda_k \beta_k)^2\, I_0$$

अतः

$$I_t - I_0 = I_0\, (I + \lambda_k \beta_k)\, t_{-1} \quad \ldots\ldots (7)$$

इसी प्रकार उपभोग वृद्धि पथ निम्नवत निर्धारित होता है।

$$C_1 - C_0 = \lambda_c\, \beta_c\, (I_0 + I_1 + I_2 + I_3 \ldots\ldots I_t) \ldots. (8)$$

इस प्रकार आय का वृद्धि पथ इस प्रकार निर्धारित होता है।

$$y_t - y_0 = [(I_t + I_0) + (C_1 + C_0)] \quad \ldots\ldots. (9)$$

अन्त में किसी समय विशेष (एक वर्ष) पर राष्ट्रीय आय का निर्धारण इस प्रकार होगा।

$$y_t = y_0 \left[1 + \alpha 0\, \frac{\lambda k\, \beta k + \lambda c \beta c}{\lambda k\ \beta k}\ (C1 + \lambda k\, \beta k) t - 1 \right. \quad \ldots\ldots (10)$$

उक्त समीकरण में α_0 का मान आधार वर्ष में निवेष की दर के समान है।

महालनोबिस के मॉडल के सार रूप में- एक निश्चित अल्पकाल में पूँजीगत क्षेत्र में निवेश की अधिक दर उपभोग की वृद्धि पर कम होगी लेकिन दीर्घकाल में यह दर निवेश की दर के साथ बढ़ती जाती है।

आरम्भ में पूँजी क्षेत्र की ओर आंवटित शुद्ध निवेश का भाग अधिक होता है। समय बीतने पर उपभोग क्षेत्र में उत्पादन पूँजी अनुपात (β_c), पूँजी वस्तु के उत्पादन पूँजी अनुपात से अधिक होगा। अतः दीर्घकाल में आय की वृद्धि दर बढ़ती जायेगी।

15.5.2 चार क्षेत्रीय मॉडल

महालनोबिस का चार क्षेत्रीय मॉडल उनके द्विक्षेत्रीय मॉडल का संसोधित रूप है। इस मॉडल में अर्थव्यवस्था को चार क्षेत्रों में विभाजित किया लेकिन अर्थव्यवस्था के शेष तीन क्षेत्रों की उत्पत्ति उपभोग वस्तु क्षेत्र से की गयी। इस प्रकार -

प्रथम क्षेत्र - पूँजी वस्तु क्षेत्र (K)

द्वितीय क्षेत्र - फैक्टरी उपभोक्ता वस्तु क्षेत्र (C_1)

तृतीय क्षेत्र - लघु एवं कुटीर उद्योगों में उत्पादित उपभोक्ता वस्तु क्षेत्र जिसमें कृषि से प्राप्त उत्पादन को भी शामिल किया गया है (C_2)

चतुर्थ क्षेत्र - सेवा उत्पादन करने वाला क्षेत्र (C_3), जिसमें स्वास्थ्य सेवा, शिक्षा सेवाऐं शामिल हैं।

प्रथम द्वितीय तथा तृतीय क्षेत्रों को संयुक्त रूप से उपभोक्ता वस्तु क्षेत्र की श्रेणी में रखा जा सकता है।

दूसरी योजना में भारतीय अर्थव्यवस्था में निवेश के लिए निर्धारित पूँजी तथा वृद्धि दर 5 प्रतिशत तथा 11 मिलियन लोगों को रोजगार उपलब्ध कराने के लिए इस मॉडल का प्रयोग किया गया। इस मॉडल में निम्न प्रमापों का प्रयोग किया गया।

β = पूँजी-उत्पादन अनुपात जो प्रत्येक क्षेत्र के लिए अलग-अलग होगा (β_k β_1 β_2 β_3) इसके अन्तर्गत निवेशित पूँजी का उत्पादन की मात्रा से अनुपात को इंगित किया जाता है।

Q = पूँजी श्रम अनुपात - (Q_k Q_1 Q_2 Q_3) इसके अन्तर्गत पूँजी की प्रति इकाई के लिए आवश्यक श्रमिकों की मात्रा को दर्शाया जाता है।

λ = निवेश का विभिन्न क्षेत्रों में आनुपातिक विवरण (λ_k λ_1 λ_2 λ_3) योजना की अवधि 5 वर्षों के लिए निवेश राशि की (A) के निर्धारित होने पर 5 प्रतिशत की वृद्धि दर प्राप्त कर मिलियन व्यक्तियों को रोजगार प्राप्त कराने के लिए निवेश का चारों क्षेत्रों में विवरण निम्न मॉडल समीकरण के आधार पर किया जा सकता है।

कुल आय E = चारों क्षेत्रों की आय का योग

कुल रोजगार N = चारों क्षेत्रों में रोजगार की मात्रा

कुल निवेश I = चारों क्षेत्रों में आवंटित निवेश की मात्रा

अब अर्थव्यवस्था के चारों क्षेत्रों में रोजगार की वृद्धि निम्नवत होगी -

प्रथम क्षेत्र में रोजगार वृद्धि -

$$n_k = \frac{\lambda k \ I}{Qk}$$

द्वितीय क्षेत्र में रोजगार वृद्धि -

$$n_1 = \frac{\lambda 1 \ I}{Q1}$$

तृतीय क्षेत्र में रोजगार वृद्धि -

$$n_2 = \frac{\lambda 2 \ I}{Q2}$$

चतुर्थ क्षेत्र में रोजगार वृद्धि -

$$n_3 = \frac{\lambda 3 \ I}{Q3}$$

इसी प्रकार अर्थव्यववस्था के आय में वृद्धि का आकलन निम्न समीकरणों के आधार पर लगाया जा सकता है।

प्रथम क्षेत्र में आय में वृद्धि -

$$E_k = \frac{\lambda k \ I}{\beta k}$$

द्वितीय क्षेत्र में आय में वृद्धि -

$$E_1 = \frac{\lambda 1 \ I}{\beta 1}$$

तृतीय क्षेत्र में आय में वृद्धि -

$$E_2 = \frac{\lambda 2 \ I}{\beta 2}$$

चतुर्थ क्षेत्र में आय में वृद्धि -

$$E_3 = \frac{\lambda 3 \ I}{\beta 3}$$

इसी प्रकार अर्थव्यवस्था के चारो क्षेत्रों में निवेश की मात्रा के वितरण को ज्ञात किया जा सकता है -

प्रथम क्षेत्र में निवेश वितरण $(i_k) = \lambda_k \times i$

द्वितीय क्षेत्र में निवेश वितरण $(i_1) = \lambda_1 \times i$

तृतीय क्षेत्र में निवेश वितरण $(i_2) = \lambda_2 \times i$

चतुर्थ क्षेत्र में निवेश वितरण $(i_3) = \lambda_3 \times i$

इस प्रकार प्रारूप में क्षेत्रीय संरचना निम्नवत् दर्शायी जा सकती है -

$$y = y_k + y_1 + y_2 + y_3$$

15.6 महालनोबिस मॉडल तथा दूसरी पंचवर्षीय योजना की वित्तीय व्यवस्था

दूसरी पंचवर्षीय योजना के अन्तर्गत कुल उपलब्ध वित्तीय संसाधनों का विभिन्न क्षेत्रों में आवंटन महालनोबिस मॉडल के आधार पर किया गया। दूसरी योजना में कुल योजनाराशि का 56 प्रतिभाग देशीय बजटीय स्त्रोत से उपलब्ध कराया गया जिसकी कुल धनराशि 2560 करोड़ रूपये के बराबर थी। 24 प्रतिधन राशि विदेशी सहायता के रूप में उपलब्ध करायी गयी जो 1090 करोड़ रूपये थी। कुल योजना धनराशि का 20 प्रतिशत भाग न्यून वित्त व्यवस्था के अन्तर्गत जुटाया गया जो 950 करोड़ रूपये रहा। इस प्रकार दूसरी पंचवर्षीय योजना के दौरान कुल 100 प्रतिशत धनराशि के अन्तर्गत 4500 करोड़ रूपये की धनराशि व्यवस्थित की गयी। प्रथम तथा तृतीय योजना की वित्त व्यवस्था का अवलोकन करने से स्पष्ट होता है कि दूसरी योजना में देशीय बजटीय संसाधनों का न्यूनतम अनुपात ही उपलब्ध कराया जा सका। इस योजना में न्यून वित्त व्यवस्था सर्वोच्च स्तर 20 प्रतिशत पर पायी गयी जबकि यह प्रथम योजना में 17 प्रतिशत (330 करोड़ रूपये) तथा तृतीय योजना में 13 प्रतिशत (1150 करोड़ रूपये) थी। परिणाम स्वरूप इस योजना के अन्तर्गत सरकार को स्फीतिकारी स्थितियों का भी सामना करना पड़ा था जिसके कारण ही तृतीय योजना में न्यून-वित्त व्यवस्था के अनुपात को कम रखा गया।

दूसरी पंचवर्षीय योजना में देशीय बजटीय स्रोतों के अन्तर्गत चालू राजस्व के अधिशेष, सरकारी उद्यमों का योगदान, गैर सरकारी देशीय बजट तथा अतिरिक्त गतिमान संसाधनों का भी सहारा लिया गया।

आपको यहाँ यह स्पष्ट करना अत्यन्त आवश्यक होगा कि चालू राजस्व का प्रयोग चालू व्यय को पूरा करने के लिए किया जाना चाहिए इसके साथ चालू राजस्व से अतिरेक का प्रयोग विकास कार्यों के लिए किया जाना भी अत्यन्त आवश्यक समझा गया है। सरकार ने प्रथम पंचवर्षीय योजना में चालू राजस्व से अधिशेष का प्रयोग किया गया तथा 25 प्रतिशत वित्तीय साधन इस मद से जुटाये।

महालनोबिस मॉडल पर आधारित इसकी योजना में भारी उद्योग पर बल देने के कारण सरकार ने चालू खाते में अतिरेक बनाये रखने की बजाय शुद्ध घाटे के बजट बनाने का कार्य किया। कीमतों में स्फीतिकारी वृद्धि, मंहगाई भत्तों तथा अन्य भुगतानों में वृद्धि, प्रतिरक्षा एवं काज भुगतानों आदि के कारण चालू व्यय को सीमित नहीं रखा जा सका और परिणामस्वरूप दूसरी पंचवर्षीय योजना में चालू राजस्व के अन्तर्गत 1 प्रतिशत की नकारात्मक उपलब्धि प्राप्त की गयी। दूसरी योजना में सरकारी उद्यमों का योगदान 3 प्रतिशत के स्तर पर दर्ज किया गया। इस योजना के अन्तर्गत गैर-सरकारी देशीय बचत के माध्यम से वित्तीय संसाधन जुटाये गये। पहली योजना में इस मद से कुल संसाधनों का एक तिहाई भाग उपलब्ध कराया गया लेकिन महालनोबिस मॉडल पर आधारित दूसरी योजना में इस मद से प्राप्त संसाधनों में कुल कमी पायी गयी तथा इस मद से 30 प्रतिशत संसाधनों को जुटाया गया। इस योजना में अतिरिक्त साधनों से भी 23 प्रतिशत वित्तीय संसाधन उपलब्ध कराये गये।

द्वितीय पंचवर्षीय योजना में कुल विनियोग 6750 करोड़ रूपये का था जिसमें निजी तथा सार्वजनिक दोनों क्षेत्रों में किया गया विनियोग शामिल किया गया। दूसरी योजना में विनियोग प्रारूप को निम्नलिखित द्वारा आसानी से समझाया जा सकता है।

दूसरी योजना में विनियोग

क्र.सं.	मद	राशि (करोड़ रू०)	प्रतिशत
1.	कृषि एवं सामुदायिक विकास	549	12
2.	सिंचाई एवं बाढ़ नियन्त्रण	430	9
3.	विद्युत	452	10
4.	उद्योग एवं खनिज	938	20
5.	परिवहन एवं संचार	1261	27
6.	कुटीर एवं लघु उद्योग	187	4
7.	विविध	855	18
	योग -	4672	100

उपरोक्त तालिका को अध्ययन करने से स्पष्ट होता है कि उद्योग एवं खनिज पर 938 करोड़ रूपये की धनराशि व्यय की गयी जो कुल का 20 प्रतिशत है। इसके लिए औद्योगीकरण के आवश्यक साधन-परिवहन एवं संचार सुविधाओं के विस्तार एवं विकास पर 1261 करोड़ रूपये का परिव्यय किया गया जो कुल परिव्यय का 27 प्रतिशत पाया गया है।

15.7 महालनोबिस मॉडल तथा भारतीय अर्थव्यवस्था का विकास

दूसरी पंचवर्षीय योजना का निर्माण प्रो० महालनोबिस द्वारा रूसी अनुभव के आधार पर अर्थव्यवस्था के तीव्र विकास के लिए किया था। इस योजना में ऐसी स्थितियाँ अर्थव्यवस्था में पैदा करने की आवश्यकता पर महत्त्व दिया जो देश के तीव्र विकास में सहायक सिद्ध हो सकें। महालनोबिस का मुख्य उद्देश्य भारी उद्योगों में भारी विनियोग करके देश का औद्योगीकरण था। यद्यपि दूसरी योजना तथा महालनोबिस मॉडल की कृषि की उपेक्षा को लेकर काफी आलोचनाऐं की गयीं किन्तु योजना निर्माताओं एवं आयोजकों ने देश के तीव्र औद्योगीकरण का कई तथ्यों के आधार पर जोरदार समर्थन किया। कृषि उद्योगों का विकास कृषि विकास के लिए एक नई दिशा देगा तथा कृषि के विकास को अधिक संभव बनायेगा इसके साथ उद्योगों की विकास दर तथा कृषि की विकास तर में काफी अन्तर देखा गया है तथा भारतीय अर्थव्यवस्था की विदेशी निर्भरता कम करने के लिए भी देश का तीव्र औद्योगीकरण अत्यन्त आवश्यक समझा गया है।

इस योजना में सार्वजनिक क्षेत्र के लौह एवं इस्पात के कारखानों की स्थापना की गयी जिसमें दुर्गापुर, भिलाई एवं राउरकेला में तीव्र विशाल कारखानों को भी स्थापित किया गया, बिजली एवं भारी मशीनरी उपकरण, दवाईयों एवं रसायनों के उत्पादन करने वाले उद्योगों की भी स्थापना की गयी। कोयला, धुलाई के कारखाने, डी.डी.टी. कारखाना, नांगल की स्थापना दूसरी योजना के अन्तर्गत की गयी इसके साथ चीनी, सूतीवस्त्र, जूट के कारखानों की भी स्थापना की गयी जिससे न केवल उद्योगों का बल्कि अन्य क्षेत्रों का भी विकास सम्भव हो सका।

आपको यह अवगत कराना भी अत्यन्त आवश्कय होगा कि महालनोबिस के मॉडल पर आधारित दूसरी पंचवर्षीय योजना के उद्देश्यों को प्राप्त करने के लिए एक ऐसी औद्योगिक नीति का निर्माण करना भी आवश्यक समझा गया परिणामस्वरूप 30 मई, 1956 को तत्कालीन प्रधानमन्त्री पं० जवाहर लाल नेहरू द्वारा औद्योगिक नीति-1956 की घोषणा की गयी जो महालनोबिस मॉडल की प्रासंगिकता को स्पष्ट करती हैं इसके साथ ही एक

लम्बे समय तक यह औद्योगिक नीति भारत के विकास का आधार बनी रही तथा भारतीय मिश्रित अर्थव्यवस्था के कुशल संचालन के लिए बनायी गयी। औद्योगिक नीति-1956 की मुख्य विशेषताऐं निम्नवत् स्पष्ट की जा सकती हैं।

भारतीय अर्थव्यवस्था की मिश्रित अर्थव्यवस्था होने के कारण उद्योगों को तीव्र वर्गों में विभाजित किया गया। प्रथम वर्ग सार्वजनिक क्षेत्र के लिए, द्वितीय वर्ग सार्वजनिक तथा निजी क्षेत्र के सहअस्तित्व के लिए तथा तीसरा वर्ग निजी क्षेत्र के अधीन छोड़ा गया। प्रथम वर्ग में 17 उद्योगों को शामिल किया गया तथा द्वितीय वर्ग में 12 उद्योगों को रखा गया तथा अन्य उद्योगों को तीसरे वर्ग के लिए छोड़ दिया गया। यह औद्योगिक नीति निजी तथा सार्वजनिक क्षेत्रों के दिनों को ध्यान में रखकर बनायी गयी ताकि बिना विरोधाभास के देश की अर्थव्यवस्था विकास के मार्ग पर तीव्रता से दौड़ सके। इसके साथ निजी क्षेत्र के साथ किसी भी प्रकार का भेदभाव पूर्ण व्यवहार नहीं किया गया। औद्योगिक विकास का आधार माना जाने वाले श्रमिक वर्ग को भी इस नीति में आवश्यक सुविधाऐं एवं प्रोत्साहनों की व्यवस्था की गयी ताकि देश के विकास में उनकी सहभागिता का प्रोत्साहित किया जा सके। इस नीति में देश के सन्तुलित विकास को ध्यान में रखा गया। देश के पिछड़े क्षेत्रों में भी औद्योगिक इकाईयाँ स्थापित करने का निर्णय लिया गया।

औद्यागिक नीति-1956 में बड़े स्तर के उद्योगों की स्थापना के साथ लघु एवं ग्रामीण उद्योगों के हितों को भी सुरक्षित करने की व्यवस्था की गयी ताकि निजी क्षेत्र इस उद्योगों के माध्यम से देश के आर्थिक विकास में अपनी सहभागिता प्रदान कर सके। इस नीति के अन्तर्गत औद्योगिक रूप से विदेशी निर्भरता को कम करने के प्रयासों को भी अपनाया गया। इसके साथ देश के औद्योगिक विकास के लिए आवश्यक वित्त व्यवस्था के लिए अनेक प्रकार की औद्योगिक वित्तीय संस्थाओं के विकास के लिए प्रयास किये गये।

सरकार द्वारा देश के तीव्र औद्योगीकरण के लिए विदेशी पूँजी का प्रयोग औद्योगीकरण की गति को बढ़ाने के लिए किया गया तथा विदेशी उद्यमिता के सहयोग को भी आवश्यक समझा गया।

15.8 मॉडल का महत्त्व

आपको यह बताया जाना भी अत्यन्त उपयोगी होगा कि महालनोबिस का यह विकास मॉडल भारतीय अर्थव्यवस्था के लिए कितना महत्त्वपूर्ण सार्थक सिद्ध हुआ।

महालनोबिस योजना आयोग से सम्बन्ध रखने के कारण दूसरी पंचवर्षीय योजना को एक अर्थव्यवस्था के अन्तर्गत 5 वर्षों में 11 मिलियन व्यक्तियों को रोजगार दिलाना तथा 5 प्रतिशत वार्षिक वृद्धि को बनाये रखने के उद्देश्य के साथ निवेश को अर्थव्यवस्था के चारों क्षेत्रों में कुशलतम रूप में विभाजित किया।

द्वितीय योजना के प्रारम्भ में देश को कृषि तथा सामाजिक विकास के साथ भारी उद्योगोंके विकास की भी अत्यन्त आवश्यकता थी ताकि भारतीय अर्थव्यवस्था का सर्वांगीण विकास हो तथा इस योजना का प्रभाव अर्थव्यवस्था पर दीर्घकाल तक जारी रह सके। द्वितीय योजना के प्रलेखों को पांचवी योजना तक अर्न्तसम्बन्धित किया जा सका।

वही दूसरी ओर भारी उद्योगों की स्थापना के साथ लघु तथा कुटीर उद्योगों के विकास के लिए लोगों की आय में वृद्धि करके रोजगार सृजन की क्षमता को बढ़ाने का कार्य इस मॉडल पर योजना को आधारित करके किया

गया। भारी उद्योगों के विकास से अर्थव्यवस्था की उत्पादन क्षमता में वृद्धि को साथ-साथ मजबूत पूँजी का आधार विकसित हो सका।

15.9 महालनोबिस मॉडल की आलोचनाऐं

महालनोबिस मॉडल की प्रमुख आलोचनाओं को निम्नलिखित रूप में स्पष्ट किया जा सकता है -

1. यह मॉडल पूँजी क्षेत्र को वरीयता देने के कारण उद्योगों के लिए कच्चे माल तथा खाद्यान्न आवश्यकताओं की पूर्ति की ओर ध्यान नहीं देता है जो भारतीय अर्थव्यवस्था के लिए अत्यन्त आवश्यक था।
2. इस मॉडल में λ_k को 1/3 माना गया है जो महालनोबिस द्वारा मनमाने तरीके से तय किया गया जो आर्थिक क्षेत्र के लिए उचित नहीं कहा जा सकता है।
3. महालनोबिस मॉडल की समीकरण की प्रकृति स्थैतिक है जो समय के अनुसार समायोजित नहीं की जा सकती है। अतः इस मॉडल में समयावधि की उपेक्षा की गयी।
4. महालनोबिस मॉडल में सापेक्षिक कीमतों को स्थिर माना गया है जबकि अर्थव्यवस्था की प्रगति के लिए सापेक्षिक कीमतों का स्थिर रह पाना सम्भव नहीं है। क्योंकि भारतीय योजनाओं की समयावधि 5 वर्ष निर्धारित की गयी।
5. यह मॉडल बन्द अर्थव्यवस्था पर ही लागू होता है जो एक विकासमान तथा गतिशील अर्थव्यवस्था के लिए युक्तिसंगत नहीं हो सकता। भारतीय अर्थव्यवस्था का प्रारम्भ से ही विदेशी अर्थव्यवस्थाओं से सम्बन्ध रहा है।
6. महालनोबिस का योजना आयोग से सम्बन्ध होने के कारण संसाधनों का अनुमान लगाकर ही इसे प्रस्तावित किया गया। वास्तव में यह विकास का मॉडल न होकर एक वितरण का मॉडल माना गया है।

15.10 महालनोबिस मॉडल में निहितार्थ

भारतीय आयोजन की दूसरी पंचवर्षीय योजना का आधार महालनोबिस द्वारा तैयार किया गया योजना मॉडल रहा। आपको यह समझना भी अत्यन्त आवश्यक होगा कि- महालनोबिस मॉडल तथा दूसरी पंचवर्षीय योजना के निहितार्थ तत्व कौन-कौन से रहे जिसके कारण भारतीय अर्थव्यवस्था के लिए इस मॉडल की प्रासंगिकता महसूस की गयी। महालनोबिस मॉडल के निहितार्थों की प्रासंगिकता के कारण ही तृतीय योजना में भी नेहरु महालनोबिस की कूटनीति का सहारा लिया गया। महालनोबिस ने प्रतिव्यक्ति जी.एन.पी. (G.N.P.) की वृद्धि को आर्थिक विकास के साथ जोड़ते हुये इसमें तीव्र वृद्धि लाने के उपायों को शामिल किया गया तथा इस मॉडल में प्रतिव्यक्ति जी.एन.पी. में वृद्धि के लिए भारी उद्योगों में निवेश और सेवा क्षेत्र में, व्यय में वृद्धि करके क्रय शक्ति को बढ़ाते हुये अधिक मांग उत्पन्न करने के साथ जनता की आवश्यकताओं की पूर्ति के लिये लघु तथा कुटीर उद्योगों का विकास करके उपभोक्ता वस्तुओं के उत्पादन को बढ़ाने का खाका तैयार किया गया।

महालनोबिस का मानना था कि अर्थव्यवस्था में भारी उद्योगों का विकास करके रोजगार के अवसरों में वृद्धि करने के साथ आय में होने वाली वृद्धि का गरीब वर्ग पर सकारात्मक प्रभाव पड़ेगा और अर्थव्यवस्था के

विकास को और गति प्राप्त होगी। तत्कालीन अर्थव्यवस्था की समस्याओं को देखते हुये रोजगार के अवसरों में वृद्धि तथा गरीब वर्ग के लिये आय में वृद्धि करना अत्यन्त आवश्यक था। भारी उद्योगों में रोजगार की दीर्घकालीन तथा सतत् वृद्धि की प्रवृत्ति को बनाये रखना देश की आधारभूत संरचना के विकास के लिए भी आवश्यक समझा गया।

भारी उद्योगों में अत्यधिक निवेश तथा उत्पादन में अधिक समय अन्तराल के कारण उत्पन्न होने वाली स्फीतिकारी समस्याओं का समाधान भी महालनोबिस ने खोज निकाला था। इसके लिए अल्पावधि में उत्पादन की पूर्ति के लिए कुटीर तथा ग्रामीण उद्योगों द्वारा उपभोक्ता वस्तुओं के उत्पादन पर जोर दिया कुटीर तथा बड़े उद्योगों के विकास से एक ओर पारस्परिक सम्बन्धता के द्वारा राष्ट्रीय आय में वृद्धि को बढ़ाने का कार्य किया गया वहीं दूसरी ओर उच्च तथा गरीब वर्ग के मध्य आर्थिक विषमताओं को दूर करने का भी लक्ष्य तय किया गया। भारी उद्योगों में मशीन निर्माण, इस्पात, लौह धातुओं तथा ऊर्जा के विकास को महत्त्व दिया गया वहीं उपभोग के स्तर को बढ़ाने के लिए समाचार, कागज, मोटरसाईकिल, स्कूटर, सिलाई की मशीनें, बिजली का सामान, औषधियाँ, रंग, बिजली के पंखे तथा रेडियो आदि के उत्पादन को बढ़ाने का कार्य किया गया। इसके साथ कृषि विकास के लिए ट्रैक्टर तथा नवीन उपकरणों के उत्पादन को महत्त्व दिया गया।

महालनोबिस मॉडल का मुख्य निहितार्थ उस समय बेरोजगार श्रमशक्ति को रोज़गार उपलब्ध कराने के साथ राष्ट्रीय आय में वृद्धि करना रहा। महालनोबिस मॉडल पर आधारित दूसरी योजना ने तीसरी पंचवर्षीय योजना के लिए एक आधार प्रदान किया परिणामस्वरूप तीसरी पंचवर्षीय योजना को इसी मॉडल का सहारा दिया गया तथा सन्तुलित विकास की कूटनीति को अपनाया गया।

15.11 अभ्यास प्रश्न

लघु उत्तरीय प्रश्न

1. दूसरी योजना के वित्तीय संसाधनों के स्रोतों का उल्लेख कीजिए?
2. महालनोबिस मॉडल निहितार्थ क्या है?
3. महालनोबिस मॉडल में अर्थव्यवस्था में किस स्तर के उद्योगों को प्राथमिकता दी गयी?
4.महालनोबिस मॉडल के क्षेत्र को संक्षेप में बताओ?

बहुविकल्पीय प्रश्न

1. नियोजन की क्षेत्रीय विधि सम्बन्धित है

(क) हैरोड डॉमर मॉडल से (ख) महालनोबिस मॉडल से

(ग) कॉबडगलस मॉडल से (घ) कालडार मॉडल से

2. महालनोबिस मॉडल पर भारतीय पंचवर्षीय योजना आधारित की गयी -

(क) प्रथम पंचवर्षीय योजना (ख) द्वितीय पंचवर्षीय योजना

(ग) पाँचवी पंचवर्षीय योजना (घ) ग्यारहवीं पंचवर्षीय योजना

3. महालनोबिस मॉडल लागू होता है

(क) वैश्वीकृत अर्थव्यवस्था में (ख) खुली अर्थव्यवस्था में

(ग) आंशिक खुली अर्थव्यवस्था में (घ) बन्द अर्थव्यवस्था में

3. द्विक्षेत्रीय मॉडल में अर्थव्यवस्था विभाजित की गयी

(क) वैश्वीकृत अर्थव्यवस्था में (ख) खुली अर्थव्यवस्था में

(ग) आंशिक खुली अर्थव्यवस्था में (घ) बन्द अर्थव्यवस्था में

4. द्विक्षेत्रीय मॉडल में अर्थव्यवस्था विभाजित की गयी

(क) K क्षेत्र में (ख) C क्षेत्र में

(ग) K तथा C क्षेत्र में (घ) उक्त कोई नहीं

5. महालनोबिस मॉडल में सेवा क्षेत्र को इंगित किया गया है

(क) C_1 द्वारा (ख) C_2 द्वारा

(ग) C_3 द्वारा (घ) C द्वारा

6. सापेक्षिक कीमत परिवर्तन नहीं पाये जाते हैं

(क) एक क्षेत्रीय मॉडल में (ख) द्विक्षेत्रीय मॉडल में

(ग) चार क्षेत्रीय मॉडल में (घ) किसी में भी नहीं

7. सत्य तथा असत्य को चुनो -

(क) महालनोबिस के विकास मॉडल का सम्बन्ध हैरोड-डॉमर मॉडल से पाया जाता है।

(ख) महालनोबिस का विकास मॉडल भारतीय अर्थव्यवस्था के लिए प्रासंगिक रहा है।

8. सत्य तथा असत्य चुनो –

(क) $E_3 = \frac{\lambda 3\ I}{\beta 3}$

(ख) $y = y_c + y_1 + y_2 + y_3$

(ग) $n_2 = \frac{\lambda 2\ I}{Q2}$

15.12 सारांश

प्रो॰ प्रशान्त चन्द्र महालनोबिस ने नियोजन व्यवस्था की क्षेत्रीय विधि की नींव रखी। द्विक्षेत्रीय मॉडल में अर्थव्यवस्था को विनियोग वस्तु क्षेत्र तथा उपभोक्ता वस्तु क्षेत्र में विभक्त किया। इस विकास मॉडल में पूँजीगत वस्तु क्षेत्र में विनियोग करने पर अल्पकाल में उपभोग की वृद्धि दर कम होगी लेकिन समय के साथ-साथ यह वृद्धिदर बढ़ती जाती है परिणाम स्वरूप उपभोग क्षेत्र में उत्पादन पूँजी अनुपात (β_c), पूँजी वस्तु क्षेत्र के उत्पादन पूँजी अनुपात से अधिक हो जाता है। अतः दीर्घकाल में आय की वृद्धि दर बढ़ती जाती है।

महालनोबिस का चार क्षेत्रीय मॉडल के अन्तर्गत अर्थव्यवस्था को चार क्षेत्रों में बांटा गया है। प्रथम क्षेत्र द्विक्षेत्रीय मॉडल के समान है शेष तीन क्षेत्रों को, द्विक्षेत्रीय मॉडल के उपभोक्ता वस्तु क्षेत्र से ही निकाला गया है। जिसमें फैक्टरी, लघु कुटीर उद्योग तथा सेवा क्षेत्र को शामिल किया गया है। इस चार क्षेत्रीय मॉडल को विकास का

मॉडल न मानकर शुद्ध निवेश को अर्थव्यवस्था के चारों क्षेत्रों में विवरण करने का मॉडल माना गया है इस मॉडल में चारों भागों के लिए अलग-अलग रोजगार की वृद्धि तथा आय की वृद्धि दरों को ज्ञात किया गया है। इसी प्रकार सभी क्षेत्रों के लिए दूसरी पंचवर्षीय योजना में निर्धारित 5 प्रतिशत वृद्धि दर तथा 110 लाख लोगों को रोजगार की उपलब्धता के साथ उपलब्ध निवेश को चारों क्षेत्रों में एक गोपनीय रूप के आधार पर विभाजित किया गया है। चार क्षेत्रीय विकास मॉडल में आय की क्षेत्रीय तथा समग्र संरचना निम्नवत निर्धारित की गयी।

$$y = y_k + y_1 + y_2 + y_3$$

महालनोबिस मॉडल भारतीय अर्थव्यवस्था के लिए अत्यन्त ही महत्त्वपूर्ण सार्थक सिद्ध हुआ है। दूसरी योजना की वित्त व्यवस्था इस मॉडल के आधार पर की गयी जिसकी सफलताऐं तीसरी योजना के विकास का आधार बनीं। इस मॉडल में अर्थव्यवस्था के लिए संरचनात्मक ढांचा दिया गया तथा देश में राष्ट्रीय आय की तीव्र वृद्धि के साथ कुल मांग व पूर्ति के साथ सामंजस्य स्थापित करने का प्रयास किया। इस मॉडल में पूँजीगत औद्योगिक विकास के साथ उपभोक्ता वस्तुओं के स्तर को सुधारने का प्रयास किया गया।

15.13 शब्दावली

- **क्षेत्रीय विधि** - इस विधि के अन्तर्गत अर्थव्यवस्था को एक से अधिक क्षेत्रों में विभाजित कर नियोजन की रूपरेखा तैयार की जाती है।
- **पूँजी-उत्पाद अनुपात** - उपक्रम में संलग्न पूँजी का प्राप्त उत्पादन के साथ आनुपातिक सम्बन्ध पूँजी उत्पादन अनुपात कहलाता है अर्थात् निश्चित उत्पादन के लिए आवश्यक अनुपात कहा जाता है।
- **विनियोग** - उत्पादन कार्य में वृद्धि के लिए लगायी गयी धनराशि को विनियोग कहा जाता है।
- **रेखीय प्रवृत्ति** - जब किसी क्षेत्र में एक सरल तथा निश्चित अनुपात में परिवर्तन होता है तब उसे रेखीय प्रवृत्ति कहा जाता है।
- **पैमाने के स्थिर प्रतिफल** - उत्पादन कार्य में प्रयुक्त साधनों तथा उत्पादन के मध्य अनुपात स्थिर बना रहता है।
- **मुद्रा-स्फीति** - उत्पादन वृद्धि दर की अपेक्षा मुद्रा की वृद्धि दर या पूर्ति दर अधिक हो जाना मुद्रा स्फीति कहलाता है।
- **बन्द अर्थव्यवस्था** - ऐसी अर्थव्यवस्था जो अपनी ही भौगोलिक सीमाओं के अन्दर कार्यशील रहती है तथा विदेशी प्रत्यक्ष प्रभाव नगण्य रहते हैं, बन्द अर्थव्यवस्था कहलाती है।
- **खुली अर्थव्यवस्था** - एक ऐसी अर्थव्यवस्था जो विश्व के अन्य देशों की अर्थव्यवस्थाओं के साथ कार्यात्मक सम्बन्ध रखती है खुली अर्थव्यवस्था कहलाती है।
- **सापेक्षिक कीमत** - एक समय तथा अन्य वस्तुओं एवं सेवाओं की कीमतों की तुलना दूसरे समय तथा दूसरी वस्तुओं एवं सेवाओं की अपेक्षा कीमतों का अनुपात सापेक्षिक कीमत कहलाता है।

15.14 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

15.15 संदर्भ ग्रन्थ सूची

- मिश्रा एण्ड पुरी (2010) *भारतीय अर्थव्यवस्था*, हिमालय पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली
- दत्त एवं सुन्दरम् (2010) *भारतीय अर्थव्यवस्था*, एस. चंद एण्ड क.लि., नई दिल्ली
- एम.एल. झिंगन (2009) *विकास की अर्थव्यवस्था एवं आयोजन*, वृंदा पब्लिकेशन्स प्रा.लि. मयूर विहार, नई दिल्ली-91
- एस.पी. सिंह (2010) *आर्थिक विकास एवं नियोजन*, एस. चन्द एण्ड क.लि., नई दिल्ली- 110055
- सक्सैना तथा गुप्ता (2000) *भारतीय अर्थव्यवस्था (विकास समस्यायें एवं नियोजन),* नवयुग साहित्य सदन- लोहा मण्डी- आगरा-2

15.16 उपयोगी / सहायक पाठ्य सामग्री

- एम.एल. सेठ (2007) *अर्थशास्त्र के सिद्धान्त*, लक्ष्मी नारायण अग्रवाल, पुस्तक प्रकाशक एवं विक्रेता आगरा- 282002
- एम. एल. झिंगन (2002) *समष्टि अर्थशास्त्र*, कोणार्क पब्लिर्श प्रा. लि. मेन विकास मार्ग, दिल्ली-110092
- एच.एल. आहूजा (2002) *व्यष्टि अर्थशास्त्र*, एस. चन्द एण्ड क.लि. नई दिल्ली
- जे. सी. पंत (2002) *तुलनात्मक आर्थिक प्रणालियां*, लक्ष्मी नरायन अग्रवाल, पुस्तक प्रकाशक एवं विक्रेता- आगरा- 282002
- R.C Agarwal (2002) *Economics of Development & Planning*, Lakshmi Narayan Agarwal Agra- 202002

15.17 निबन्धात्मक प्रश्न

1. महालनोबिस के द्विक्षेतीय विकास मॉडल का आलोचनात्मक मूल्यांकन कीजिए?
2. भारतीय अर्थव्यवस्था के सम्बन्ध में महालनोबिस के चार क्षेत्रीय मॉडल को स्पष्ट कीजिए?
3. भारत के आर्थिक नियोजन में महलनोबिस के योगदान की समीक्षा कीजिए?
4. महालनोबिस विकास मॉडल को दूसरी पंचवर्षीय योजना से सम्बन्ध स्थापित कीजिए?
5. दूसरी पंचवर्षीय योजना की वित्तीय व्यवस्था का विश्लेषण कीजिए?
6. महालनोबिस मॉडल के निहितार्थों की व्याख्या कीजिए?

चतुर्थ सेमेस्टर

Fourth Semester

आर्थिक संवृद्धि एवं नियोजन — एम.ए.ई.सी. – 606

Economic Growth and Planning — M.A.E.C. - 606

विषय-सूची

खण्ड – 1 आर्थिक संवृद्धि के प्रारूप (Models of Economic Growth)	**पृष्ठ संख्या 1-48**
इकाई 1- हैरोड-डोमर का प्रारूप (Harrod-Domar Models)	1-13
इकाई 2- सोलो का प्रारूप (Solow Model)	14-22
इकाई 3- जे. ई. मीड का प्रारूप (J. E. Meade's Model)	23-31
इकाई 4- जॉन रॉबिन्सन का प्रारूप (Joan Robinson's Model)	32-48
खण्ड – 2 संसाधन एवं विकास (Resources and Development)	**पृष्ठ संख्या 49-107**
इकाई 5- पूँजी निर्माण एवं आर्थिक विकास (Capital Formation and Economic Development)	49-58
इकाई 6- मानव संसाधन एवं आर्थिक विकास (Human Resources and Economic Development)	59-71
इकाई 7- अधो संरचना एवं आर्थिक विकास (Infrastructure and Economic Development)	72-93
इकाई 8- पर्यावरण, पारिस्थितिकी एवं आर्थिक विकास (Environment, Ecology and Economic Development)	94-107
खण्ड – 3 विकास के क्षेत्रीय परिप्रेक्ष्य (Regional Perspective of Development)	**पृष्ठ संख्या 108-171**
इकाई 9- कृषि क्षेत्र एवं आर्थिक विकास (Agricultural Sector and Economic Development)	108-123

इकाई 10- औद्योगिक क्षेत्र और आर्थिक विकास 124-139
(Industrial Sector and Economic Development)
इकाई 11- सरकारी संस्थान, बाजार,और आर्थिक विकास 140-159
(Government Institute, Market and Economic Development)
इकाई 12- गरीबी के संकेतक तथा प्रमाप 160-171
(Indicators and Measurements of Poverty)

खण्ड – 4 भारत में आर्थिक नियोजन (Economic Planning in India) **पृष्ठ संख्या 172-213**

इकाई 13- नियोजन की तकनीकी का चुनाव तथा उपयुक्त तकनीकी विनियोग कसौटी लागत और लाभ विश्लेषण 172-185
(The Planning for Choice of Technique and Appropriate Technique, Investment Criteria, Cost and Benefit Analysis)
इकाई 14- भारत में नियोजन तकनीकी, भारत के नियोजन मॉडल, बाजारोन्मुख अथर्व्यवस्था में नियोजन 186-198
(Techniques of Planning in India, Planning Model in India, Planning in the Market Economy)
इकाई 15- महालनोबिस विकास प्रारूप 199-213
(Mahalanobis Development Model)

Suggested Readings:

1. Adelman, I. (1961) ***Theories of Economic Growth and Development***, Stanford University Press, Stanford
2. Galbraith, J.K (1969) ***Economic Development***, Oxford University Press, London
3. Hollis Chenery and T.N. Srinivasan (2007) ***Handbook of Development Economics***, Vols. 1 & 2, Elsevier North Holland, UK
4. Kindleberger, C. P. (1977) ***Economic Development***, (3rd Edition), McGraw Hill, New York.
5. Kuznets, Simon (1969) ***Economic Growth & Structure***, Oxford & IBH Publishing Co., New Delhi
6. Meier, G. M. (1995) ***Leading Issues in Economic Development***, (6th Edition), Oxford University Press, New Delhi
7. Mishra and Puri (2006) ***Economic of Growth and Development***, Himalaya Publishing House, New Delhi
8. Meier, G. M. and D. Seers (Eds.) (1987) ***Pioneers in Development***, Oxford University Press, New York.
9. Philip Arestis (1996) ***Employment, Economic Growth and the Tyranny of the Market,*** Edward Elgar Publishing Ltd, UK
10. Taneja, M. L. and R. M. Myer (2013) ***Economics of Development and Planning***, Vishal Publishing Co., Jalandhar
11. Thirlwall, A P. (2003) ***Growth and Development***, Palgrave Macmillan Press Ltd., New York
12. Todaro, Michael P. and Stephen C. Smith (2014) ***Economic Development***, Dorling Kindersley (India) Pvt. Ltd., New Delhi
13. Vaidyanathan, A. (2005) ***India's Economic Reforms and Development***, Academic Foundation, New Delhi.